दुर्गाशंकर-ग्रन्थ-माला—पुष्प (१)

फरार की डायरी

१९४३

लेखक—

दुर्गाशङ्कर प्रसाद सिंह

प्रकाशक—
हिमालय प्रकाशन प्रेस,
पटना ।

एस्टाकिस्ट—
नव-साहित्य-मन्दिर
एक्जिविशन रोड,
पटना

मुद्रक
बिहार पब्लिशर्स लिमिटेड
पटना
तथा चीप प्रिन्टिङ्ग प्रेस, पटना

प्रथम संस्करण
२०००

[मूल्य ३॥)

लेखक—दुर्गाशङ्कर प्रसाद सिंह

अपनी जीवन-सङ्गिनी जगन्नाथ कुँअरि को—

प्रेम भेंट।

दुर्गाशंकर

१०-६-४६

दो शब्द

बाबू दुर्गा शंकरजी से मेरा परिचय पहले पहल हजारीबाग जेल में हुआ था। परिचय भाई बेनीपुरीजी ने कराया। भोजपुरी ग्राम्य गीतों का आपने अच्छा संग्रह और अध्ययन किया है। यह आपका विशेष परिचय था। चूंकि गावों के सांस्कृतिक जीवन का प्रश्न मुझे आकर्षित करता है, यह परिचय मुझे विशेष रूप से याद रहा।

लेकिन बाबू साहब कम सखुन वाक़े हुये हैं। इसलिये कुछ अर्से तक जेल में साथ रहने पर भी इनसे घनिष्टता न हुई।

कई साल बाद जब मैं आगरे जेल में था तो कानपुर के एक साप्ताहिक में "फरार की डायरी" के कुछ पन्ने पढ़े। उसी समय लालसा हुई थी कि शेष पुस्तक पढ़ जाता लेकिन पता चला कि पुस्तक अभी प्रकाशित नही हुई थीं।

दो सप्ताह हुये होंगे कि बाबू दुर्गाशंकरजी अकस्मात पुस्तक का प्रूफ लेकर आये और भूमिका लिखने का आग्रह किया। साहित्यिक विषयों पर सम्मति प्रकट करने का मुझे कोई अधिकार नही है, इसलिये बाबू साहब का प्रस्ताव स्वीकार करने से हिचकता था, लेकिन अन्त में उन[illegible] टाल न सका।

"फरार की डायरी" आ[illegible]न्त पढ़ गया। जहाँ तक जेल जीवन की कथा है, साहित्य की दृष्टि से वह विशेषता नहीं रखती।

तथापि चूंकि जेल से मेरे भागने के बाद की घटनाओं का जिक्र वहां किया गया है वह प्रसङ्ग भी मुझे बहुत रोचक लगा।

जेल एक ऐसा स्थान है जहाँ बहुत से लोगों को थोड़ी सी जगह में रात दिन साथ रहना पड़ता है। हैवलाक-एलिसने लिखा है कि दामपत्य जीवन के सुख के लिये आवश्यक है कि साल में दो एक महीने के लिये स्त्री-पुरुष एक दूसरे से अलग रहें। बराबर साथ रहने से पारस्परिक कलह का अन्देशा रहता है। ऐसी दशा में दुनिया की ताजा हवा से वंचित, जेल की दीवारों से घिरे हुए जिन लोगों को रात दिन विवश होकर साथ रहना पड़ता है, उनमें द्वेष और कलह यदि पाये जायँ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। दुर्गाशंकरजी ने जेल के इस कलहमय जीवन का चित्र सचाई और निर्भीकता से खींचा है। इनके दृष्टिकोण में भूल हो सकती है। लेकिन इनकी सत्य-प्रियता से कोई इन्कार नहीं कर सकता। अपनी कमियों और भूलों को भी आपने एक निष्पक्ष आलोचक को भाँति अंकित किया है

लेकिन जेल की कथा तो "फरार की डायरी" का एक छोटा सा ही भाग है। उसके बड़े भाग में तो "पसिया के टोले" की कथा है। जब पाठक फरार के साथ भागते दौड़ते पासियों की इस जंगली बस्ती में पहुँच जाता है तो दृश्य सुहावना हो उठता है, कथा हृदयग्राही और शैली रोचक बन जाती है।

दुर्गाशंकरजी एक गांधीवादी हैं। लेकिन पासियों के टोले में जाकर दलित वर्गों के आन्तरिक जीवन का इन्हें साक्षात्कार हुआ।

अछूतों के निर्मल बालकों के पीड़ित, दुःखी हृदयों की उन्हें एक झांकी मिली। उनके अन्तस्तल में छिपी हुई कड़वाहट की दो बून्दें पीने को मिलीं। सोभुआ और मंगराका वह कभी न भूलने-वाला वार्त्तालाप, उनका वह "राजा और सेनापति" का सहज नाटक जिसने कभी देखा या सुना उसके दिल में यदि सामाजिक विद्रोह की अग्नि धधक न उठे तो वह मनुष्य पाषाण हृदय अथवा पशु हृदय होगा।

पता नहीं इन घटनाओं में कहाँ तक वास्तविकता और कहाँतक कल्पना है। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक ने जो कुछ देखा सुना, जो कुछ अनुभव किया उसमें कल्पना के दो पंख जोड़े; जीवन को साहित्य बनाया। लेकिन इस सृष्टिक्रम में मुझे ऐसा लगता है, लेखक भी कुछ बनता गया है। उसका भी विकाश हुआ है। उसकी लेखनी भी क्रमशः गर्म होती हुई अन्त में चिनगारियाँ उगलने लगी है। वह बाबू दुर्गाशंकर ही हैं जिसने सोभुआ के वकील बनकर इजलास के सामने अन्यायी, आततायी धनी समाज पर जलते हुये बाण बरसाये हैं।

पसिया के टोले में केवल वर्ग संघर्ष का नग्न ताण्डव ही नहीं है, बल्कि बुधिया भी है। अबोध बुधिया का सौन्दर्य्य, उसकी कोमलता और सादगी। यह तो स्पष्ट ही है कि बुधिया के निर्माण में कल्पना और कवित्व का हाथ अधिक रहा है।

पसिया के टोले में शिकार का रोचक वर्णन भी है। रचनात्मक-कार्यक्रम और ग्रामसेवा की कहानी भी है। लेकिन पसिया के टोले

की आत्मा है वही नम्रवर्गसंघर्ष, गरीबों और असहायों के दिलों में धधकती हुई प्रतिशोध की वही ज्वाला जिसका मूर्तरूप सोभुआ है। इसलिये "फरार की डायरी" उस आधुनिक प्रगतिशील साहित्य का एक सुन्दर नमूना बन गई है। जिसका विषय सामाजिक शोषण और उत्पीड़न है और जिसका सन्देश है सामाजिक क्रान्ति।

पाठक आशा करें कि वीर शिरोमणि बाबू कुँअर सिंह के इस वंशज की लेखनी आगे भी यही सन्देश हमे देती रहे।

पटना — जयप्रकाश नारायण

६—९—४६

अपनी बात

—(:o:)—

कला का 'सत्यं शिवं सुन्दरं' रूप जीवन की सच्ची घटनाओं में उस 'सत्यंशिवंसुन्दरं' अंश से कहीं अधिक सुन्दर एवं कलात्मक ढंग से निहित है, जिसको भरत, वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी एवं शेक्स्पीअर आदि महाकवियों ने अपनी रचनाओं में निहित किया है। मेरी यह धारणा अपने फरारी जीवन की अवधि में उत्तरोत्तर पुष्ट होती गयी है।

फिर भी तीन सौ साठ दिनों की सच्ची घटनाओं को २५२ पृष्ठों में रखदेना जिनमें अधिकांश पृष्ठ तो कल्पना और विवेचना तथा वर्णन से ही भरे पड़े हैं, सच्ची घटनाओं के वर्णन करने की अपनी प्रतिज्ञा के साथ अन्याय करना ही हुआ है।

मुझे यहाँ यह स्वीकार करते हिचक नहीं मालूम होती कि मेरी निर्भीक लेखनी को भी कितेक स्थल पर सुन्दर से सुन्दर अंशों को किन्हीं विशेष परिस्थितियों के विचार से, किन्हीं व्यक्ति विशेष को दुःख न पहुँचाने के ख्याल से, तथा किन्हीं सामाजिक कठिनाइयों की अड़चनों अथवा सुरुचिता के निर्बाह की भावना से छोड़ना पड़ा है। इससे यथार्थवादी कला का वह रूप शायद नहीं ही चित्रित हो सका है, जिसको चित्रित करने की कल्पना मैंने वर्ष के प्रथम दिन की थी।

शाश्वत भावनाओं के मौलिक चित्रण ही कला के उत्कृष्ठ और आदर्श उदाहरण होते हैं, और उसी चित्रण से चित्रकार, या कलाकार की प्रतिभा की परख भी होती है। यदि चित्रकार की

तूलिका, लेखक की लेखनी या कवि की कल्पना उस मौलिकता को छू या पकड़ सकीं तो उन शाश्वत भावनाओं और अमर कल्पनाओं के साथ साथ स्वयं भी वे अमर हो गईं। अन्यथा साधक का प्रयास निष्फल हुआ। हृदय की शाश्वत अनुभूतियाँ, जो प्रत्येक मानव में एक समान हैं जब नव रस रूपी मानस वाटिका की सुन्दर वीथियों पर हँसतीं, खेलतीं, रोतीं, बिलखतीं तथा रुष्ट और कुपित होकर रौद्र और विभत्स रूप धारण करतीं हैं, उस समय यदि साधक की विवेक बुद्धि उनके ठीकठीक रूपों का बोध कर पाती है तो उसका प्रयास सफल होता है। और उसको अपनी साधना का साध्य प्राप्त होता है। अन्यथा इसके हेतु उसको आगे और अधिक तप करने की आवश्यकता होती है। लेखन कला भी तप आदि साधनाओं की भाँति एक उत्कृष्ट साधना है। इसमें भी साधक को साध्य के लिए तपस्या करने की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। जो कलाकार उस सर्वस्व त्याग की तपश्चर्या से अपने को बचाना चाहता है, वह अधूरा साधक है, उसकी कला में कला के मौलिक रूप के दर्शन नहीं हो सकते। पर जो कलाकार "मीर" के शब्दों में:—

"अपने तईं भी खाना खाली नहीं लज्जत से,
क्या जानें होश वाले चक्खे तो मजा जानें।"

अपने आप को इस साधना में मिटा देता है वही मिट कर भी अमिट हो उठता है। लेखन कला का वास्तविक रूप सचमुच बड़ा सूक्ष्म और बड़ा व्यापक, तथा अति कठिन है। जिस तरह रेखा चित्र में एक पतली सी रेखा, एक धुँधली सी छाया के रखते ही चित्र बोलने लगता है और उसके मिटातेही चित्र मिट जाता है उसी तरह शब्दकार की

कला में भी एक छोटे से शब्द के या वाक्य के छूट जाने से शब्दचित्र जीवनहीन हो जाता है। अतः लेखक को इस शब्दगुन्थन कला की पूरी जानकारी और उनके अर्थ और प्रयोग का पूरा अनुभव होना चाहिए।

फिर विना अपने निजी चारित्रिक विश्वास, अनुभूति और अनुभव के लेखक की लेखनी से निकले शब्द निर्जीव ही से रहते हैं। उनका पाठक या श्रोता पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इससे शाब्दिक चित्रकार को रैखिकचित्रकार से कहीं अधिक तपस्या, कहीं अधिक साधना, कहीं अधिक आत्म तथा चरित्र सुधार और कहीं अधिक सांसारिक अनुभव की आवश्यकता होती है। जहाँ भावनाओं के जगत में भ्रमण करके कल्पना के सहारे कानन कुसुम उसे सञ्चय करने पड़ते हैं वहाँ दुःख-यातना से भरी इस पृथ्वी के कोने-कोने में उगे हुए विविध कांटाओं से परिचय भी प्राप्त करना—उनसे अपने को विधाना भी उसका परम कर्त्तव्य हो जाता है। तभी तो कलाकार नवों रसों से परिपूर्ण कला की सुन्दर रसपूर्ण सुस्वादु खिचड़ी पक पावेगा अन्यथा नहीं।

अस्तु, कला निर्माण सम्बन्धी इन मान्यताओं को लेकर जो प्रयास इस फरार की डायरी के ४ वर्षों की अवधि में मैंने किया था उसका चातुर्थांश यानी १९४३ की डायरी आज पाठकों के सामने है। इसको बाल-वृद्ध, मूर्ख—पण्डित तथा सभी विचार और अवस्था के मनुष्य अवश्य पसन्द करेंगे ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। इस डायरी को लिखते समय मेरे मन की दशा जब जैसी रही है, वैसे ही उसके पन्ने भी चित्रित हुए हैं। कहीं-कहीं कल्पना की प्रधानता भी हुए विना नहीं रह सकी है और अपनी लेखनी सत्य घटनाओं को छोड़कर उसी से मिलता जुलता किसी कल्पित आदर्श का चरित्र चित्रण करने में इधर-

उधर बहक भी अवश्य गई है। जैसा कि अपने श्रद्धेय मित्र, भूमिका लेखक श्री बाबू जयप्रकाश नारायण का विश्वास है।

परन्तु इस कार्य्य में भी अपने नूतन अनुभवों या तद्जनित परिवर्तित विश्वासों की ही प्रेरणा अधिक रही है। सोमुआ, जमीन्दार, बुधिया तथा वकील इन चार पात्रों को छोड़कर पसिया के टोले की शेष सभी बातें सत्य से दूर नहीं हैं। ये चार पात्र कल्पना जगत की उपज हैं। डायरी की अन्य सभी घटनाएँ भी सत्य ही हैं, हाँ उनपर जगह-जगह कला की पालिश अवश्य चढ़ाई गई है।

भाषा में मैंने जान बूझकर ग्रामीण और उपयोगी शब्दों का प्रयोग किया है तथा इसे अति सांस्कृतिक भाषा न बनाकर जन भाषा बनाने की चेष्टा की है। और इसी से इस भाषा की शैली हमारे सुसंस्कृत भाषा लिखने वाले लेखकों को शायद पसन्द न आवे।

जिनकी ऐसी धारणा हो उन से मेरा निवेदन है कि मैंने भी अपनी 'ज्वला मुखी' 'भूख की ज्वाला' 'नारी जीवन साहित्य' तथा अन्य रचनाओं में उनकी जैसी भाषा लिखी है। उनके सांस्कृतिक रूप पसन्द भी खूब किये गये हैं। परन्तु अब तो भाषा के सम्बध में मेरी धारणा ही दूसरी हो गई है। आज मैं भाषा का अर्थ यह नहीं मानता कि इसके जरिये ऐसे कठिन और ललित विचार प्रकट किये जाँय जिनको समझने के लिए पाठक को कोश के पन्ने खोलने पड़ें, या छात्रों को शिक्षकों का सहारा लेना पड़े, या जिससे वह सुसंस्कृत विचार वालों या राजमहलों के मनोविनाद की चीज समझी जाय—बल्कि भाषा का मानी आज मेरे सामने यह है कि मूर्ख-से-मूर्ख भी अधिक-से-अधिक संख्या में विना कोश और शिक्षक के सहारे

मेरे लिखने या कहने का अर्थ सरलता से समझ सके और उस के सहारे अपने को सुधार सके या अपने जले भुने घावों पर मलहम पट्टी कर पावे। इसको आप हिन्दुस्तानी कहिये या जो कहिये पर मैं इसे जीती जागती हिन्दी का शुद्ध रूप मानता हूँ। मेरी धारणा है कि जब तक हिन्दी या उर्दू का सम्बन्ध जन भाषाओं यानी प्रान्तीय बोलियों से नहीं बना रहेगा तब तक हिन्दी या उर्दू न अमर हो सकेगी और न इनका आपसी झगड़ा ही मिटेगा। भाषा जन के मनोभावों को व्यक्त करने का माध्यम है। उसको जब हम अपने कृत्रिम सौंदर्य्य के लोभ से या उच्च संस्कार की प्रेरणा से दुरूह, कठिन दुर्बोध और कृत्रिम बना देंगे तो जन समूह के लिए वह अवश्यमेव अप्रिय हो जायगी और उसकी वास्तविक उपयोगिता नष्ट समझी जायगी। यही कारण है कि संस्कृत, फारसी और ब्रज भाषा के प्रधान युग में भी हमारे सन्त कवि विद्यापति, तुलसी, कबीर, पलटू, धरमदास, धरनी दास, दरिया दास आदि महाकवियों ने जिन भाषा की सहायता से एक नयी भाषा का सृजन किया है। तुलसी और कबीर की भाषा में जहाँ तत्सम शब्दों का अस्तित्व है, वहाँ उसमें ग्रामीण-से-ग्रामीण मुहावरे, शब्द और लोकोक्तियों का भी समावेश अत्यधिक रूप से किया है। क्रियायें तक भी जगह जगह जन भाषा की ले ली गयीं है। इसका फल यह हुआ है कि ये महा कवि गण घर-घर के कवि हो गये। और हिन्दू संस्कार को कायम रखने में इनका महान हाथ रहा। पर बिहारी, देव, केशव आदि कवि केवल विद्वानों एवं राज महलों के ही कवि बने रहे। फिर इसी के साथ जन भाषा के सम्पर्क में रहने से हिन्दी के जीवन के

सर्वाङ्ग वृद्धि होने की सम्भावना है। यदि उसकी बृद्धि को हम काट छाँट कर संस्कार युक्त बनाये रखने में ही सीमित कर देंगे तो नये-नये शब्दों, नये-नये मुहावरों या नये ढंग से विचार प्रदर्शन की प्रगति जो भाषा में जन भाषा के सम्पर्क से नित्य आती रहती हैं, उनको हम रोक देंगे। इसलिए भाषा को जो केवल सांस्कृतिक दीवारों के भीतर कैद करके रखना चाहते हैं उनकी धारणा गलत ही नहीं बल्कि हिन्दी के विकाश में महान बाधक है।

भाषा का रूप नित्य बदलता रहना ही प्रगति का चिन्ह है। भाषाविज्ञान के पण्डितों ने जो भाषा विकाश का इतिहास लिखा है उससे पता चलता है कि जो हिन्दी चन्दवरदाई के समय में थी उस का वह रूप आज की हिन्दी का नहीं है या जो अंग्रेजी चाउसर के समय म थी वह आज की अंग्रेजी का रूप नहीं है अथवा जो भोजपुरी या मैथिली विद्यापति की लेखनी से लिखी गई थी वह आज की मैथिली या भोजपुरी से भिन्न थी। तो भाषा के सम्बन्ध में अपनी इस मान्यता के अनुसार ही मैंने इस डायरी में भाषा का प्रयोग किया है। भाषा से भाव की पुष्टि होती है अवश्य, पर हमने जो अपने काव्यशास्त्र में शब्दालङ्कार को प्रधानता देकर भाव पर भाषा की प्रधानता बना दी, उससे हमारी स्वाभाविक भावनाओं की अभिव्यक्ति में ह्रास अवश्य हुआ है और हम स्वाभाविकता के पथ से हट कर कृत्रिमता की चमक-दमक से अधिक प्राभावित होने लगे हैं। यही कारण है कि आदि कवि वाल्मीकि और उसके वाद काली दास की भाषा परवर्त्ती वाण माघ आदि महा कवियों को भाषा से अधिक सरल, अधिक स्वाभाविक और अधिक सुन्दर है। हमको यदि प्रकृति

के अनुकूल होना है तो भाषा की सरलता, सुबोधता, तथा अविकल प्रवाह को बनाये रखने के लिए जन भाषा के शब्दों को हिन्दी में लाना ही होगा। हिन्दी को सुसंस्कृत बनाने के प्रयत्न का फल आज यह हो रहा है कि हमारे वे लेखक जिनके पास संस्कृत का पूरा ज्ञान नहीं होने के कारण शब्दों का भण्डार छोटा है अपने लेखों में कुछ इने-गिने शब्दों के सहारे ही भाव व्यक्त कर देते हैं जिससे उनका वर्णन अधूरा रहता है। वे देशी शब्दों का प्रयोग इस भय से नहीं करते कि भाषा की संस्कृति नष्ट हो जायगी। पर साथही जो दिग्गज विद्वान हैं और जिनका शब्द भण्डार विशाल है वे भी इस भय से अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हिचकते हैं कि लेख कठिन और दुर्बोध हो उठेगा। दोनों दशाओं में प्रति फल यह होता है कि हिन्दी दिनों-दिन शब्दों के प्रयोग में बलवती होने के स्थान पर निर्बल होती जाती है, इसलिए आवश्यक यह है कि प्रचलित या अप्रचलित पर सुन्दर और सुबोध तथा उपयुक्त ततसम और तद्भव शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ हम ठेठ ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग करें और भाषा को अधिक सुबोध, सरल तथा प्रौढ़ बनावें। कला-कौशल आदि विषयों से सम्बन्ध- रखनेवाले हजारों शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग उनके स्थानों पर हम लेखक नहीं करते, उनका प्रयोग करने से हिन्दी भाषा तो सबल होगी ही साथ ही हमारा वर्णन भी प्रौढ़ होगा।

भाषा सम्बन्धी अपनी इसी मान्यता का आदर्श सामने रखकर मैंने फरार की डायरी में जनपद की भाषाओं और मुहावरों को आवश्यकतानुसार अपनाया है। यह प्रयास सांस्कृतिक भाषा के हिमायती

लेखकों को कटु अवश्य लगेगा और उनके मन को पाठ करते समय इससे दुःख भी पहुँचेगा, परन्तु भाव और भाषा का प्रवाह तथा वर्णन शैली की प्रौढ़ता और रसों की परिपुष्टि में उनको निराश कभी नहीं होना पड़ेगा, और इससे उनकी भाषा सम्बन्धी रंच मात्र की कटु-अरूचि जो उनके मन में उत्पन्न हो गयी होगी जाती रहेगी।

विख्यात सोशलिस्ट नेता और इस पुस्तक के भूमिका लेखक श्री बाबू जयप्रकाश नारायणजी को अध्ययन करते समय मैंने जो पृष्ठ ७१ पर उनके जेल से फाटक खोल कर निकल भागने की योजना के सम्बन्ध में उनकी अदूर दर्शिता की निन्दा की है। उसमें कुछ भ्रम हो गया है। उसके सम्बन्ध में मैंने उनसे बातें की तो पता चला कि यह बात तब की है जब जमशेदपुर के सिपाही कैदी नहीं आये थे। और यह योजना कार्य्यान्वित भी अवश्य हुई होती परन्तु आपसी मतभेदों के कारण तथा बात फैल जाने की वजह से इसको रोक देना पड़ा।

जब मैंने उनसे इस योजना को कार्य्यान्वित करने के बाद होने-वाले बुरे परिणामों तथा इस योजना की निस्सारता के सम्बन्ध में प्रश्न किया तब उन्होंने कहा, "यह निश्चित था कि सिपाही बन्दूक नहीं चलाते। और यह भी निश्चित था कि जेल से बन्दी निकल भागने में विना खूँरेजी के सफल भी होते। इसी से यह योजना भी सोची गई थी। अब प्रश्न यह है कि इससे लाभ क्या होता? फिर सब लोग पकड़ कर बन्द कर दिये जाते? तो इसका उत्तर यह है कि जैसे क्रान्ति के सभी कार्य्य-क्रम आते हैं और अपने प्रचार सम्बन्धी थोड़ा बहुत कार्य्य करके खतम हो जाते हैं वैसे ही यह भी होता।

इससे निर्भीकता की भावना, लड़ने का साहस, क्रान्ति करने का उत्साह, जन साधारण में प्रवाहित होता। और भावी क्रान्ति की तैयारी में इससे सहायता मिलती। ४२ के आन्दोलन से जो लाभ हुए उन्हीं लाभों में यह जेल से निकल भागना भी एक योग प्रदान करता।" मैं उनकी बातों को सुनकर उनके अकाट्य तर्क का कायल हुआ। इससे यही आवश्क हुआ कि इसका स्पष्टीकरण कर दूँ। नहीं तो उनके महान व्यक्तित्व पर यह लाञ्छना रह जायगी। साथ ही इसे अपराध के लिए उनसे क्षमा भी मांग लूँ।

फरार की डायरी के प्रकाशन के लिए हिमालय प्रकाशन प्रेस ने भार तो अपने ऊपर ले लिया अवश्य, पर उसके अपने प्रेस खाली न होने के कारण छपाई और व्यय आदि का सारा बोझ मेरे ही मथ्थे उसने लाद दिया, जिससे मुझे अनेक प्रेसों के दरवाजे खटखटाने पड़े। जून से लेकर अगस्त तक सरकारी अदालती मुकद्दमे की पैरवी की तरह मुझे इसकी छपाई के लिए प्रयत्न और पैरवी करनी पड़ी। तब कहीं पुस्तक छप सकी। वह भी दो प्रेसों में। लाख चेष्टा करने पर भी कम्पोजिटरों और प्रूफ रीडरों की कृपा अकृपा में परिणत हुए विना नहीं रह सकी। और पुस्तक अनेक स्थलों पर अशुद्ध छप गयी। इस कठिन समय में जब तक अपना प्रेस नहीं हो तब तक कोई भी शुद्ध और अच्छी छपाई नहीं करा सकता। फिर भी एक शुद्धि पत्री दे दी गयी है। अब पाठकों से प्रार्थना है कि उसके सहारे वे सही सही अर्थ समझ लेंगे। दूसरे संस्करण में या अन्य पुस्तकों में अब इसका सुधार होगा। इसी के साथ पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरी रचनाओं को ग्रन्थ-माला के रूप में निकालनें का हिमालय

प्रकाशन प्रेस ने निश्चय किया है जिसका यह प्रथम पुष्प है। दूसरी और तीसरी मणिका 'वह शिल्पी था' तथा 'तुम राजा, मैं रङ्क" होगी जो इसी मास में निकल जाँयगीं

नव साहित्य मन्दिर
एग्जिविशन रोड
पटना
८-६-४६

दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह

फरार की डायरी

१९४३

विषय-सूचीपत्र

संख्या	क्र०-ता० डायरी	विषय	पृष्ठ से-	पृष्ठ तक

-:०:—

फरार की डायरी

१९४३

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१—१—४३

आज यद्यपि हम भारतवासियों के नव-वर्ष का प्रथम दिवस नहीं है, फिर भी विदेशी संवत् के दिन को ही हमलोगों ने डायरी लिखने के लिए वर्ष का प्रथम दिवस मान रक्खा है। इसका कारण विदेशी शासन के अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता है? सन् १९४२ ई० के अंतिम अर्द्ध भाग की डायरी बड़ी रोमांचक और राजनीतिक क्रान्ति तथा दमनपूर्ण घटनाओं के विवरण से भरी पड़ी है। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में, जब कभी भी लिखा जा सके, यह बड़े महत्त्व की वस्तु होगी। ९ अगस्त से लेकर २२ अगस्त तक की डायरी, जब कि मैं पकड़ा गया, स्वतंत्र भारत की सफल क्रान्ति की जीती जागती कहानी है। जी तो चाहता है कि कम से कम उसका सारांश इस डायरी के प्रारंभ में लिख ही डालूं। पर, यहाँ जेल में, ऐसा करना किसी वास्तविक हित को नहीं सिद्ध करेगा। प्रथम तो वह यहाँ से निकलकर बाहर नहीं जा पायेगा। फिर, इसके गवर्नमेंट के हाथ में पड़ जाने से, दमन करने में उसे और सहायता मिलेगी। यदि चाहूँ तो चोरी से उसे जेल से बाहर निकाल सकता हूँ, पर वैसा करना मेरे गांधीवादी सिद्धान्त को कबूल नहीं

है। भगवान वह दिन दिखलावें, जब हम उस अमर क्रान्ति का इतिहास लिखने और प्रकाशित करने योग्य हो सकें।

साहित्य की सभी परिभाषाओं में मुझे 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' वाली व्याख्या सबसे अधिक मान्य है। इधर कई दिनों से 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' पर मैं एक दूसरी ही दृष्टि से विचार कर रहा हूँ। मेरी धारणा हो रही है कि कला में 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' का निर्वाह करने के लिए वास्तव में कल्पना और बुद्धि के प्रयास की उतनी आवश्यकता, नहीं है जितनी चेतन हृदय की स्वाभाविक अनुभूतियों, संसार और समाज में स्वतः संघटित होनेवाली घटनाओं, और व्यक्ति के मन में इनसे उत्पन्न होनेवाले घात-प्रतिघातों को सच्चे रूप में, बिना नमक-मिर्च मिलाये लिखने की जरूरत है। प्रकृति की यावतेक क्रिया सत्य, कल्याणमयी और सुन्दर है। यदि कलाकार, उसको ठीक से समझकर, उसकी ही रूपरेखा के भीतर उसको अंकित कर देता है, तो उसकी कला में सत्यं-शिवं-सुन्दरम' के तीनों रूप अवश्य प्रकट हो उठेंगे। अतः ऐसी कला के निर्माण के लिए मेरे विचार से सर्वोत्तम विधि यह होगी कि किसी व्यक्तिविशेष की सच्ची जीवनी, बिना अतिरंजना के, ठीक-ठीक, असली रूप में लिखी जाय। परन्तु, ऐसा करने में भी अतिशयोक्ति की काफी गुंजायश है। चाहे लेखक या व्यक्तिविशेष, जो भी उसका प्रयास करे, दोनों से भूलें होने की, अतिरंजना होने की संभावनाएँ हैं। निष्पक्षता का निर्वाह, बिना किसी सामाजिक निन्दाभय के, आद्योपान्त होना आवश्यक होकर भी, कठिन है। इसलिए बहुत सोच समझकर आज मैंने यह निश्चय किया है कि अपने भावी दो-तीन वर्षों की डायरी लिखते समय उपर्युक्त बातों का

निर्वाह करने का अत्यधिक प्रयत्न करूँगा। इसमें किसी तरह से व्यक्तिगत पक्षपात या ममत्व की भावनाएँ न आने दूँगा। इस संकल्प से अपने, बाहरी और भीतरी, सच्चे जीवन की सच्ची घटनाओं का यथातथ्य विवरण अपनी डायरी में लिखने की प्रतिज्ञा आज मैंने की। इसमें अपने व्यक्तित्व की सभी स्वाभाविक घटनाओं को बिना पक्षपात, भय, और लज्जा के, असली रूप में लिखने की यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। फिर भी, शिष्टता और सुरुचि का विचार तो रखना ही पड़ेगा, क्योंकि इसके बिना वह बेकार हो जायगा।

यद्यपि यह प्रयत्न स्वाध्याय का प्रयास कहा जायगा, पर इसमें, स्वाध्याय की सीमा से आगे बढ़कर, बाहरी घटनाओं और मन के विचारों का उतार चढ़ाव असली रूप में लिखने का जो संकल्प है, वही इसे, शायद, कला की वस्तु बना देगा। अतः साहित्य और कला के क्षेत्र में, मैंने आज से एक नया अनुसंधान, नई शैली में करने का हौसला बाँधा है। देखें, इसका परिणाम कैसा होता है! यदि अपनी निष्पक्षता और सच्ची घटनाओं को लिखने की ईमानदारी ठीक से निभा पाया, तो कोई कारण नहीं कि यह चीज 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' क्यों न हो।

चूँकि मैं एक साहित्यकार हूँ, और अपनी लेखनी अनुभव के आधार पर चलाता हूँ, इससे यदा-कदा अपनी साहित्यिक बातें भी शायद इसमें बिना आये न रहेंगी। जब बाह्य घटनाओं की प्रतारणा से मनजगत् में साहित्यिक-स्फूर्ति जाग्रत होगी, तो उस दशा में जो छोटी मोटी साहित्यिक उपज होगी, उसको भी तो इस डायरी में अंकित करना मेरा परम कर्त्तव्य होगा। लेकिन, किसी पुस्तक का निर्माण यदि इस अवधि में करना पड़ा, तो उसे इस

डायरी के रूप में नहीं रक्खा जायगा—क्योंकि उसमें कृत्रिम-कला-निर्माण का प्रयास रहेगा, और फिर, उतना विस्तृत स्थान भी इस डायरी में नहीं मिल सकेगा।

परन्तु, फिर भी, अपनी लेखनी की जो भाषा और शैली है, और उसमें रंग भरने की जो आदत है, उसको हटाने में मैं कहाँ तक सफल बन सकूँगा, यह नहीं कह सकता। प्रयत्न करके भी उसमें विफल होने की ही अधिक संभावना है।

इन निश्चयों के साथ, इस कारागार में, १९४३ के प्रथम दिवस की डायरी आज लिखी गई। ईश्वर इस प्रतिज्ञा को अक्षरशः पालन करने की मुझे शक्ति दे।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

२१-१-४३.

आज नयी डायरी जेल के आफिस से भेजी गयी। १) कीमत है। आज से डायरी में अपनी डायरी लिखनी शुरू की। आज तक जेल से मिले हुए कागजों पर ही डायरी लिखता था। डायरी का मूल्य अपने जमा रूपये से देने के लिए चिट भेज दिया।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

२२-१-४३

'कन्या को पत्र' (नारी-जीवन-साहित्य) के कुछ पृष्ठ लिखे। भोजपुरी के जो नये गीत घर से आये, उनको रस के क्रम से अलग किया। रात्रि में 'रोमाञ्चक रूस तथा Encyclopdedia of Sex पढ़ा कल घर से पत्र आया था। जेल में पत्र आना एक तरह से सुखद और

दूसरी तरह से दुखद भी है। सुखद इसलिए कि कुशल-क्षेम मिल जाता है और दुखद इस हेतु कि स्मृतियाँ ताजा हो उठती हैं। माया-मोह जाग जाते हैं।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग
२३-१-४३

आज एक साहित्यिक मित्र कृष्णमोहन वर्मा ('योगी'-सम्पादक) दूसरे वार्ड से ,आज्ञा लेकर मिलने आये। बड़ी देर तक साहित्यिक चर्चा होती रही। वे मेरे भोजपुरी लोकगीतों के संग्रह से बड़े प्रभावित हुए। कहा—'आप बड़े प्रतिभा-सम्पन्न हैं।' मेरी एक-दो प्रकाशित रचनाएँ पढ़ने को ले गये। मुझसे उपन्यास लिखने का अनुरोध किया।

सेण्ट्रल जेल,हजारीबाग
२४-१-४३

कलह अखबार में यह खबर पढ़ने को मिली थी कि सिन्ध में एक उन्नीस वर्षीय बालक को-रेल-लाइन के फिश ले प्लेट निकालने के अपराध में, फाँसी की सजा दी गयी है। इस संवाद से जेल में बड़ी सनसनी फैली है। सभी राजनीतिक बन्दी, इस नाबालिग बच्चे को फाँसी देने की सजा सुनकर बहुत ही क्षुब्ध हैं। अपने अपने वार्ड में मीटिंग करके इस आज्ञा के विरोध में मत प्रकट किया गया और सारे दिन सभी राजनीतिक बन्दियों ने उस बालक के परिवार के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के अभिप्राय से, भोजन नहीं किया। हमलोग चाहते थे कि सब लोग मिलकर एक जगह मीटिंग करके अपना विरोध प्रकट करें। पर जेलवालों ने ऐसा होने में बाधा दी। उनका व्यवहार

हमलोगों के प्रति बहुत ही कटु हो गया है। जब से श्री जय-प्रकाशनारायणजी, अन्य बन्दियों के साथ, जेल से निकल भागे हैं, तब से हमलोगों के साथ जेलवालों का वैर साधने का-सा व्यवहार हर कार्य में प्रदर्शित हो रहा है। माना कि श्री जयप्रकाशनारायणजी के मत में जेल से भाग निकलना एक सिद्धान्त की बात है और इसके लिए, अपने विश्वासों के अनुसार, वे दोषी नहीं माने जा सकते, परन्तु जेलवाले तो उनको निर्दोष नहीं ही मानेंगे। और उनकी इस मान्यता की निन्दा भी तो कर ही नहीं सकते हैं। परन्तु, उस दोष के कारण, जेलवालों का वैर साधने का सा व्यवहार होना जो शुरू हुआ है वह किसी तरह भी उचित और न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। इससे भविष्य में एक महान् संघर्ष की सम्भावना उत्पन्न हो रही है। वैर-भाव से प्रेरित होकर हमलोगों के न्या-योचित खाने-पहनने-स्वास्थ्य-व्यायाम, रिश्तेदारों से भेंट-मुलाकात, चिट्ठी-पत्री, कपड़े, लत्ते, स्वतन्त्र निवास आदि, यहाँ तक कि पखाने की सफाई तक के प्रबन्ध में भी उन्होंने ढीलाशीली करना और उपेक्षा दिखाना शुरू कर दिया है। नजरबन्द कैदियों को साँझ सबेरे टहलने और घूमने तथा व्यायाम करने की सुविधा देने का उनका कानूनन कर्त्तव्य है। पर उन्हें भी सौ गज लम्बे और ३० गज चौड़े वार्डों में सदा बन्द ही रक्खा जाता है और वहाँ भी व्यायाम का कोई प्रबन्ध नहीं है। दवा-दारू में भी बड़ी उपेक्षा होती है। परसों की बात है। बा० अनुग्रहनारायण सिंह की तबीयत खराब थी। पर तब भी उनको अकेले बन्द किया गया। न अस्पताल भेजा गया और न हममें से किसीको उनके साथ रात में सेवादि के लिए रहने की अनुमति ही मिली। फलस्वरूप, रात-भर उन्हें बेहद तक-

सौफ झेलनी पड़ी। कई बार कय भी आये। शायद कुछ देर के लिए बेहोशी भी आ गयी थी। मैं कितने दिनों से Superintendent से अपने फैलेरिया का आपरेशन स्थानीय सिविल सर्जन के ही द्वारा कराने के लिए कई दरखास्तें दे चुका हूँ पर उनपर कोई सुनवाई नहीं होती। जब से मि० नलवा यहाँ नये सुपरिन्टेन्डेन्ट होकर आये हैं, तब से इस वैर-भाव के व्यवहार का और बोलबाला हो गया है। कई पंजाबी सहायक जेलर, जो भूतपूर्व बर्मा सरकार के नौकर थे, यहाँ बुला लिये गये हैं। उनकी तथा स्वयं सुपरिण्टेण्डेण्ट की भावना हम राजनीतिक बन्दियों के प्रति ठीक वैसी ही है जैसे वे अपने जीवन भर में साधारण अपराधी बन्दियों के प्रति बर्मा में रखते चले आये हैं। हमारी स्वतंत्र और निर्भीक वार्ता, हमारे निडर व्यवहार और मरने के लिए सदा तैयार रहने वाली Spirit को देख कर वे जहाँ डरते हैं वहाँ उसे कुचलकर नष्ट करने के लिए भी सदा उत्सुक और सचेष्ट रहते हैं। उनका विश्वास लाठी की शक्ति में है। इससे बन्दियों और अधिकारियों में आपस की कटुता दिन-दिन बढ़ती जाती है और उग्र-विचारधारियों की भावना उनके प्रति बहुत कटु होती जा रही है। एक न एक दिन महान् संघर्ष होने की आशंका है। अभी २६ जनवरी को ही स्वतंत्रता-दिवस मनानेवाली बात को लेकर महान् संघर्ष की आशंका की जा रही है। यद्यपि जेल-अधिकारियों का, ऊपर की आज्ञाओं के कारण जी तोड़ परिश्रम हो रहा है कि राष्ट्रीय झंडा जेल में न फहराया जाय, पर उग्र-विचारवाला बहुमत राष्ट्रीय दिवस मनाने पर तुला हुआ है। सुपरिण्टेण्डेण्ट बड़े नेताओं (श्री बाबू और अनुग्रह बाबू) से वार्ता करके इसको निपटाना चाहते हैं। लेकिन इस

समय इनके व्यवहार इतने बुरे हो रहे हैं कि वे भी किसी तरह इस प्रश्न पर झुकना नहीं चाहते। हाँ, सब कुछ अहिंसा के सिद्धान्त के भीतर ही सम्पादित हो ऐसा वे जरूर चाहते हैं। परन्तु, हममें कुछ ऐसे हैं, जो इन बड़े नेताओं की सलाह को भी शिरोधार्य करने पर राजी नहीं होते। देखें, कल आपस में क्या तय पाता है और २६ ता० को क्या होकर रहता है!

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

२५-१-४२

आज हमारे नं० ६ वार्ड में बाबू श्रीकृष्ण सिंह और बाबू अनुग्रह-नारायण सिंह के पास, जब जेल के अधिकारियों ने यह कोशिश की कि राष्ट्रीय झंडा यहाँ जेल में न फहराया जाय, तब उन्होंने हर वार्ड के प्रतिनिधियों से वार्ता करने की माँग पेश की। अधिकारियों ने यह सुविधा देने से इन्कार किया। तब नेताओं में यह राय तय पाई कि अपने-अपने वार्ड में मीटिंग करके, जैसा जो चाहें, करें। हम-लोग जब एक दूसरे से मिलने नहीं दिये जाते, तब यहाँ से कोई फतवा सब के लिए जारी कर देना उचित नहीं होगा। हमारे नं० ६ वार्ड की मीटिंग में उग्र-विचारवालों का बहुमत नहीं है। जब इस वार्ड की मीटिङ्ग हुई, तब श्री बाबू और अनुग्रह बाबू ने यह बात सुझायी कि झण्डा-अभिवादन का कार्यक्रम हम जेल में झण्डे के सम्मान के साथ निबाह नहीं सकते। ऐसा नहीं हो कि हमारा झंडा हमारे ही सामने अपमानित किया जाय। इसलिए अच्छा यह होगा कि कल स्वतन्त्रता-दिवस को हम झंडा-अभिवादन के कार्यक्रम

को छोड़कर शेष सभी कार्यक्रमों का पालन करें। पर यह निर्णय केवल हमारे नं० ६ वार्ड पर ही लागू हो, शेष वार्ड अपने अपने निर्णय के अनुसार कार्य करने को स्वतंत्र रहें, यह निर्णय उनके सामने केवल एक सलाह के रूप में ही रहेगा। यदि वे ऐसा नहीं करना चाहते, तो उनपर कोई इसका दबाव नहीं समझा जाय। इसपर विरोध में चन्द उग्र विचार के भाईयो ने झंडा-अभिवादन का प्रस्ताव रक्खा। मैं उग्र-विचारवालों के जोश-भरे क्षणिक उद्दण्ड विश्वासों का समर्थक नहीं। मैं बात कम और कार्य अधिक करने के सिद्धान्त का पक्षपाती हूँ। मैं यह नापसन्द करता हूँ कि सभा में प्रस्ताव पेश करते समय तो साहस और पौरुष की बड़ी ऊँची २ बातें कही जायँ और हम बड़ी-बड़ी डींगें हाँके; पर कार्य के मैदान में, जब परीक्षा का समय आवे, तब हम तरह दे जायँ। इसलिए प्रस्ताव का विरोध करते हुए मैंने कहा, यदि हम अपने को इतना संगठित और मरने के लिए तैयार समझें कि हम स्वतन्त्रता-दिवस के सभी कार्यक्रमों को, यहाँ जेल में, अन्त तक निर्वाह ले जायेंगे, तब तो उनको करने का संकल्प करना उचित है, अन्यथा नहीं। परन्तु, मेरा विश्वास है कि हमको ऐसा संग्राम करने का संगठन और बल, यहाँ इस जेलखाने में शायद प्राप्त नहीं है, और यदि प्राप्त भी कहा जाय, तो उनके प्रदर्शन का अवसर और सुविधा हमको यहाँ जेल में लभ्य नहीं है। साथ ही गांधीवाद की अनुमति भी उसके पक्ष में नहीं ही है। अतः नीतितः और सिद्धान्ततः, दोनों तरह से हमको अपने अग्रज नेताओं का सुझाव मान्य होना चाहिये" इसपर वोट हुआ। उग्र-पक्ष का प्रस्ताव गिर गया।

परन्तु, अन्य, वार्डों में, खासकर-नं० १-२-३ वार्डों में झंडा-अभिवादन का प्रस्ताव भी पास हुआ और यह निश्चय हुआ कि अपने

वार्ड में सब लोग झंडा-अभिवादन के कार्यक्रम का भी पालन करें। इस प्रस्ताव का पास होना सुनकर हमारे वार्ड के दो-एक तथा-कथित उग्रवादी भाई कुपित हुए और अपने नेताओं की निन्दा करने लगे, रात को बन्द होने के पूर्व तक इसी विषय पर हमलोगों में वाद-विवाद होता रहा।

सेण्ट्रल जेल, हज़ारीबाग

२६—१—४३

कल, नव बजे रात को सारे जेल के सब कैदी बन्द किये गये। आज एक बजे रात के क़रीब, न० १-२-३ वार्डों से गांधीजी की जय के नारे लगने शुरु हुए। थोड़ी देर बाद ही सारा जेल (इसमें साधारण कैदी भी शामिल थे, जिसके लिए उन्हे सजा दी गयी) अनेक राष्ट्रीय नारों से गूँजने लगा। हमलोग भी जाग गये और हममें से कुछ लोगों ने, जिनमें मैं भी शामिल था, नारे लगाने शुरु किये। बड़ा हल्ला हुआ। इस बीच हम लोगों ने चिल्ला कर दूसरे सटे-वार्ड-वालों से इस शोर का कारण पूछा। पर पता चला कि नं० १-२-३ वार्ड में हर सेल की तलाशी ली जा रही है और मार-पीट भी हो रही है। इस पर और भी जोरों से नारे लगने लगे। ऐसा मालूम हो रहा था कि दो हजार कण्ठ-स्वरों से सारा जेल गूँजकर थर्रा उठा है और आकाश फटा जा रहा है। यह नारा लगभग चार बजे तक लगता रहा। प्रातः काल जब हमारे नं० ६ वार्ड के सेल खोले गये। तब वार्ड और सफैया (भंगी) से खबर मिली कि विगत रात जेलर ने अपने दल-बल के साथ एक नं० से लेकर ३ न० तक, के वार्डों के सभी सेलों की तलाशी ली है, और जितने राष्ट्रीय झंडे उसको मिल सके,

उन सबको वह उठा ले गया। यह भी सुना गया कि किसी बन्दी के साथ उन्होंने बल का प्रयोग भी किया है। इसी संवाद के साथ यह भी खबर मिली कि इस नं० ६ वार्ड को छोड़कर शेष सभी वार्ड बन्द ही रक्खे गये हैं। एक-एक सेल खोलकर उसका बन्दी बाहर निकाला जाता है और पहरे के अन्दर पाखाना-पेशाब के बाद पुनः बन्द करदिया जाता है। खाने-पीने के लिए भनसिया (खाना बनाने-वाले कैदी भो किसी वार्ड में नहीं भेजे गये। २००० के करीब साधारण बन्दी भी अपने-अपने वार्डों में बन्द ही रक्खे गये हैं। उनको भी किसी खास संख्या में निकाल-निकाल कर शौचादि कराया जा रहा है। इस सूचना को पाते ही पाते हमारे नेता बाबू अनुग्रहनारायण सिंह जी जेल कौंसिल के सभापति हैं, आदेश हुआ कि कल के निश्चय के अनुसार हम झण्डा तो नहीं ही फहराएंगे, पर चूँकि हमारे अन्य भाइयों को बन्द रक्खा गया है, इसलिए हम भी अपनी इच्छा से दिन भर सेल में बन्द रहेंगे और पाँच बजे के पूर्व बाहर नहीं निकलेंगे। इस आज्ञा को सुनकर हमारे दो-चार पूर्वकथित उग्रवादी-नेताओं ने गरम-गरम बातें करनी शुरु की और वे यह कहने लगे कि हमलोग झंडा फहरायेंगे। पर मुझसे न रहा गया। मैंने बातों ही बातों में व्यंग्य परामर्श दिया कि "आपलोग झंडा अवश्य फहरायें। खुले तो हैं ही। ऐसा मौका न मिलेगा।" पर इस कथन पर लगे वे बगलें झाँकने-कहने लगे कि हम वार्ड के निश्चय के खिलाफ़ कैसे जा सकते हैं। लेकिन हम बन्द भी नहीं होंगे। जेलवाले आकर जबरदस्ती से हमें बन्द करें। मैंने हँसकर कहा—"यह भी एक हिम्मत की बात है। यही कीजिये। पर जब हम सब लोग अपने २ सेल में चले गये, तब वे भी, बाबू अनुग्रहनारायण सिंह के महज एक

संकेत पर ही अपने सेलों में घुस पड़े। यद्यपि हम लोगों ने आपस में निश्चय कर लिया था कि आज दिन का भोजन नहीं करेंगे, पर तब भी जेलवालों के पास यह खबर नहीं दी गयी थी और उनका यह कर्त्तव्य था कि वे हमें भोजन दें। पर उन्होंने कानून के विरुद्ध खाने का कोई भी प्रबन्ध सारे राजनीतिक कैदियों के लिए दिन-भर कुछ नहीं किया। फिर आश्चर्य्य की बात तो यह हुई कि जेलवालों के इतनी सख्ती और चौकसी करने पर भी सभी वार्डों के प्रायः हर सेल के सीकचे पर राष्ट्रीय झंडा पूर्व निश्चय के अनुसार व्यक्तिगत रूप में फहराया ही गया। और सबों ने सेल के भीतर ही से झंडा-अभिवादन के गीत गाये और नेशनल प्लेज भी लिया। हमलोग नं० ६ वार्डवाले भी पूर्व निश्चय के अनुसार अपने-अपने व्यक्तिगत रूप में झंडा फहरा कर झंडा-अभिवादन के कार्य-क्रम को छोड़कर शेष सभी कार्य-क्रमों को पूरा किया। हर सेल में एक-एक प्लेज था। एक सेल के दारवाजे पर खड़ा होकर जोर से एक आदमी ने उसे पढ़ना शुरू किया और सबों ने उसको दुहराया। फिर राष्ट्रीय गान हुआ। उस समय का एक अजीब दृश्य था। जेल-भर में हर वार्ड के हर सेल के दरवाजे पर उमंग, साहस और निर्भीकता मौजें, ले रहीं थी। हृदय बासों उछल रहा था। इस प्रार्थना के कार्य-क्रम समाप्त होने पर बैठकर सूत कातने का कार्य-क्रम जारी हुआ जिसे ५॥ बजे तक चलाया गया। इसी बीच में कभी-कभी गीता, या रामायण का पाठ भी हममें से कोई रुचि के अनुसार कर लिया करते थे। सर्दी भी आज कुछ विशेष थी। फिर नहाकर तुरत ही सेल में मैं चला गया था। स्नान भी ताजा पानी न मिलने के कारण बासी पानी से ही किया था। इससे सारे बदन में दर्द पैदा हो

गया। बाहर एक सफैया था। वही कमोड वगैरह साफ कर दिया करता था। एक पनिहा पानी दे दिया करता था। मैं सारे दिन बैठा-बैठा सूत कातता रहा। कभी-कभी जब थक जाता, तो गीता-पाठ करता या रामायण पढ़ता। हम लोग तो ५॥ बजे बाहर निकल आये, पर हमारे शेष भाई ३६ घंटे तक सेल में ही जबरन बन्द रक्खे गये। यह भी खबर मिली कि तीन वार्डों में, जहाँ लोग झंडा लिये रहे, दो से एक सेल में जेलर ने जबरदस्ती झंडा लेना चाहा, पर थोड़े परिश्रम में कृतकार्य नहीं हो सकने के कारण फिर यह नीति लोगोंने बन्द कर दी। मेरे वार्ड में महामाया बाबू के झंडे को बर्मा से नये आये हुए एक मुसलमान सहायक जेलर ने लेना चाहा था, पर पास ही खड़े सत्यनारायण बाबू के डाँटने पर वह रुक गया। हमारे अनुग्रह बाबू ने भी अपनी बाँह पर झंडा लगा रक्खा था और उसको वे जीते जी या शक्ति रहते न छोड़ने की हिम्मत रखते थे। रात को आठ बजे पूड़ी-तरकारी जेनरल मेस में से भेजी गयी। अन्य वार्डों में भी वह भेजी गयी, पर पता चला कि ठीक से भोजन-वितरण नहीं हुआ और नं० ६ वार्ड के बन्दियों को रात-भर भूखा ही रहना पड़ा। गया से सेण्ट्रल एसम्बली के सदस्य शाह उम्मेर को बिना कमोड और पानी के ही जेलवाले दिन-रात बन्द किये रहे। इसलिए अनशन करने का निश्चय करके उन्होंने रात को खाना नहीं लिया। नं० ६ में खाना कतई नहीं पहुँचा था। इसलिए वहाँ के एक नाबालिग लड़के ने जेल के कुछ वस्त्र जलाकर आलू भून कर खाया। उस अपराध में उसको एक नवागन्तुक सहायक जेलर उसे वार्ड से बाहर घसीट ले गया और जूते की ठोकर से उसे बहुत पीटा। फिर दूसरे

वार्ड के एक जेल में ले जाकर विना कम्बल के ही बन्द कर दिया।
इन सब सख्तियों और चौकसियों के बीच लोहे के चने चबा चबा कर स्वतंत्रता-दिवस इस जेल में आज मनाया गया और सरकार की झंडा उड़ाने देनेवाली नीति का उल्लंघन किया गया। सरकार ने अपनी विरोध नीति पर अमल करके इसको और Serious बना दिया। आज का दिन तो इस तरह बीता। अब कल देखें क्या होता है, अपने जीवन में यह दिन सदा ही मधुर स्मृतियों के साथ स्मरण किया जायेगा।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग
२७-१-४३

आज २७ तारीख का प्रातःकाल तो ऐसा रहा मानों जेल से सरकारी राज्य ही उठ गया हो। जेल खुलते ही मैं शौच गया। लौट कर मुँह धो ही रहा था कि गुमटी की तरफ़ से राष्ट्रीय गानों की आवाज़ बड़े जोरों से आने लगी। मैं जल्दी से मुँह-हाथ धोकर गुमटी के पास अपने गेट के भीतर सीकचों से लगकर जब खड़ा हुआ, तो गुमटी के चारों ओर जो दस-ग्यारह वार्डों के गेट वृत्ताकार रूप में खुलते हैं, उन सब गेटों के सीकचों से लगकर बहुत पीछे तक करीब-करीब सभी वार्डों के राजनीतिक बन्दी झुंड के झुंड में खड़े थे और तीनबड़े-बड़े राष्ट्रीय झंडे .बाँसों में लगा कर चार वार्डों (नं० १, २, ३ और ६) के गेटों पर फहरा रहे थे और सारा जन-समूह झंडा अभिवादन का गीत गा रहा था। स्वर इतना उच्च और जोश इतना बढ़ा चढ़ा था कि ज्ञात होता था कि उस समय यदि जेल-अधिकारी तरह देकर चुप न लगा जाते, तो लाठी-चार्ज होकर ही

रहता। ३६ घंटों से सेल के भीतर निरन्तर बन्द रक्खे गये राजनीतिक बन्दी भूखे सिंह की तरह उस समय अपने आपे से बाहर हो रहे थे। उनमें एक ओर राष्ट्र-प्रेम और स्वतंत्रता-दिवस की मस्ती, दूसरी ओर जेलवालों के अत्याचार और शारीरिक बल-प्रयोग के कारण क्रोध, और तीसरी ओर जयप्रकाशनारायण जी के भागने के समय से आज तक के अधिकारियों के वैर-भाव-पूर्ण बर्ताओं से उत्पन्न हुई असन्तुष्टि की भावना, सब मिलकर उस समय के वातावरण को इतना कटु, इतना उग्र इतना जोशपूर्ण और काबू के बाहर की बात बना रहे थे कि जेल-अधिकारियों के रंच-मात्र की भी दस्तन्दाजी से अत्यधिक तूल खिंच जाता और लाटी चार्ज या फायर तक करने की नौबत आ जाती। हमारे वार्डों के भी दस-पन्द्रह नये खून वाले भी गेट के सीकचों से लगकर उसी गान में शामिल हो गये थे। उनमें एक मैं भी था। उस समय mob-mentality (जन समूह की उद्दीप भावना) का प्रभाव मेरे ऊपर ऐसा पड़ा कि मैं अपने सभी संजीदा विचारों को भुलाकर दुगुने जोश से उस समूह के साथ पागल सा-बनकर, चिल्ला-चिल्लाकर गाना गाने लगा।

इधर तो राजनीतिक कैदियों की यह दशा थी और उधर जेलर अपने सभी स्टाफ को साथ लेकर गुमटी के चारों ओर, गेटों से बीस गज के फासले पर खड़ा होकर,चुप-चाप यह दृश्य देख रहा था। इसी बीच सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० नलवा आया और उसने नं० २ वार्ड के भीतर जाना चाहा पर जैसे ही गेट पर पहुँचा कि "गो बैक गो बैक" के नारे लगने शुरू हुए। उसने तीन-चार वार्डों के गेट पर जाकर भीतर घुसने का प्रयत्न किया; पर इतने जोरों से वापस जाने के नारे लगने

शुरू हुए कि वह अन्दर जाने की हिम्मत नहीं कर सका। अन्त में, लाचार होकर वह नं० ६ के गेट पर आया और उसे खुलवा कर चुपचाप हमारे दोनों अग्रज नेताओं के पास पहुँचा। जेलर भी साथ था। सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ सिपाही भी काफी संख्या में लाठी के साथ मोजूद थे। आधे घंटे तक वार्ता करने के उपरान्त वह जब सेल से बाहर निकला, तो हमारे नेता (श्री बाबू और अनुग्रह बाबू) भी उसके साथ बाहर आये। हमलोग इकट्ठे हो गये। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा—"देखिये, हम नौकर हैं। हमको अपनी Duty करनी है। हमने उसे पालन करके, आपलोगों को ३६ घंटे बन्द रख कर, सामूहिक रूप में झंडा-अभिवादन नहीं होने दिया। फिर आपलोगों ने आज प्रातःकाल खुलते ही झंडा फहराया और उसका अभिवादन किया। यहाँ तक तो दोनों ने अपने-अपने मार्ग पर सही काम किया। पर यह जो गाली-गलौज होता है, यह हम पंजाबी सिक्ख कैसे बरदाश्त कर सकते हैं? हमारा स्टाफ ही बहुत बिगड़ा हुआ है। हमारे सहायक जेलर तो यह बर्ताव देखकर छुट्टी के बहाने इस्तीफा देकर चले जा रहे हैं। जेलर को भी लोगों ने माँ-बेटी की गाली दी है। इससे वह भी बहुत दुखी हैं और बदले का बर्ताव करना चाहता है।" इसपर हममें से चन्द उग्र विचारवालों ने जिनमें मैं और मुरली बाबू भी शामिल थे, बिगड़कर कहा, "बदला की धमकी की हमें चिन्ता नहीं हैं हम इस धमकी से नहीं डर सकते। आप लोगों ने जो अपने दुर्व्यवहार और दमन नीति से हमारा दिल दुखाया है, हमें दबाना चाहा है, हमें दुःख पहुँचा कर डरवाना चाहा है वह कुछ नहीं था? एक नन्हे-से बालक को जो आपके सहायक जेलर ने पीटा है, वह कुछ

नहीं है ? और किसी उद्दण्ड लड़के ने यदि कुछ कह दिया तो वह सब कुछ है और उस से बदला लेने की धमकी दी जाती है ? "

इसपर अनुग्रह बाबू ने कहा—गालीवाली-बातको हम सब बुरा कहते हैं और उसके लिए दुखी हैं और बिना कहे ही खेद प्रकट करते हैं। हमारी अहिंसा में गाली का कहीं भी स्थान नहीं है। पर आप लोग जयप्रकाशजी के भागने के बाद से लेकर इस समय तक हम लोगों के साथ जो बदले का बर्त्ताव कर रहे हैं, इससे बात बढ़ने के बजाय हरगिज नहीं घटेगी। डंडा और वैर-भाव के दबाव में पड़ कर हम नहीं दबाये जा सकते। आज इन सब काण्डों के पीछे आपलोगों के ऐसे बर्ताओं की प्रतिक्रिया ही काम कर रही है। आज ही देखिए अभी तक सभी राजनीतिक बन्दियों के पनिहा नहीं भेजे गये। ३६ घण्टे बन्द रखने के बाद भी हमको पानी वगैरह की जरूरत होगी—यह आप लोग नहीं महसूस करते ! अबतक कहीं भी मेसके आदमी नहीं भेजे गये कि नाश्ता पानी बने। हमारे वार्ड में भी एक ही मेस के आदमी और पनिहा आये हैं। और एक मेस में आदमी और पनिहा दोनों नहीं हैं। यहीं सब चीजें हैं जो बातों को बढ़ाती हैं और आपके शासन को असफल बनाती हैं। पंजाबी-सेल के मि० शाह उम्मेर साहब, जो सेण्ट्रल असेम्बली के मेम्बर हैं, अनशन इसलिए कर रहे हैं कि उनको बिना कमोड और पानी के ३६ घंटे आप लोगों ने बन्द रक्खा है। नं० ६ वार्ड में एक नाबालिग लड़के को रात के वार्ड से बाहर निकाल कर इसलिए पीटा गया और पंजाबी-सेल में बिना कम्बल के ही इस कड़ाके के जाड़े में बन्द कर दिया गया कि उस बच्चे ने खाना न पाने की दशा में कपड़ा जलाकर आलू भूनकर खाये थे। आपने ३६ घंटे तक सभी

राजनीतिक बन्दियों को बन्द रखना अपना फर्ज तो समझा पर उनमें जो भूखों रह गये, उनको खाना-पानी देना क्या आपका अपना कानूनी फर्ज नहीं था ?

इसपर तो सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब खामोश हुए। अन्त में यह तय हुआ कि दोनों तरफ से अब आगे सब ठीक से चले और इसी बीच में जो अत्याचार जेल के व्यक्तियों ने किया है, उसके लिए दोनों पक्ष से जाँच की जाय और जो कसूरवार हो उसे सजा दी जाय। गाली के लिए हम सभी कांग्रेसी दुखी हैं और खेद प्रकट करते हैं। इसके बाद दोनों नेता गुमटी पर ले जाये गये और उनको देखकर चन्द जोशभरे नवजवानों ने "शर्म-शर्म" की आवाज लगाई पर तुरत ही वे अपने अन्य साथियों द्वारा खामोश कर दिये गये। फिर इन नेताओं की आज्ञा से सभी राजनीतिक बन्दी अपने अपनेवार्ड के गेटों से हट गये। गीत गाना बन्द कर दिया गया। और तब दोनों नेताओं ने उन सभी वार्डों में जाकर जहाँ जेल-स्टाफ-वालों की सख्तियाँ हुई थीं, उस सम्बन्ध में वहाँ के बन्दियों से जाँच की।

इस जोशीले वातावरण में भी मैंने मार्क किया कि चन्द व्यक्ति, जो पार्टीबन्दी के प्रचार में अग्रज माने जाते हैं और अपनी लीडरी द्वेषात्मक बातों के प्रचार पर ही कायम रखना चाहते हैं, अपने को उस स्वभाव से उस समय भी वंचित नहीं रख सके। मि० ब० से तो मुझे तब दो-दो गरम बातें हो गयीं जब उन्होंने कहा, "आप नं० ६ वार्ड के लीडर हैं। हमलोगों ने उस वार्ड से असहयोग कर रक्खा है।" जब मैंने इसका उत्तर इससे कटु शब्दों में दिया और उन्हें जताया कि अपनेराम उनसे कम काम करनेवालों में तथा

उनसे कम प्रगतिशील विचार के नहीं हैं ,तब वे खामोश होकर लगे लल्लो-चप्पो की बातें करने। मैंने अपने वार्ड में भी दो-एक व्यक्तियों में यही बातें पायीं। फिर एक बात और देखी कि चन्द अति बड़े नेताओं को छोड़कर अन्यों में आपद-समय में भी अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के साधन में पारस्परिक सहानुभूति तथा सबकी जरूरतों को एक समान पूर्ति की भावनाओं का अभाव था। जैसे जब एक मेस के पनिहा आये, तब दूसरे मेसवाले जिनके पनिहा नहीं आये थे, उनसे काम न ले सके। वे सबके सब उस एक ही मेस के बाबुओं की सेवा में लग गये और दूसरे मेसवाले पानी तक के लिए तब तक मुहताज रहे जब तक गुमटी से जमादार आकर उन्हीं पनिहों को दो-दो बाबू पर एक-एक के हिसाब से बाँट नहीं गया। होना तो चाहिए था कि गुमटी से इस आज्ञा के आने के पूर्व ही यह प्रबन्ध आपस ही में कर लिया जाता। पर जब चन्द लोगों ने इस कमी को व्यक्त किया तो दूसरे लोगों की ओर से इसकी यह वजह कही गयी कि ऐसा करने का कारण केवल यही था कि वे लोग पूर्ववत् सभी बाबुओं के लिए एक-एक आदमी चाहते थे और यदि ऐसा प्रबन्ध कर लिया जाता तो जेलवाले दूसरे आदमी नहीं भेजते पर उनकी यह सफाई मुझे या अन्य भाइयों को पसन्द या मान्य न हुई।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

२६—१—४३

आज एक विशेष घटना घटी, जिससे मुझे अपनी कमजोरी का विशेष ज्ञान हुआ। मैं हँसी मजाक में भी कभी-कभी गम्भीर हो

आता हूँ जिसका फल बुरा होता है। यह मेरा दोष बहुत पुराना है। आज प्रात: काल जब शौच से आकर मुँह धो रहा था तो अपने मित्र मुरली बाबू, सर्चलाइट के सम्पादक, ने मजाक में मेरा डंडा हटा कर शारंगधर बाबू के कमरे में छिपाकर रख दिया। थोड़ी देर तक तो मैं उसे खोजता रहा क्योंकि मेरे टहलने का समय बीत रहा था। पर इसके बाद यह समझ कर भी कि मजाक किया गया है, मैं बिगड़कर अपने कमरे में चला आया। जब मित्र ने सत्यनारायण बाबू से डंडा भेज दिया तो मैंने उसे से लेने अस्वीकार ही न किया बल्कि उसे उठाकर रास्ते पर फेंक दिया और बका-झका भी खूब। इसपर मुरली बाबू स्वयं आये और अपने इस कृत्य के लिए उन्होंने मुझसे माफी माँगी। मैं बहुत ही लज्जित हुआ, अपने को धिक्कारा तथा मित्र से क्षमा मांगी। मुझे ऐसा करते समय इतनी ग्लानि हुई कि मेरे नेत्र भींग गये। मुझे अपने कुकृत्यों पर पश्चात्ताप करते देखकर मुरली बाबू का हृदय भी मुझे अकारण कष्ट पहुँचाने की बात सोचकर दु:खी हुए विना नहीं रहा। वे भी करुण हो गये। जहाँ इस घटना से थोड़ी देर के लिए हममें कटुता बढ़ गयी थी, वहीं इसके पश्चत्तापपूर्ण अंश से आपस की मित्रता की श्रद्धा और अधिक उन्नत कर गयी। सच है, कभी-कभी बुराई से भी भलाई हो जाती है।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

३१—१—४३

ता० २७ की शर्तों के अनुसार आज मुरली बाबू औरबाबू सत्य-नारायण सिंह पंजाबी सेल में उस लड़के से वास्तविक बातों की

जाँच पड़ताल करने के लिए जेलर द्वारा भेजे गये, जो ता० २६ की रात में पीटा गया था और अपने वार्ड से हटा कर वहाँ बन्द किया गया था। वहाँ से वापस आने पर सत्यनारायण बाबू ने उसका बयान अनुग्रह बाबू से सुनाया:—"मि० 'ए' (सहायक जेलर जो इस्तीफा देकर चला गया) मि० 'बी' और मि० डी (वार्डर) तथा मि० 'सी' (एक मुसलमान हवलदार) के साथ २६ की रात में करीब नव बजे न० ६ वार्ड में गये। मि० 'बी' ने जाते ही कहा— "यह आप लोगों की कौन-सी शराफत है कि जेल में सरकारी कपड़े जला दिया ?"

इसपर उस लड़के ने लेटे ही लेटे कहा, "और आपलोगों की यह कौन-सी शराफत है कि दिन में हमलोगों को खाना नहीं दिया ? सारे दिन बन्द रक्खा। अभी शाम से अन्धेरे में पड़े हैं। लालटेन में तेल तक नहीं। अभी तक खाना-पीना कुछ नहीं। नव बज रहे हैं। भूखों रहा नहीं गया तो कपड़ा जलाकर आलू पकाया और खाया। इसमें क्या बुरा किया ?" इसपर सहायक जेलर ने डाँट कर कहा:— "चुप-चाप सोये रहो। अधिक बात न करो"

इसपर लड़के ने कहा —"सोये तो हम हैं ही । बर्मा से भागकर यहाँ आये हो अब यहाँ से भी भगा कर बर्मा भेजे जाओगे।"

बस, इतना कहना था कि मि० 'ए' कांग्रेसी बालक का पाँव पकड़-कर वार्ड से बाहर खींच ले गया और पीपल के पेड़ के नीचे उसे अपने पाँव के बूटों से पाँच छः ठोकरें दीं। मि० 'बी' ने बीस-पचीस बेंत मारे। इसके बाद लड़के को लोग वार्ड के हाते के बाहर लाये और उसे मुसलमान हवलदार के सुपुर्द किया कि उसको ले जाकर वह पंजाबी सेल में बन्द करे। रास्ते भर हवलदार उसे पीटता गया। बड़े-जेलर उसके पीछे थे। वे कह रहे थे कि मारो मत

पर बर्मावाला नायक जेलर, हवलदार से यह कह कर रास्ते भर नंगे बदन बालको को पिटवाता रहा कि जब तक यह थूककर चाटे नहीं तब तक इसे न छोड़ो। उसने उस लड़के को वैसे ही पीटता हुआ पंजाबी सेल में ले जाकर बिला कम्बल और कपड़े के ही बन्द कर दिया। रात भर वह सर्दी के मारे के सुकड़ा किया। दूसरे दिन प्रातःकाल जमादार ने उसे खाना दिलवाया और एक आदमी से चोटों पर तेल लगवाया। जो नेता जाँच में गये थे, उन्होंने बेंत और जूतों के निशान उसके बदन पर देखे।

'कन्या को पत्र' (नारी जीवन साहित्य) के कुछ अंश लिखा। 'Ends and means' से कुछ नोट किया।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१-२-४३

आज प्रातःकाल जेलर ने घर से आया हुआ २७ जनवरी का तार मुझे दिया और कहा, "यह तार उसी दिन आ गया था। पर आफिस की गलती से वहीं पड़ा रह गया। मैं इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।" मैंने कहा, "मेरा काम हो गया है। मैं ने एक तार मुन्सिफ के नाम ता० २८ जनवरी को भेजने के लिए भेजा था। उसी को जाँच लीजिये कि गया कि नहीं।" मैंने इसपर उन्हें माफी भी दे ही दी। न देता तो करता ही क्या? कैदी जो था। इन लोगों ने इतने अत्याचार किये पर सब तो सहना ही पड़ा। सिवा विरोध-प्रदर्शन के और हम लोगों ने वास्तविक रूप में किया ही क्या?

अब छूटने का दिन जैसे-जैसे निकट आता जाता है वैसे-वैसे जल्द स्वतन्त्र होने की व्यग्रता बढ़ती जाती है। आज 'हृदय की ओर'

नामक मेरे उपन्यास को पढ़कर बाबू अनुग्रहनारायण सिंह ने सुबह की चाय पर उसके सम्बन्ध में वार्ता करते हुए कहा—"बीच-बीच में मुकुन्द और विलासिनी तथा अन्य पात्रों के बीच की वार्तायें बहुत ही सुन्दर उतरी हैं। पुस्तक बहुत अच्छी है। परन्तु, लेखक ने अन्त रहस्यवाद में करके अच्छा नहीं किया। उपन्यास अत्यधिक रहस्यवादी हो उठा है। उसे विलासिनी को सन्यासिनी नहीं बनाना चाहता था।"

मैंने पूछा, "यह तो ठीक है। पर मेरी समझ में उपन्यास के अच्छा बुरा होने की मोटी तरह से सबसे अच्छी परख यह है कि पढ़ते समय पाठक को यह देखना चाहिये कि समयानुकूल उसे हँसने या रोने को बाध्य होना पड़ा या नहीं, अथवा किसी एक पात्र से उसके हृदय में सहानुभूति और प्रेम तथा दूसरे से घृणा और द्वेष उत्पन्न हुआ या नहीं, और फिर अन्त में उसके मस्तिष्क तथा हृदय में सामूहिक प्रभाव अच्छाई की ओर पड़ा या बुराई की ओर। यदि ये सब बातें संघटित हुई और उसके हृदय में सामूहिक प्रभाव अच्छी दिशा में हुआ तो उपन्यास को मेरे विचार से सुन्दर उतरा हुआ समझना चाहिए। फिर इसके बाद उसकी भाषा, उसके प्रतिपादित विषय, वार्ता, वर्णन, कथानक, स्वभाव-चित्रण आदि का विचार करके उनके दोष-गुण को समझना आलोचक का काम है। आप सच-सच बतायें उपन्यास पढ़ते समय आपको स्थल-स्थल पर रोना और हँसना पड़ा कि नहीं और कभी-कभी विषयों की गम्भीरता में चिन्ता मग्न हुए अथवा नहीं? सच कहियेगा?"

इसपर अनुग्रह बाबू ने अपनी स्वभाविक मुस्कानके साथ उत्तर दिया :—"भाई, रोना तो कई स्थानों पर अवश्य पड़ा।

खास-खास पात्रों से प्रेम और सहानुभूति तथा घृणा भी अनुभूत हुए बिना न रह सकी। यह मैं कैसे अस्वीकार करूँ। विषय प्रतिपादन, कथानक आदि भी अच्छे ही हैं। पर चरित्र-चित्रण में शतील सिंह खानसामे का चरित्र पूर्ण विकसित नहीं हो पाया है और विलासिनी का संन्यासिनी होना जरा अधिक रहस्यवादी-सा हो उठा है। फिर भी यह अपनी तारीफ न समझो। मैं किसीकी तारीफ उसके मुँह पर नहीं करता।"

हम सब के सब हँसने लगे। रात को सोते समय मैं एक उपन्यास का प्लाट सोचता रहा जिसमें अपने को तो नायक और मि० 'एक्स' को सहायक नायक बनाने की कल्पना की तथा मि० (ल) के जीवन को बर्नार्ड शा के नाटक Pygmadiam के नायक Prof. Higgin के अनुरूप बनाने का तय किया। देखें, इसको कार्यान्वित कर पाता हूँ या नहीं।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

४-२-४३

आज अपने रेमिशन (मार्का) मिलने के सम्बन्ध में नाना तरह की बातें और अफवाहें सोचता और सुनता रहा। दो-एक अन्तरंग मित्रों से कहा भी कि मार्का मिल जाय तो घर पर होने वाली एक शादी में शरीक हो जाता। पर औरों के सामने तो अपनी नेतागिरी के दम्भ में अपने को इस विषय में इतना तटस्थ और निश्चिन्त बनाये रहा मानों मुझे छूटने की रंच मात्र भी चिन्ता नहीं है। मनुष्य मिथ्या दम्भ के वशीभूत होकर और समाज के भय से डरकर अपने को मिथ्याचारी और कितना विवश कर लेता है कि

उसके हृदय की भीतरी अनुभूतियों और जीवन के बाहरी आच-रणों में आकाश-पाताल का अन्तर आ जाता है।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

५-२-४३

आज अपने जिले के एक माननीय नेता, जो अभी तक फरार थे और केवल लुक-छिप कर इधर-उधर घूम-घामकर अपनी लीडरी कायम रखने के अभिप्राय से काम कर लेते थे, गिरफ्तार होकर यहाँ लाये गये। उनकी बातों को सुनकर मैं दंग हो गया। अगस्तवाले आन्दोलन के समय जब ये महाशय वेश बदलकर मेरे थाने में आये थे तो मुश्किल से दस मिनट ठहरने की हिम्मत इन्होंने की थी। और लोगोंके लाख आग्रह करने पर भी कोई सार्वजनिक स्पीच या राय देने के लिए राजी न हुए थे। उनकी बहादुराना करतूतों की डींग हाँकते सुनकर मुझे आश्चर्य हुए बिना न रहा। इसपर खूबी यह कि वे अपनी बातों में उन्हीं कार्यकर्त्ताओं के नाम लेते थे जो उनकी पार्टी के पिट्ठू थे और जिनका वास्तव में कोई कार्य भी वैसा नहीं हुआ था। जब अग्रज नेता के सामने यह बड़ी-बड़ी बातों के साथ अपने जिले की राजनीतिक दशा का सिंहावलोकन करने लगे तो इनके मुख से आन्दोलन के समय की घटनाओं का वर्णन सुन-सुन कर मुझे हँसी आ रही थी। इनके ८० फी सदी वाक्य अपने तथा अपनी पार्टी के सम्बन्ध की प्रशंसा से ओतप्रोत थे। अग्रज नेता तो सब जानते ही थे, फिर भी वे प्रश्न पर प्रश्न करते चले जा रहे थे। अपना कथन समाप्त करके उन्होंने इन शब्दों में अन्तिम वाक्य समाप्त किया, "जिले भर में आन्दोलन खूब जरूर किया

गया है पर दमन का आंतक अब नहीं है और अंग्रेजों के प्रतिकूल भाव जनता में पहले से भी अधिक हैं। सोशलिस्ट और आतंककारी-दल छिपे-छिपे घूम रहे हैं। कहीं-कहीं एक-दो बम उड़ा देते हैं। गांधीवादी भी, जिनके नाम वारंट है, छिपे-छिपे इधर-उधर घूम कर अहिंसा को समझा रहे हैं। सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं ने, जो अभी इस जेल से निकल भागे थे, अपने नाम से एक पर्चा बँटवाया था, जिसमें उन्होंने जेल से अपने भागने का कारण यों लिखा था—'मैं राजनीतिक बन्दी था। जब मौका मिले, निकल भागना मेरा कर्त्तव्य था।" और जनता के लिए संगठित होने के अनेक कार्यक्रम थे। किसी का एक पर्चा ऐसा भी निकला था, जिसमें फी सदस्य पन्द्रह रु० देकर पांच लाख रुपये इकट्ठा करके सेना तैयार करने की बात कही गई थी। ऐसी ऐसी अनेकानेक अफवाहें उठा करती हैं और पर्चे निकला करते हैं। कुछ पर्चे तो ऐसे भी निकलते हैं जिनके निकालनेवाले तो दूसरे होते हैं, पर उसपर नाम वे किसी दूसरे प्रमुख व्यक्ति या संस्था का दे देते हैं।"

उनके अन्त के वाक्य तो अवश्य सही थे। पर पूर्व की वे बातें, जिनमें अपने तथा अपने दल की प्रशंसा थी, असत्य से भरी थी। आज बिहार में भी दलबन्दियों के बीज सर्वत्र इन मध्यम-वर्गीय नेताओं ने बो रक्खे हैं। कांग्रेस के पदग्रहण से जो सबसे बड़ी हानि हम लोगों को हुई, उनमें से एक बिहार भर में सर्वत्र, दो पार्टियों का निर्माण हो जाना है और फिर यदि ये पार्टियाँ सैद्धान्तिक 'वादों' को लेकर बने, तब तो ठीक है। पर यहाँ तो लड़ने वाली दोनों पार्टियाँ गांधीवादी हैं। वे केवल प्रान्त में अपना-अपना प्रभुत्व का यम करने

के अभिप्राय से ही कांग्रेस के भीतर चुनावों में आपस में लड़ रही हैं। इसका जनता पर कितना बुरा प्रभाव पड़ा है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कांग्रेस-पदाधिकारियों के गत चुनाव के समय जो जो धांधली की गई और जो-जो चाणक्य नीति चली गई उन सब की प्रान्त के एक अग्रज नेता ने हमारे जिला के अपने सार्वजनिक भाषण में निन्दा की और हमारी नैतिकता की इस कमजोरी पर बहुत खरी-खोटी सुनाई। अब इन पार्टीबन्दियों के मारे यह दशा हो गई है कि कोई भी सच्चा कांग्रेस-कर्मी अपने को तटस्थ रख कर काम नहीं कर सकता है। यदि वह ऐसा करता है तो दोनों दलवाले इसके प्रतिकूल जनता में नाना तरह की झूठी बातें कह-कह कर निन्दा करना शुरू करते हैं, और उसको या तो किसी पार्टी में शरीक होने पर बाध्य करते हैं या यदि वह वैसा नहीं करता तो जनता के सामने उसे अप्रिय बनाने में कोई कसर भी नहीं उठा रखते। फिर भी इतनी बातें उनमें अब भी है कि जब सरकार से लोहा लेने का समय आता है, तब दोनों मिल जाते हैं और उसी बहादुरी से लोहा लेते हैं। पर तब भी जब समय मिलता है, तब परस्पर की गाली-गलौज हो ही जाती है। यहाँ जेल में आने पर भी ये सब बातें जोर पर ही हैं। एक दूसरे की शिकायत करके अपने दल की शक्ति बढ़ाने की जो प्रथा आज चल पड़ी है, वही कभी कांग्रेस तथा उन पार्टियों के स्वतः पतन होने का कारण भी बनेगी। गांधीवादी दल की आपस की पार्टियाँ तो खुल कर आपस में सीधी शिकायतें प्रायः नहीं, ही करती हैं; पर कांग्रेस सोसलिस्ट दल या कम्यूनिस्ट दल या किसान-दलों के बीच एकमात्र एक-दूसरे की निन्दा करके ही अपना दल बढ़ाने की मनोवृत्ति है। शिकायत में सच्ची बातें

कम और झूठी बातें ही अधिक कही जाती हैं। इससे कांग्रेस-कर्मियों के संगठन की भीतरी शक्ति इस मानी में निर्बल ही रही है कि जनता की श्रद्धा वर्त्तमान मध्यम-वर्गीय नेताओं पर से सदा दूर हटती चली जा रही है। पर इसीके साथ कांग्रेस की जन-प्रियता उतना ही बढ़ती जाती है जिससे आज कांग्रेस सामूहिक रूप में प्रगतिशील विचारों की ओर बहुत ही तीव्र गति से आगे बढ़ रही है। इसका नतीजा निकट भविष्य में यह होगा कि वर्त्तमान अयोग्य परक्रमी के योग्य कार्यकर्त्ता तो हट कर स्वतः पीछे चले जायँगे और उनके स्थान पर नये पर उनसे अधिक कुशल और गतिशील कार्यकर्त्ता आगे आयेंगे। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक कांग्रेस में भीतरी सुधार भी नहीं होगा।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

११—२—४३

आज प्रातःकाल पेपरों में गवर्मेण्ट की ओर से सूचना निकली कि महात्मा गांधी ने १० फरवरी से तीन सप्ताह के लिए उपवास रू करशु दिया है। उन्होंने ३१ दिसम्बर को वाइसराय को एक पत्र लिखा था। वह पत्र और उसका वाइसराय का लिखा हुआ उत्तर भी छपा है। इसके बाद भी दो पत्र और लिखे गए हैं, जो कल छपेंगे। इन पत्रों से अभी उपवास का कोई खास कारण नहीं ज्ञात होता। देश के राजनीतिक वातावरण में महात्माजी का यह उपवास कोई न कोई महान् परिवर्त्तन अवश्य लायेगा। बहुत सोच-समझ कर, अन्तर्ज्योति मिलने पर ही, उन्होंने इतना भीषण व्रत शुरू किया होगा। वे सभी महान् कार्यों को करने का निश्चय अपनी अन्त

ज्योति से संकेत पाकर ही करते हैं। मुझे उनकी ईश्वरीय आस्था पर प्रबल विश्वास है। वे ईश्वर की दया और कृपा पर अटूट भरोसा रखते हैं। मुझे आशा है कि महात्मा का यह भीषण व्रत अवश्य सफल होगा और कोई-न-कोई महान् आश्चर्यजनक घटना घटे बिना न रहेगी, जो देश की भलाई के लिए बहुत महत्त्व रक्खेगी। आज सभा राजनीतिक बन्दियों ने रात और कल दिन के भोजन का रसद लेने से इन्कार किया। वे २४ घंटे का उपवास सामूहिक रूप में महात्माजी के इस महान् व्रत के सफल और पूर्ण होने की सहानुभूति में करेंगे। संध्या-समय अपने वाडे में राजनीतिक बन्दियों ने महात्माजी के व्रत के निर्विघ्न सफल होने के लिए नियमित प्रार्थना करना प्रारम्भ किया और उसमें सोशलिस्ट विचार के समर्थक नेता भी, जिनका ईश्वर में विश्वास नहीं है, केवल सहानुभूति-प्रदर्शन के विचार से ही भाग लेना शुरू किये।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१२—२—४३

अखबारों में आज महात्माजी के तथा उनके उपवास-सम्बन्धी वाइसराय के सभी पत्र प्रकाशित किये गये हैं। उनको पढ़ने से सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। महात्मा जी का सरकार को इन सारे उपद्रवों का एकमात्र दोषी बताना और कांग्रेस या सरकार की निर्दोषता किसी भी निष्पक्ष पंचायत द्वारा साबित किये जाने के लिए पंचायत-निर्माण की माँग पेश करना इतना सबल तर्क है कि कोई भी तटस्थ व्यक्ति इससे सरकार को ही दोषी मानेगा, यदि वह पंचायत की माँग पर तैयार नहीं होती है। उनका यह दावा कि

मैं अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने को तैयार हूँ, और उसीके साथ यह भी आग्रह करना कि वाइसराय स्वयं ही या किसी दूसरे दूत द्वारा ही, मेरा दोष मुझे समझा दें, ऐसा अकाट्य तर्क है कि सरकार की सारी बातें और दलीलें इसके सामने निर्बल और फीकी पड़ जाती हैं। फिर यह दावा कि इन सभी हिंसात्मक कार्यों का उत्तरदायित्व, जिन्हें जनता ने किया है सरकार पर ही है कांग्रेस पर नहीं, क्योंकि सरकार ने ही कांग्रेस-प्रस्ताव पास होने के कतिपय घंटों के भीतर ही सारे भारत के प्रमुख कांग्रेसजनों को बेकसूर गिरफ्तार करके जनता को पागल और गुमराह बना दिया था। फिर गुमराह जनता ने जब कुछ विरोध-प्रदर्शन किया, तब सरकार भी उसी की तरह पागल हो गई और उन्हीं अपराधों को दमन के नाम पर दुहराने लगी जिन्हें जनता ने अपने नेताओं के अभाव में पागल बनकर किया था। गांधीजी की यह दलील ऐसी सबल है कि संसार के किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति या पंचायत के सामने सरकार अपना पक्ष समर्थित नहीं कर सकेगी। परन्तु भोजपुरी में एक लोकोक्ति है:—

'जबरा मारे, रोवे ना दे' या 'जबरा के लाठी सिर पर' इसके अनुसार सरकार अपने हठ पर अड़ी है। फिर महात्माजी ने अन्त में अपने अनशन करने के जो कारण दिये हैं, वे स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। उनके वाक्य संसार की आँखों में उँगली डालकर यह बता रहे हैं कि शरीर और सेना-शक्ति के बल से कोई किसी महान आत्मा की स्वतंत्रता और सत्य-प्रियता को कुचल नहीं सकता है। वे कहते हैं कि जब इस झूठी लांछना का न्याय करने या कराने के लिए सरकार तैयार नहीं है, तो सत्याग्रह-कानून के अनुसार अपने को इस झूठी लांछना से शुद्ध करने के लिए प्रायश्चित्त-स्वरूप यह २१ दिन

का अनशन जरूरी है, जिसमें मरने से बचने के लिए उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर नीबू का रस लेने की रियायत रख छोड़ी है। सन्ध्या-समय सामूहिक प्रार्थना के उपरान्त हम सब लोगों ने साद भोजन किया। मैं महत्माजी की आत्म-कथा आज से नियमित रूप से सन्ध्या समय पढ़ने लगा।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१३-२-४३

आज महात्मा गांधी तथा वाइसराय के सेक्रेटरी के बीच हुए पत्र व्यवहार का भी प्रकाशन अखबारों में हुआ। आज तक मैं सोचता रहा कि इस अनशन के अवसर पर मैं क्या करूँ? मैं भी २१ दिन का सहानुभूति के रूप में, जैसा दो-एक आदमियों के करने का निश्चय सुन रहा हूँ अनशन करूँ या कोई सरा त्यागपूर्ण व्रत लूँ, जिससे हृदयकी सारी सहानुभूति स्वच्छ होकर उनके साथ हो और ईश्वर के यहाँ मेरी प्रार्थना की भी सुनवाई हो सके। कल और आज के मनन और चिन्तन का यह फल निकला कि मैंने अनशन करने का विचार त्याग दिया। बहुत ढूँढ़ने पर हृदय के हृदय में मुझे यह भावना बैठी हुई ज्ञात हुई कि मेरा प्रेम और मेरी सहानुभूति महात्मा के साथ इस मात्रा में नहीं है कि मैं अपने प्राणों की बाजी लगा उनको बचाने का निश्चय करूँ। जितना प्रेम और जितनी सहानुभूति है, वही यदि अपनी सचाई से ईश्वर के सन्मुख प्रार्थनाशील होगी, तो वहाँ उसकी सुनवाई होने की अधिक सम्भावना है। यदि मिथ्या दम्भ के प्रलोभन से लोगों की देखादेखी मैं भी अपनी आन्तरिक भावना के प्रतिकूल अनशन

करता हूँ तो मेरा वैसा करना अनधिकार चेष्टा-मात्र होगा और मैं इस कार्य में ईश्वर के सामने अपनी आत्मा के साथ वंचना करने का दोषी माना जाऊँगा। ईश्वर तो मेरी सभी भीतरी बातों से अपने राजनीतिक साथियों की तरह अनभिज्ञ नहीं है कि उसके साथ भी मैं अपना कपटाचरण निभा पाऊँगा। जब यह तय कर लिया तब मन में यह मोह जाग्रत हुआ कि तब एक समय का भोजन ही अनशन की अवधि तक त्याग दिया जाय। इस प्रस्ताव पर भी सोचने के उपरान्त मैंने यही निश्चय किया कि एक समय का भोजन त्यागने में भी मैं उतना सच्चा नहीं हो सकूँगा। अतः रात का भोजन त्याग कर दूध और फल लेना ही मैंने आत्मशुद्धि के विचार से अधिक सत्यपूर्ण माना और उसको आज से आरम्भ भी कर दिया। अनुग्रह बाबू ने सन्ध्या का भोजन महात्मा के अनशन की अवधि भर न लेने का निश्चय किया। पर उसके साथ उन्होंने यह रियायत रक्खी है कि यदि स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की सम्भावना होने लगेगी और तबीयत बिगड़ने लगेगी तब वे भोजन करना शुरू कर देंगे। बस, इन्हीं दो व्यक्तियों ने आज इस वार्ड में रात को खाना नहीं खाया। अन्य वार्डों में कई व्यक्तियों ने अनशन शुरू कर दिया है। किसीने कुछ रियायत रक्खी है, किसीने कुछ।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१५-२-४३

आज १३ तारीख का बुलेटिन पढ़ने को मिला। महात्माजी को मिचली और अनिद्रा मालूम हो रही है।

सेण्ट्रल जेल, हज़ारीबाग

१६-२-४३

आज के अखबार में महात्माजी की १४ तारीख की अवस्था निकली है! मिचली तथा अनिद्रा विगत दिन से अधिक थी। उनकी हालत उतनी सन्तोषजनक न थी जितनी १३ फरवरी को थी।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१७-२-४३

आज महात्माजी के विगत रविवार के स्वास्थ्य का हाल निकला है। उनकी दशा पहले से अधिक गिर गई है। कठिनाई से वे पानी पी सके हैं। नींद भी ठीक से नहीं आई। डा० विधानचन्द्र राय गए थे। उन्होंने उनको देखा है। पर वे अपनी राय दूसरी बार देखकर देंगे। सेण्ट्रल असेम्बली में होम मेम्बर ने जो स्पीच दी है, वह आद्योपान्त नीचता से भरी हुई है। उसके प्रति जेल-भर में रोष है पर सब खामोश इसलिए हैं कि अनशन के समय रोष करना व्रत के उद्देश्य के प्रतिकूल जाना है। आज सभी वार्डों में मुर्दनी-सी छाई हुई है। प्रार्थना के समय मेरा हृदय करुणा से भर गया था। आँखें छलछला उठी थीं। कमरे में आकर मैंने सोचा, महात्मा की खातिर अपनी किसी प्रिय वस्तु का त्याग करना चाहिए। उनकी आत्म-कथा में अस्वाद-व्रत की महिमा पढ़ी थी। सोचा अस्वाद-व्रत महात्माजी के प्रिय व्रतों में हैं। मेरी जीभ भी तेज है। एक नम्बर का चटोरपन उसमें भरा है। यदि मैं भी जीभ की सर्वप्रिय वस्तु को न खाने का निश्चय करूँ तो ठीक है। अतः मैंने आज से निश्चय किया कि मांस-मछली खाना छोड़ दूँगा। पर, इसके साथ ही इतनी

रियायत रक्खी कि यदि कभी बीमारी के कारण डाक्टर खाने पर जोर देंगे तो बीमारी दूर होने और स्वास्थ्य पूर्ण सुधरने तक मैं मांस या मछली खाऊँगा। उसके उपरान्त पुन: त्याग दूँगा।

मैंने लड़कपन में तो दो-एक बार मांस खाना छोड़ा था पर फिर खाने लगा था। परन्तु, जवानी में एक मित्र से बातों ही बात वचन हार जाने के कारण, वचन की रक्षा में जीभ के चलायमान होते रहने पर भी, मैं १३ वर्षों तक इसे छोड़े रहा। पाँव टूटने पर जब दुर्बलता बहुत बढ़ गई थी और कुटुम्बवालों ने तथा श्रीमतीजीने मांस खाने पर बहुत जोर दिया था, तथा उन मित्र महाशय ने भी, जिन्होंने मांस छुड़वाया था, स्वास्थ्य के कारण मांस खाने पर जोरदार अपील की, तब भी मैंने नहीं खाया था और ईश्वर के छोह से स्वस्थ भी हो गया था।

पर सन् १६४० या ४१ में जब ४१ दिन के बाद मेरा टाइफाइड का बुखार छूटा, तब किसी प्रकार बल-संचय नहीं रहा था, जिसके कारण लाचार होकर मांस खाना शुरू किया जो अब तक जारी था, ईश्वर इस निश्चय को निभाने का बल प्रदान करें।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१८-२-४३

आज के बुलेटिन में महात्मा गांधी के स्वास्थ्य की दशा और भी खराब बताई गई है।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

१६-२-४३

महात्माजी के स्वास्थ्य पर १६ ता० की सरकारी बुलेटिन आज अखबार में देखी। दशा खराब की ओर ही जा रही है।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग
२०-२-४३

आज ता० १७ की हालत निकली है। गांधीजी बात बहुत कम करते हैं। मस्तिष्क भी निर्बल हो गया है। यूरेमिया (मूत्र के साथ आँतों का गलित अंश) पेशाब में निकला है। डाक्टरों के हस्ताक्षर से बुलेटिन यों निकला है—"Anxiety as to his condition deepens"।

मन बड़ा चिन्तित है। भगवान अब सहायता करेंगे। अब सर्वत्र अंधकार हो गया है। ऐसे ही अवसर पर ईश्वर याद आता है और उसकी सहायता मिलती है। शाम को प्रार्थना के समय मैं बहुत करुण था। रह-रहकर आँखें तर हो जाती थीं। प्राय: यही दशा सभी बन्दियों की थी। साधारण अपराध के कैदी भी आपस में चिन्ता की बातें करके आँखें तर कर लेते थे। साम्यवादी-दल के नेता मित्र रामवृक्ष बेनीपुरजी जब गेट पर मुझसे मिले, तो उनकी भी आँखें भींगी थीं। हम दोनों मौन होकर एक दूसरे को देखते रह गए। प्रार्थना के समय मैंने बार-बार अपने जीवन का मूल्य आँका और फिर हृदय के हृदय से ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि आवश्यक हो तो मेरे जीवन को लेकर भी महात्मा के जीवन की रक्षा करें। कहते समय तो यही सोच रहा था कि सच्चे हृदय से यह मन की अविकल प्रार्थना है। पर, अब कमरे में आया तो नाना तरह से संकल्प-विकल्प इस बात को लेकर होने लगे कि मेरी यह माँग सच्चे हृदय से, निर्विकार रूप से थी कि आवेश की प्रेरणा से ही बहुत देर तक सोचने पर भी कुछ निश्चय नहीं कर सका। अन्त में यही प्रार्थना करके सन्तोष धारण किया कि यदि यह विनती अपने

अहंभाव के कारण या मिथ्याचरण की प्रेरणा से हुई हो तो ईश्वर मुझे इस दुर्बलता के लिए क्षमा करेंगे और ऐसा न हो तो उसकी [सुनवाई करेंगे। गांधीजी ने आत्मकथा में लिखा—'The hearts earnest and pure desire is always fulfilled. In my own experience. I have often seen this rule being verified.. Service of the poor has been my hearts desire and it has always thrown me amongst the poor and enabled me to identify myself with them.

अर्थात् हृदय की सच्ची और पवित्र-आकांक्षा सदा पूरी होती है। अपने निजी अनुभव में मैंने इस नियम की अक्सर जांच की है। गरीबों की सेवा मेरे हृदय की आकांक्षा रही है और इस कारण मैं सदा गरीबों के मध्य फेंक दिया गया हूँ और इसने मुझे अपने को उनके साथ समान रुप से बर्तने और सेवा करने की योग्यता प्रदान की है। ईश्वर मेरे हृदय की कामना यानी महात्मा जी को जीवनदान की आकांक्षा अवश्य पूर्ण करेगा, ऐसा विश्वास इन लाइनों को पढ़-कर हृदय में स्वत: ही जाग्रत हो उठा।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

२२—२—४३

आज महात्मा गांधी की तबीयत बहुत खराब होने की खबर मिली। अखबार ने बीस तारीख की हालत बहुत नजुक कही है। पर रेडियो पर भी आज की खबर बहुत नाजुक होने की आई है। ऐसा किसी तरह जेल में समाचार फैल गया है। दिल्ली में जो लीडरों की सभा होनेवाली थी, उससे बड़ी आशा थी। पर वाइसराय ने उत्तर में 'नहीं' कर दिया। सन्ध्या-समय

किसीने फिर खबर दी कि हालत बिगड़ रही है। इस खबर से सारे जेल में मुर्दनी छा गई। देखें भगवान् क्या करते हैं। उन्हींके हाथ अब देश की लाज है। सर्वत्र अँधेरा छाया हुआ है। कहीं से भी आशा की ज्योति दीखती नजर नहीं आती। अमेरिकन दूत से मिलने के बाद राजाजी ने प्रेसवालों से कहा—अँग्रेज भारत को स्वतंत्र नहीं होने देंगे और अमेरिका इसके लिए उन्हें दबा नहीं सकता।

अभी शाम को प्रार्थना के बाद जब हमलोग गमी की-सी सूरत बनाए इधर-उधर टहल रहे थे, तो हमारे एक सोशलिस्ट नेता और फिलासफर बाबू फूलनप्रसाद वर्मा एम. ए. ने मुझसे कहा—'आप लोगों को ईश्वर में विश्वास करने का नफा ऐसे अवसरों पर खूब मिलता है कि अपनी फरियाद उससे करके, उसपर सब छोड़कर, शान्ति धारण करते हैं। पर हम ईश्वरवाद को न माननेवालों को तो ऐसे संकट के समय कहीं आधार ही नहीं मिलता, जहाँ हम रंचमात्र भी शान्ति प्राप्त कर सकें। ईश्वरवाद का सबसे बड़ा लाभ यही कहा जायगा। सूर्य डूबने के बाद खबर मिली कि हालत सुधर रही है।

सेंण्ट्रल जेल, हजारीबाग

२३—२—४३

आज अखबार में तो महात्माजी की दशा खराब होने की बात निकली है। पर सुपरिण्टेण्डेट ने अनर्थ हो जाने के समय शान्ति बनाए रखने के लिए चेतावनी भी दी। सारे जेल में मालूम होता है कि कोई है ही नहीं। सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ है। सन्ध्या-समय खबर आई कि कल के समान इस समय भी दशा सुधरने लगी है।

इस खबर से आशा की एक क्षीण ज्योति दिखाई पड़ी। भगवान इस कलियुग में भी चमत्कार दिखा रहे हैं। मेरा विश्वास टूट-टूट कर भी दृढ़ हो जाता है। मानो भीतर कोई कह रहा है कि महात्माजी बच जाँयगे, बच जायँगे।

सेण्ट्रल जेल हजारीबाग
२४—२—४३

आज महात्माजी इस संकट-काल में पहले पहल बोले। प्रसन्न भी हैं। ईश्वर जो न करे। आजतक महात्माजी की ओर ध्यान लगा था। आज उधर से अवकाश पाने पर घर स्मरण हुआ और याद आई अपने निकट भविष्य में छूटने की बात। इससे मन खिन्न है और चिन्ता कष्ट दे रही है।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग
२७—२—४३

आज महात्माजी की हालत अच्छी है। डाक्टरों ने उमीद की है कि वे अच्छे हो जायँगे।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग
२८—२—४३

आज रात जब मैं सेल में बन्द था, बारह बजे के करीब मेरी तबीयत खराब हो गई। एक कै और दो दस्त आए। दस फुट के छोटे से सेल में एक ओर कमोड, एक ओर कै से भरी छोटी सी थाली और उसपर रोशनी का अभाव और पेट का दर्द नरक की यातना थी सारीरात जगे-जगे जब रात बीतने को आई तब कहीं चार बजे के करीब नींद लगी।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

३—३—४३

आज आठ बजे प्रातःकाल प्रार्थना हुई। इसी समय महात्माजी अपना अनशन २१ दिन पूरा हो जाने पर तोड़ेंगे। शाम को वार्ड में चाय-पार्टी हुई। इस तरह महात्माजी का इस ७५ वर्ष की आयु का अनशन समाप्त हुआ। ईश्वर ने सचमुच आज के इस भौतिक-वाद के युग में अपना चमत्कार दिखला दिया। जेल में ऐसी प्रसन्नता छाई है मानों हर व्यक्ति का अपना पिता मरते-मरते बच गया हो। इसीके साथ असिस्टेण्ट जेलर ने आकर अनुग्रह बाबू से दोनों लाइन में जगह अधिक है कम करो। मेरे कल छूटने की बात कही। इससे मेरी प्रसन्नता दूनी बढ़ गई। पर साथ ही अपने साथियों से, खासकर चाय-पार्टी के मित्रों और अनुग्रहबाबू से विछोह का प्रश्न हृदय को भारी कर रहा है। मनुष्य कहीं भी हो, अपने साथियों और उस जगह से उसका प्रेम हो ही जाता है, और उनका वियोग खलने लगता है। और उनके दुःख से, जिनकी मियादें असीम हैं, मन में एक चिन्ता भी उत्पन्न होने लगी।

सेण्ट्रल जेल, हजारीबाग

४-से १० मार्च १९४३

आज प्रातः काल कल की सूचना के आधार पर मैंने सामान वगैरह बाँध कर अपने छूटने की तैयारी कर ली थी। पर दस बजे जेल-गेट से खबर मिली कि सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मौका नहीं दिया। पूर्व सूचना गलत दी गयी थी। बड़ी हँसी हुई। फिर अपने सामान यानी बाल्टी, कुरसी, मेंज आदि मित्रों के यहाँ से वापस

माँग लाया। रात में अपने इस बार के जेल-जीवन का सिंहावलोकन तथा अनुभव लिखना शुरू किया :—

'इस बार का जेल जीवन मुझे दो जेलों में बिताना पड़ा। पहले अपने जिला जेल में २५ अगस्त १९४२ से लेकर सितम्बर के अन्त तक रहना पड़ा। इस अवधि में जिले भर में किये गये दमन के परिणाम स्वरूप जो कैदी पकड़-पकड़ कर इस जेल में लाये जाते थे, उनसे सुनी हुई घटनाओं का इतिहास बड़ा रोमांचक और दर्दनाक तथा अत्याचारों से परिपूर्ण था। इसका पूर्ण विवरण तो १९४२ की डायरी में प्रकाशित होगा। यहाँ प्रसङ्गवश आज इतना ही लिखना है कि प्रायः नित्य चार बजे सुबह लारियों पर लदे हुए घायल कैदी गेट पर उतारे जाते थे। उनको कराह और चिल्लाहट को सुनकर हम लोगों का हृदय फट जाता था। वे बड़ी बेरहमी के साथ ला-लाकर अस्पताल में जमीन पर लिटा दिये जाते थे। प्रायः हर लारी में दो-चार कैदी पीट कर इतने घायल किये गये रहते थे कि उनके आराम होने में महीनों लग जाने की सम्भावना होती थी। आम तरह से सिपाही बूटों की ठोकरों से, बन्दूक के कुन्दो और बेंतों से कैदियों को पीटते थे। लेकिन संगीनों का प्रयोग भी कम नहीं होता था। फिर लारियों पर से नीचे पटक देने से या मार से कई कैदियों की हड्डियाँ भी टूटी हुई थीं। जब ऐसे आहत कैदी आते थे तो सभी कैदी जग जाते और हर वार्ड से नारे लगने लगते थे। सुबह फाटक खुलते ही हममें से बहुत से स्वयंसेवक अस्पताल पहुँचते और घायलों की सेवा में लग जाते। अस्पताल ऐसे घायलों से भर उठा था। खाटें नहीं थीं। कम्बलों का भी अभाव ही था। फिर बन्दियों के अपने बिछावन आदि बाहर से जाने

नहीं पाते थे। बड़ी ही दिक्कत के साथ घरवाले नाजायज रकम खर्च करके किसी-किसी कैदी के सामान भीतर भेज पाते थे। मेरा ही बिस्तर एक सप्ताह के बाद भीतर आ पाया। घायलों को जमीन पर ही सोना पड़ता था। फिर बर्तन भी जेल में नहीं ही थे। प्राय: सभी बन्दियों को कुछ दिन तक केले के पत्तों पर खाना मिला। फिर पत्तल मिलने लगा। फिर उसके अभाव में उन्हीं पुराने बर्तनों में बारी-बारी से बीती रात और गिरे दिन तक हमलोगों को खाना पड़ता था। पानी पीने के बर्तन का अभाव तो और भी खलता था। कैदियों को खाने के बाद बम्बा पर जाकर चुल्लू से पानी पीना पड़ता था। यह तो जेल के प्रबन्ध का विवरण है। फिर बाहर भी वैसी ही धाँधली मची हुई थी। मुझको एक हफ्ते तक सी क्लास में ही रक्खा गया। मेरा सामान वगैरह या खाना-पीना बाहर गेट पर से लोग मेरे पास नहीं भेजते थे। उस गर्मी में एक कम्बल पर दिन रात सोना पड़ता था।

जिले भर भी असिस्टेण्ट पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट मि० इन्सवर्थ का आतङ्क छाया हुआ था। वह एक अँग्रेज युवक था। उसीके अधीन टामियों की एक सेना दे दी गयी थी। वह अपने मन से जिले भर में जो चाहता था, वह करता था। हिन्दुस्तानी कलक्टर या S. P. से वह न तो पूछता था और न उनकी इतनी हिम्मत थी कि उस के काम में दखल दें। वे खुद डरते थे कि कहीं वे ही न उसके अत्याचारों के शिकार बना दिये जाँय। जब मुझे गिरफ्तार करके पीरो थाने में २५ अगस्त को रक्खा गया, तब वहाँ S. P. बा० श्री कृष्णलाल से जो बातें हुईं, उनको सुनकर इस अँग्रेज जाति के कारनाम सहज ही समझ में आ जाते हैं।

उन्होंने अपने बगल की चौकी पर मेरे लिए कम्बल बिछवा कर अपना कपड़ा-लत्ता उतारा और मुझसे वार्ता शुरू करते हुए कहा—'बाबू साहब! आपने तो अपने को इस निर्भीकता से Surrender किया कि देखकर हमलोगों के दिल में भी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी।'

मैंने कहा—"यदि ऐसी बात थी, जिसका मुझे विश्वास नहीं, तो आप लोगों ने उस निरपराध स्कूल को क्यों जलाया? उस निर्जीव इमारत से कौन-सा अपराध हुआ?'

उन्होंने लजा कर कहा—"बाबू साहब! आप मुझको पहचानते नहीं। मेरी आपसे दो बार की मुलाकात है। मेरा इसमें वश ही क्या था। कलक्टर और S. P. भी इस समय इस अंग्रेज के छोकड़े की बातों में मीन-मेष नहीं कर सकते। हम तो इसके मातहत, हैं खुद डरा करते हैं कि कहीं बिगड़ कर हमें ही गोली का शिकार न बनादे। इसको ऊपर से न मालूम कैसा Confidential आदेश मिला है कि उसके बल पर जिले भर में यह मनमानी धाँधली मचाये हुए है। इसको न कलक्टर की परवाह है और न अपने अफसर S. P. का ही डर है। दलीपपुर में तो समझिये कि खैर हो गया कि आप गिरफ्तार होने को तैयार बैठे थे। इससे इसका क्रोध उमड़ा नहीं और अकारण उत्पात करने का उसे मौका भी नहीं मिला। हमारा तो अनुमान था कि आज आपका गढ़ जरूर जलाया जायगा और बालबच्चों पर भी संकट आये बिना नहीं रहेगा। यही रंग-ढंग देखकर तो जगदीशपुर का S. I. (सिद्धनाथ सिंह) साथ नहीं आया, बीमारी का बहाना करके तरह दे गया। आप नहीं जानते आपके पास पहुँचने के पूर्व ही आपके घर को सिपाहियों ने घेर लिया था।

'जगदीशपुर से कौन-कौन पकड़ा गया और वहाँ क्या हुआ ?' मैंने पूछा,

उन्होने कहा – वहाँ सख्तियाँ तो आश्चार्य्यजनक हुई। मार-पीट भी खूब ही हुई। वहाँ तो जालियानवाला हत्याकाण्ड होते-होते बच गया,।

मैंने पूछा—'सो कैसे ?'

उन्होने कहा—जब शहर के बाहर चार बजे सवेरे लारियाँ पहुँच कर रुकीं तो सिपाहियों को फालिन करा कर उसने आज्ञा दी कि किसी भी आदमी को शहर से बाहर न निकलने देना और न किसी को बाहर से शहर में घुसने ही देना। अगर कोई भागता हुआ नजर आये तो फौरन गोली मार देना।' जब ऐसी आज्ञा देकर इन्सवर्थ दूसरी ओर हटा तो मैंने उसके पास जाकर डरते डरते कहा— 'सवेरे का वक्त है। दिहातों में इस समय लोग गाँव के बाहर दिशा-जंगल के लिए निकलते हैं। फिर Indian mentality ऐसी है कि अंग्रेजों को देखकर अशिक्षित ग्रामीन भागने लगते हैं। तो यदि यह आज्ञा in force रहेगी तो बहुत बेकसूर आदमी मरेंगे। मेरे इस कथन पर उसने एक मिनट के लिए विचार किया और धीमेस्वर में—'I am helpless' (मैं आज्ञा पलटने में विवश हूँ) कह कर हट गया। मैं चुप हो गया। फिर जब एक मातहत अंग्रेज अफसर ने सिपाहियों को ड्यूटी बाँटना शुरू किया तो मैंने उससे भी यही बात दुहरायी और उसने उत्तर में कहा—'Dont worry. I'll see it "परेशान न हो। मैं ठीक कर दूँगा" फिर उसने सिपाहियों को ताकीद कर दिया कि Public पर गोली न

चलाना। समझा कर वापिस कर देना और जब इसपर भी न माने तो गिरफ्तार कर लेना।

इन बातों से इन्सवर्थ की ज्यादतियाँ जाहिर हो जाती हैं। फिर उसकी सख्तियों का दूसरा प्रमाण मुझे तब मिला जब पीरो से आरा जाते समय बलूची सिपाहियों ने मुझे मारना शुरू किया। जब दो-चार बेंत पड़े तो मैंने रोष-भरे शब्द में पास बैठे हवलदार से कहा—सरदार, यह क्यों हो रहा है? और उसने मेरी बातें सुनते ही सिपाहियों को रोककर मुझसे समझाया कि A. S. P. का हुक्म हुआ है कि इतनी मार पड़े कि जी न सके। पर आपकी रईसी और शराफत देखकर हमारा दिल आप-पर हाथ चलाने का नहीं होता।"

मैं इस बात को इनकी बदमाशी समझ कर चुप रह गया। पर बाद को ज्ञात हुआ कि वे सही कह रहा था क्योंकि जब कभी लारी रुक जाती थी और अँग्रेज सिपाहियों से लदी लारियाँ पीछे जाकर खड़ी होती थीं, तब ये सिपाही मुझे यह कहकर लारी पर लिटा देते थे कि बैठा देखेगा तो समझेगा कि पीटा नहीं। फिर जब मैं आरा में उतरने लगा, तब भी इन लोगों ने प्रार्थना करके कहा कि मैं अपने को ऐसा दिखाऊँगा कि A.S.P. समझ सके कि खूब मार पड़ी है, अन्यथा उनकी रोजी पर खलल आयेगा।

फिर इसके अतिरिक्त जितने पुलिस या सिपाहियों या वार्डरों से मेरा सम्पर्क रहा, उस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि उनके हृदय के भीतर देशप्रेम की इतनी भावना जरूर दृढ़ थी कि कांग्रेस की जीत यदि उनको निश्चित विश्वास हो जाता तो वे बगावत करने पर तैयार हो जायँगे। केवल अपनी रोजी के ख्याल से इस भावना को भीतर दबाये हुए है। ये बलूची सिपाही, जो पशुता की प्रतिमूर्ति

थे, मुझसे लारी पर कह रहे थे—देखो बाबू हम नमक खाया है तो कैसे गवरमेंट की इस वक्त दग़ा दे। अगर कांग्रेस खाना देता—रोजी चलाता तो क्यों मुल्क के खिलाफ इन अंग्रेजों को हम साथ देता। आज वह रोजी का भार ले ले तो हम उसीका नौकर है।

इस सिंहावलोकन के बाद जब आप जेल-जीवन की तुलना मैं हजारीबाग के जेल-जीवन से करता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि वहाँ हमको अधिक सुख और शान्ति थी। वहाँ भी दलबन्दियाँ तो जरूर थीं पर वे दलबंदियाँ अंग्रेज कार्य-कर्त्ताओं तक ही सीमित थीं। वहाँ हम सभी दल वाले आपस में दिल खोल कर भाई की तरह मिलते थे—मीटिङ्ग, प्रार्थना, परेड, कुश्ती, दंगल, कथा, पुराण, कविता-पाठ, या बहस-मुबाहसा करते थे। इसमें दिलों की सफाई और प्रेम अधिक रहता था। फिर पढ़े-लिखे अग्रज कार्यकर्त्ताओं की संख्या भी वहाँ कम ही थी। पर उस कम संख्या का लाभ यह था कि हमारी आज्ञाओं का पालन सच्चे दिल से किया जाता था और हमपर सभी कैदियों की श्रद्धा थी, जो अनुशासन के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

यदि तुलनात्मक दृष्टि से कहना पड़े तो मैं उस जिला जेल को, जहाँ 'सी' क्लास के राजबन्दियों को ही संख्या अधिक है, अधिक सुखद, संगठित और कार्य-कुशल मानता हूँ। वहां कांग्रेस का कार्य-क्रम सब अच्छी तरह चलता था। कोई दलबन्दी नहीं आपसी प्रेम सहानुभूति सब में वर्तमान थी। पर यहाँ हजारीबाग के जेल में इन बातों का अभाव देखता हूँ। हाँ, वहाँ मानसिक विकास के लिए ऊँची संगति नहीं थी, पर जो थी वह निष्कपट, अलहड़, उच्छृंखल और वीर सैनिकों की, जिनसे वीरों

के ऐसा निष्कपट बर्ताव करने में आनन्द आता था। पर हजारीबाग जेल में "मुण्डे मुण्डे मतिभिन्ना" की बात है। हर व्यक्ति दूसरे से अलग अपनी राय रखता है। अपने को बड़ा नेता मानने का दावा प्रकट या अप्रकट रूप में, करता है। नेता से नीचे, कार्यकर्त्ता की श्रेणी में कोई अपने को नही समझता। लेकिन नेता से कार्यकर्त्ता का स्थान मेरी समझ में ऊँचा है। यहाँ अधिकांश व्यक्ति ऐसे ही हैं जिनका जेल-जीवन का कार्यक्रम अधिकतर यही रहता है कि जिससे वे मिलेंगे, वे उसीसे आन्दोलन के दिनों में अपनी झूठी या सच्ची तिलस्मी वीरता का वर्णन ऐसी आकर्षक शैली में करेंगे जिससे श्रोता को आत्म-स्तुति का भास भी न हो और उनकी कार्य-कुशलता और सार्वजनिक प्रभाव की धाक भी उस पर जम जाय। पर वह श्रोता भी तो उनसे कहीं आगे बढ़ा हुआ होशियार सियार रहता है। वह भी उनके वाक्य के समाप्त होते ही अपनी झूठी-सच्ची करतूतों की ऐसी ही कहानी गढ़ सुनाता था। नतीजा यह होता है कि दोनों की ताकतें आपस में टकरा कर समाप्त हो जाती है। न कोई दूसरे को प्रभावित करके उसपर अपनी धाक जमा पाता है और न कोई दूसरा ही उसपर अपना जादू डाल पाता है। मुझसे भी एक दिन एक ऐसे नेता ने डींग हाँकनी शुरू की जिनके आन्दोलन-सम्बन्धी कामों से हम खूब परिचित थे और जिनके बारे में हम क्रियाशीलों ने 'भगोड़ा' की उपाधि दे रक्खी थी। शुरू तो उन्होंने इस तरह किया। मुझे तो आपके थानों में एक क्रियाशील ने पकड़वाया। बात क्या हुई कि हमलोगों ने एक ऐसी योजना बनाई। जैसे ही मैंने योजना, का शब्द सुना वैसे ही बीच में ही बात काट कर बोल उठा "भाई, योजनाओं को तो बाद के लिए छोड़िए। योजनाएं हमलोगों

ने भी खूब जान रक्खी हैं। यह बताइए, आप इतने दिनों तक थे कहाँ? न उन दिनों आपसे भेंट हुई, न जिला-जेल ही में आप पधार सके।'

यह सुनकर वे लज्जित हो गये। चले थे रंग जमाने पर अपना ही रंग फीका पड़ गया। चुप लगाकर अन्य बातें करने लगे। यहाँ के और 'बी' क्लास के कैदियों के प्रति जहाँ तक उनका आत्म-प्रशंसा से सम्बन्ध है, इतने दिनों में मेरी यही तुच्छ धारणा कायम हुई। परन्तु ये एक विशेष समुदाय के बन्दी हैं जिनकी सख्या अधिक है और जो निम्न कोटि के कार्यकर्त्ता कहे और समझे जाते हैं। मेरा खयाल है कि कुछ मध्यम श्रेणी के कार्यकर्त्ताओं में भी यह दोष कार्य में नहीं तो मन में तो अवश्य उठता होगा। पर वे अपनी संयम-शीलता के कारण इसे व्यक्त नहीं होने देते। मध्यमश्रेणी वालों की बातें गम्भीर, व्यवहार संयमशील तथा रईसाना और कार्य सोचे-समझे होते हैं, पर तब भी उनके भी कुछ ऐसे कार्य समय-समय पर हो जाया करते हैं, जिनसे मैं उनके हृदय में बैठे हुए इस अहंभाव को तथा उनकी भीतरी ऐहिक सुख-प्राप्ति की लालसा या यश-लोलुपता के कीटों को परखने से बाज नहीं आता था। उदाहरण के लिए जैसे सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने आज हम से दस मिनट बातें कर लीं, जेलर ने आकर मेरा दरबार किया। वार्डर ने सलाम किया, मेरी पोशाक औरों से अच्छी है, लोग मुझे धनी समझते हैं, औरों से मेरा मानस-क्षितिज ऊँचा है, मुझे अलग नौकर मिल जाय, मैं रात को बन्द न होऊं, मेरे भोजन में अधिक रियायत मिल जाय, स्वास्थ्य की आवश्यकता के आधार पर मुझे अस्पताल से दूध मिलने लगे, आदि छोटी बातें ही, जिन्हें कोई दूसरे पर जाहिर तो होने नहीं देता,

स्वयं भी स्वीकार करते लज्जा मालूम होती है, समय-समय पर मुझे अच्छों में भी देखने को मिल जाती थीं। वे इन चतुर आलोचक आँखों से बच नहीं सकते थे। इन्हीं बातों को लेकर कई बार कई बाडो में कई लोगों के बीच बात भी चल गई। इस सम्बन्ध में मध्यम श्रेणी वालों के प्रति भी मेरा यही अनुभव है। मैं यहाँ किसी का नाम नहीं लेता। लेकिन विश्वास है कि इसको पढ़कर अपने मन के चोर को सभी पकड़ लेंगे। और यदि वे उदार होंगे तो मेरी परख को गलत न मान करके अपना सुधार किये बिना न रहेंगे।

ऐसे लोगों की संख्या निम्न श्रेणीवालों से बहुत कम है। ये उन लोगों की तरह आपस में एक दूसरे की निन्दा खुले आम नहीं करते न ऐसी छोटी-छोटी घटनाओं का जिक्र ही चलाते हैं। अध्ययन तथा ऊँचे सिद्धान्त की बातें करने आदि में साधारणतः उनका समय बीतता है। कभी-कभी परनिन्दा होती भी है तो बहुत ही खास बात में, जहाँ से बात बाहर जाने की गुंजाइश नहीं रहती। परन्तु इनमें भी दो-एक ऐसे जरूर हैं। जिनकी बातों के विषय सिर्फ पर निन्दा और इधर-उधर के लगाव-बझाव की बातों के अतिरिक्त दूसरे नहीं रहते। यदि वे अध्ययन या ऊँचे विषय की बातें करते भी हैं तो केवल दूसरों की नकल करने भर को; पर ऐसे व्यक्ति दो-एक ही हैं। इसके अलावा कुछ लोगों में मैंने हीनता और श्रेष्ठता की भी भीतरी भावनाएँ देखीं जिसके कारण उनका जेल-जीवन बहुत दुखद हो रहा था। एक-दो व्यक्ति ऐसे भी थे, जिनका बाहर तो कांग्रेस में बहुत उच्च स्थान था पर यहाँ जेल में आकर यहाँ के जीवन की रक्षा न कर सकने के कारण वे दुखी ही न

हुए थे, बल्कि पागल के समान विभ्रान्तबुद्धि भी समय-समय पर हो उठे थे। उनकी हालत पर लोग तरस खाते थे और उन्हें माफी माँग कर छूटने की राय देते थे। पर इसको उनका आत्म-सम्मान कबूल नहीं करने देता था। मैंने यहाँ प्रायः ८० प्रतिशत कैदियों में यह बात देखी कि वे जब बातें करेंगे तो सदा उग्र कार्यक्रम की बातें करने का प्रयत्न करेंगे और शान्त या ठोस काम करनेवालों को डरपोक की उपाधि देते रहेंगे। पर जब कोई सामना करने का ठोस अवसर आ जायगा तब सब के सब तरह दे जायँगे। ऐसे लोगों का सिद्धान्त है कि जेल में ऊधम मचाना चाहिए पर वहीं तक ऊधम को चलाना चाहिए जहाँ तक मार-पीट की नौबत न आने पाये मार पीट का अवसर आने के पूर्व ही जेलवालों से खुद हो या जैसे हो; सुलह कर लेना ही समझदारी है। परन्तु इस मान्यता का जो विरोधी है, वह कहता है कि एक प्रतिपक्षी के सामने उससे दूना कर दिखाओ। दबा नहीं, और यदि ऐसा करने की हिम्मत न हो तो वैसा अवसर ही न आने दो जिससे तुम्हारी परीक्षा हो और तुम अपनी और उनकी नजरों में तुच्छ समझे जाओ। इससे शत्रु के सामने लज्जित होने के साथ-साथ अपनी आत्मा के सामने भी आत्मवंचना का दोषी बनोगे। पर इन बारीक बातों को वे मानने के लिए तैयार नहीं। ये बातें मुझे राजनीतिक कैदियों के अन्तस्तल की भावनाओं को परखते समय अनुभूत हुई है। अतः मैंने जैसा देखा और समझा है, वैसा ही अपने विचार को ईमानदारी के साथ तटस्थ होकर केवल सुधार की दृष्टि से ही अंकित किया है। सम्भव है कहीं गलती हो गई हो या पाठकों को यह कटु लगे। अतः दोनों दशाओं में मैं पहले ही से क्षमा के लिए मैं प्रार्थना करता हूँ।

अब जेल की सैद्धान्तिक दलबन्दियों के ऊपर भी अपना कुछ अनुभव लिखना उचित है। यहाँ तीन दल मुख्य हैं। गांधीवादी सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट किसान-सभा का एक चौथा दल कह सकते हैं। गांधीवादी की छत्रछाया में रहनेवालों की संख्या सबसे अधिक है। जो इस वाद की छत्रछाया में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उन सब की भीतरी मान्यताओं का यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो उनको इस बात से परे की मान्यताएँ ही कहनी पड़ेंगी। इस दल के सर्वश्रेष्ठ नेता यहाँ बाबू अनुग्रहनारायण सिंह और बाबू श्रीकृष्ण सिंह हैं। बाबू श्रीकृष्ण सिंह कांग्रेसीराज्य के समय प्रधान-मंत्री थे और अनुग्रह बाबू उनके नीचे अर्थ-सचिव थे। इसलिए बाबू श्रीकृष्ण सिंह का नाम मुझे पहले और अनुग्रह बाबू का नाम बाद को देना चाहता था। पर यहाँ गांधीवाद के सिलसिले में नाम देना पड़ा है। इससे इस वाद के अग्रेज नेता राजेन्द्र बाबू के बाद इस समय अनुग्रह बाबू ही बिहार में माने जाते हैं। इसकी विवेचना मैं बाद में व्यक्तिगत अनुभव लिखते समय करूँगा।

कांग्रेस-सोशलिस्ट-दल की संख्या कांग्रेसवादियों से कम है। पर अन्य दोनों दलों से बढ़ी-चढ़ी है। इस के नेता बाबू जयप्रकाश नारायण हैं। जयप्रकाश नारायणजी के व्यक्तित्व पर मैं अन्त में विचार करूँगा। इस दल में युवकों की संख्या ही अधिक है। विचार भी उग्र और ध्येय भी सभी बातों में उग्र। ईश्वरविरोधी विश्वास होने के कारण नास्तिक की स्थिरता अति डाँवाडोल रहती है। फिर भी यहाँ जेल में अपने दल के प्रचार में यह दल सब से आगे बढ़ा हुआ है। इनका विचार सबसे अधिक इस बात में केन्द्रित रहता

है कि किस प्रकार अपनी संख्या बढ़ाई जाय। इस दल के लोगों में पाश्चात्य नास्तिक शैली से सत्यासत्य का विचार त्याज्य और मान्य माना जाता है। इसमें निन्दा और स्तुति के सहारे दल सिद्धान्त को प्रचार करना है इनकी सर्वप्रथम मान्यता है। कोई भी एक युवक कैदी आया नहीं कि प्रयागराज के पण्डे जिस तरह नए यात्रियों के पीछे दौड़ते हैं, वैसे ही इस दल और कम्यूनिस्ट दल के प्रचारक उसके पीछे पड़ जाते हैं। वह बेचारा इनकी बातों को सहसा समझता नहीं। यदि अपना ज्ञान इतना उन्नत रहा कि अपनी निजी बुद्धि का प्रयोग करके अपना निर्णय ठीक से वह कर सके, तब तो ठीक है। उसे अधिक परेशान होने या आगा-पीछा सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। यदि इस बात की उसमें कमी रही तो जिसका जैसा बन आया, उसके अनुसार ही वह उस नवागन्तुक के साथ सफल-विफल रहता है। जिसने उस व्यक्ति को अपने लाभ की बातें अधिक सुझाई या नेता बनने में उसको सहायता करने का आश्वासन दिया उसीके साथ वह बह जाता है। फिर खूबी यह कि ऐसे कच्चे विचारवाले व्यक्ति के पास प्रचार महीनों तक जारी रहता है और उनको अपने पक्ष में लाने के लिए कोई भी तरीका बाकी नहीं रक्खा जाता। और वह व्यक्ति भी कभी इधर, कभी उधर हुआ करता है। गांधीवादी इस प्रचार से अछूते हैं। उनकी भीतरी भावना अपने दल से निकल कर दूसरे दलों में लोगों को जाते देख कर जरूर कुछ आहत होती है, पर वे अपने सिद्धान्तों की आड़ में खुल कर इस पूर्वकथित प्रचार के विरोध में कुछ कार्य नहीं करते।

कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टों में बहुत ही तीव्र विरोध है। आपस की दलबन्दी में समय-समय पर शिष्टता का विचार भी त्याग दिया

जाता है। सोशलिस्ट-दल के प्रचारक बड़े धुरंधर हैं। उनमें बहुतों की सेवाएँ प्रौढ़ और ध्येय सुन्दर हैं। उनके प्रचार के तरीके मँजे हुए हैं। फिर सबसे ऊपर उनका ध्येय प्रचार और कार्य द्वारा अपने को बहुमत में लाने का है, वही उनको निरन्तर इस दिशा में संलग्न रखता है। त्याग भी इस दल के नेताओं का सच्चा है पर उनके कार्यक्रम शायद इस देश के वातावरण के अनुकूल नहीं पड़ने के कारण सफलता उन्हें जल्द नहीं मिलती है उनमें ऐसे व्यक्ति अधिक हैं जिनके विचार संयत और गंभीर तथा दूरदर्शिता-पूर्ण है। पर दल में इससे ज्यादा विचार की कदर कम होती है। ऐसे लोगों में एक बाबू फूलनप्रसाद वर्मा ऐडवोकेट हैं। जब जयप्रकाशनारायणजी जेल से भाग गये तब वे उस कार्य के प्रशंसकों में नहीं थे। उनका विचार था कि यह कार्य अनुचित केवल इसलिए कहा जायगा कि इससे लाभ की संभावना इस समय नहीं है। जब दुश्मन की शक्ति इतनी प्रबल है कि उसमें इस तरह के कामों से सफलता की आशा नहीं है, तब उसको तब तक के लिए स्थगित रखना उचित है जब तक सफलता का मौका न आ जाय। उनका कहना है कि लेनिन वगैरह भी समय देख कर ही चुप और समय देख कर ही कार्य शील होते थे।

इस कांग्रेस-सोशलिस्ट-दल के विरोधी हैं कम्यूनिस्ट, जो इस संग्राम को लोक-युद्ध मानकर सरकार को सहायता देने के पक्ष में हैं और कांग्रेस के तथा कांग्रेस-सोशलिस्ट-दल के कट्टर विरोधी हैं। पर इस दल की संख्या बहुत ही छोटी है। मजा तो यह है कि अंग्रेजी सरकार के पक्ष में इनकी बातें होने पर भी इस दल के हमारे कई अच्छे त्यागी मित्र अब भी जेल में सड़ रहे हैं। क्यों? यह

समझ में नहीं आता। इसका कारण शायद यही है कि जो कम्यूनिस्ट जब तक कैद हैं, उनका देश-प्रेम और त्याग ऐसा नहीं है कि अंग्रेजी सरकार उनपर विश्वास करके उन्हें अपने पक्ष का वैसा ही समझ ले, जैसा वह अन्य कम्यूनिस्टों को मानती है। पहचानने और फुसलाने के क्षेत्र में अंग्रेजों का मुकाबला शायद संसार की कोई जाति नहीं कर सकती।

किसान-सभाई दल की संख्या नगण्य-सी है। उसके दो-एक पदाधिकारियों को छोड़कर और कोई यहाँ नहीं है। और वे भी शायद उन्हीं कारणों से जेल में रक्खे गए हैं, जिन कारणों से चन्द कम्यूनिस्ट यहाँ अब तक वन्दी हैं। इनमें श्री अवधेश्वरप्रसाद-सिंह किसान-सभा के सभापति हैं। मैं इनसे अच्छा प्रभावित हुआ। ये नेता अधिकतर कांग्रेस-सोशलिस्ट दलवालों के साथ रहते हैं। पर उनका गांधीवादियों से भी अच्छा बर्ताव रहता है।

कांग्रेस के बीच इस तरह सिद्धान्त को लेकर या नेतृत्व के निजी स्वार्थ को लेकर दलों या गुटों के बन जाने का फल आज यह हुआ है कि कांग्रेस की भीतरी शक्ति में अक्षुण्ण एकता का अभाव होने लगा है, जिसके कारण उसमें निर्बलता आने लगी है और आपस में द्वेष, कलह, गाली-गलौज व्यक्तिगत स्वार्थ, घृणा आदि उत्पन्न होने लगी है और निःस्वार्थ त्याग तथा परार्थ सेवाका, जो केवल जनहित-प्रेम की आन्तरिक प्रेरणा से अनुप्राणित होती है, अभाव होने लगा है। कार्यकर्त्ताओं में जो भाई-भाई की तरह आपसी प्रेम और सहानुभूति सन् १९२१ ई० में उत्पन्न हुई थी वह सन् ३० की जेल-यात्रा के समय बहुत कुछ कम हो चुकी थी। फिर जो ३० में थी वह ३२ या ३३ में नहीं रही; और अब की बार इस सन् १९४२ के आन्दोलन

में प्रेम और सहानुभूति का अस्तित्व १० प्रतिशत भी नहीं बच रहा था। नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के बीच का यह अप्रेम भविष्य के लिए एक बहुत बुरी निशानी है। इससे कांग्रेस के भीतर राज-रोग की तरह व्यभिचार का उत्पन्न होना पुष्ट होता है और इसको शीघ्रातिशीघ्र नष्ट करने का उपाय सोचना चाहिए। सन् २१ से ३० तक हम सब कांग्रेसकर्मी, राजेन्द्र बाबू से लेकर घुरहू वालंटियर तक, अपने को एक बड़ा परिवार मानते थे। आपस में भाई-भाई से भी अधिक हममें प्रेम था। घरवालों को छोड़कर कांग्रेस वालों के संग रहने से हमको अपनत्व का अनुभव होता था। पर वे बातें सन् ३० के बाद से जैसे ऊपर कह चुके हैं जो धीरे-धीरे लोप होना शुरू हुई। सन् १९४२ में बिलकुल लुप्त-सी दीख पड़ी। सन् १९४२ के आन्दोलन के समय हम में परस्पर की वह एकता, वह संगठन, वह विश्वास नहीं था। जिसका जहाँ प्रभाव था वह वहीं बैठ कर दो चावल की खिचड़ी अलग पका रहा था। उस विकट समय में भी पार्टीबन्दियों की भावनाएँ किसी-न-किसी रूप में हमारे हृदय के भीतर शैतान की तरह काम कर रही थी। फिर कितनों पर तो यह शंका की गई कि उन्होंने पुलिस को विरोधी दल की बातें बताईं और उनकी गिरफ्तारी में सहायक बने, या कितने प्रमुख लोगों के प्रतिकूल यह भी कहा जाता है कि कांग्रेसी मिनिस्ट्री के दिनों में उन्होंने शक्ति में होने के कारण कलक्टर से मिलकर अपने विरोधी दल का जिले से पूर्ण रूप से नाश ही कर दिया। इसमें सत्यता जो कुछ भी हो, मैं नहीं कह सकता। और इतना मुझे विश्वास है कि यह आरोप गलत ही होगा। परन्तु, तब भी हममें इतनी कटुता आ गयी है कि ऐसा नीच आरोप भी करते हम

नहीं शर्माते यह बात तो सत्य ही है । और यही हमको नाश की ओर ले जायगी ।

सैद्धान्तिक पार्टीबन्दी यदि ईमान्दारी के साथ है तो अच्छी चीज है और हमारी उन्नति की निशानी भी है। पर वही पार्टीबन्दी यदि स्वार्थ को लेकर दाव-पेचों के साथ स्वार्थ-साधन के लिए है तो वही देश के लिए आगे चलकर महान् नाश का कारण बन सकती है। इन दोनों बातों का बाहुल्य कांग्रेस में देखने को मुझे इस जेल-यात्रा में मिला।

फिर तीसरी बात मुझे यह देखने को मिली कि इन दोनों दलों में जो गिरोह नया आ रहा है, जिसमें धनी-गरीब सभी हैं, वह अपने निजीस्वार्थ से वैसा शून्य होकर नहीं आ रहा है जैसा कि सन् २१ में हमलोगों का गिरोह आया था जिसकी फाकेमस्ती, उत्साह, कार्य्य-प्रेम और देश-सेवा की भावनाओं में अहं या स्वार्थ-ऐसी बात की गुंजाइयश उतनी नहीं थी। जब राजेन्द्र बाबू और अनुग्रह बाबू ऐसे प्रतिभावान सम्पन्न लोग फाकेमस्ती के पीछे पागल हुए थे। तब ऐसे लोग सामने सर पर कफन बाँधकर आये। पर अब धनिक-वर्ग कांग्रेस में घुसता तो है या इसका साथ भी देता है, पर वह आज इस लोभ से ही ऐसा करता है कि कांग्रेस शक्ति ग्रहण कर रही है; इसमें जाकर इससे अपना नफा करें। फिर वे यह भी भय करते हैं कि हम कांग्रेस से अलग रहेंगे तो अपने स्थान से च्युत हो जायँगे। परन्तु बुद्धिहीन गरीब बेचारे को इतनी समझ ही नहीं है कि वह इतनी दूर तक की बातें सोच सके। इसलिए वह केवल यही सोच कर कांग्रेस में शरीक होता है कि इसमें हमारा आर्थिक नफा है, हमारी दशा सुधरेगी, हमको गांधीजी का कहना करना

चाहिए। गांधीजी अवतारी पुरुष हैं। पर जो गरीब पढ़े-लिखे हैं, उनकी दो श्रेणियाँ हैं—एक सच्चे देश-सेवकों की, जिनका प्रेम अक्षुण्ण है और जो देश के लिए अपना जीवन देना चाहते हैं और दूसरा अवसरवादियों की जो कहीं जगह न पाने की दशा में इसमें शरीक हो स्वार्थ-साधन करना चाहता है। पहले की संख्या कम और बाद वालों की संख्या अत्यधिक है। फिर कुछ ऐसे चतुर लोग भी इसमें आये या आते हैं जो यह सोचकर कि कांग्रेस के प्रभाव के सामने हम आगे नहीं बढ़ सके इस लिए चलो, कांग्रेस में शामिल होकर ही अपने को जन प्रिय बनायें और कांग्रेस में अपने मतवालों की संख्या बढ़ाकर शक्ति प्राप्त करूँ। इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं एम० एन राय और उनके दलवाले। मेरी समझ से कांग्रेस के इस नाजुक अवसर पर अपनी भीतरी बनावट की ओर बहुत जागरूक होने की आवश्यकता दीख पड़ती है। जिस तरह जवानी और बाल-काल में शरीर की देख-भाल की उतनी आवश्यकता नहीं रहती, जितनी बुढ़ापा या अधेड़ अवस्था में जान पड़ती है, उसी तरह पचास वर्षीय वृद्धा कांग्रेस के शरीर में उपर्युक्त व्याधियों में उत्पन्न हो जाने के कारण उसके पूर्ण देखरेख की आवश्यकता आज उत्पन्न हो गयी है। फिर नयी भर्ती में भी सावधानी की आवश्यकता नयी भर्ती ऐसी होनी चाहिए जिससे इसका भविष्य उज्ज्वल बने छद्मवेशी स्वार्थियों की भर्ती रोकना भी इसका एक कर्त्तव्य है। पुरानी पीढ़ी अब ढल चली है। वह अब बीस वर्षों से अधिक आगे टिक नहीं सकती। अतः नयी पीढ़ी के चुनाव में नेताओं को बहुत सावधान रहने की जरूरत है, जिससे कम-से-कम पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति के समय तक तो कांग्रेस की शक्ति युवक की शक्ति की तरह दुश्मन

से मुकाबला करने के लिए पूर्ण और अक्षुण्ण बनी रहे। इसलिए दुश्मन को घुसकर वार करने की नीति को हर तरह से रोकना कांग्रेस का कर्त्तव्य है।

यह तो हुईं सैद्धान्तिक दलबन्दियों और उनसे होनेवाली अच्छाइयों और बुराइयों की बातें। अब अपने प्रान्त के प्रमुख व्यक्तियों के बारे में भी अपना अनुभव कुछ लिखना उचित है। ऐसा लिखते समय मैं केवल अपने सात मास उनके साथ एक ही जेल, और एक ही वाड में रहने के समय होनेवाली घटनाओं और तज्जनित अनुभवों का सहारा लूंगा।

श्री अनुग्रहनारायण सिंह—

इतने दिनों तक अति सन्निकट रहने में मुझे अनुग्रह बाबू में संगठन की सबसे अधिक शक्ति दीख पड़ी। उनकी इस शक्ति के पीछे सतत काम करने का निःस्वार्थ अनुराग और महात्मा गांधी के सिद्धान्तों की मान्यता तथा देश-प्रेम की भावना ही मूल रूप में काम करती हुई मालूम हुई। वे तीक्ष्णबुद्धि तो इतने दीख पड़े कि मेरे जानते उनकी एक क्रिया भी ऐसी नहीं हुई जिसमें दूसरों की भावनाओं का विचार न रहा हो। पर साथ ही अपने विश्वासों के इतने ईमानदार मालूम हुए कि किसी बड़े से बड़े बाहरी प्रतिकूल कारण के उपस्थित हो जाने पर भी वे अपने विश्वासों के ही अनुकूल कार्य करेंगे। लेकिन ऐसे अवसरों के उपस्थित होने पर जब उनको यह ज्ञात हो जायगा कि उस विश्वास के सही होते हुए भी उनके व्यक्तिगत स्वार्थ की सफलता औरों के हित के प्रतिकूल जा रही है। तब वे अपने विश्वासों के प्रतिकूल भी उस समय कर बैठेंगे और अपने स्वार्थ-क्षोभ का हनन

कर देंगे। परन्तु, फिर भी यदि उनके विचार से उसमें सार्वजनिक भलाई की गुंजाइश अधिक दीखती हुई मालूम होगी तो उस दशा में बदनाम होकर भी उसमें वे किसी तरह पीछे न हटेंगे। वे कार्य की भीतरी ठोसता के समर्थक और बाहरी दिखावे के विरोधी हैं। वे अपनी अन्त स्फूर्ति से अनुशासित होना अधिक पसन्द करते हैं। अपने मित्रमण्डल में सबसे बहस करने के तैयार रहते। मामूली-मामूली बात पर भी गरमा-गरम बहस हो जाती है। वार्ता करने में बहुत कुशल भी हैं और अपने पक्ष के समर्थन में बहुत भावुक भी हैं। अपने साथियों से इतना प्रेम करते हैं और उन्हें हर तरह से सहायता देने के लिए प्रस्तुत रहते हैं कि सभी साथी उनकी इस कमी का ख्याल नहीं करते। साथ ही विरोधी पार्टीवाले भी उनकी इस बात की प्रशंसा करते हैं। बल्कि जिसपर उनकी अधिक कृपा और प्रेम होता है, उसे उतनी ही अधिक झिड़क और नुकताचीनी भी सुननी और सहनी पड़ती है। पर यह सब झिड़क और नुक्ताचीनी वगैरह सत्-पथ पर लाने भर के लिए ही होते हैं। अधिकांश समय ऐसा होता है कि अपनी वार्ता और भावुकता के प्रवाह में उनसे ऐसे कटु वाक्य भी निकल जाते हैं जिससे उनका बड़ा से बड़ा साथी भी कुछ क्षण के लिए बुरा माना जाता है। पर जब कभी ऐसा हो जाता है तो अवसर ढूँढ़ने लगते हैं कि जिसके सहारे उसे वे प्रसन्न करें और अपनी त्रुटि के लिए खेद प्रकट करें। यदि ऐसा अवसर नहीं मिलता तो वे स्वयं ही सीधे उसके पास जाकर उसको प्रसन्न करते हैं और यदि इसमें उनको उसने दोषी बनाया तो उसे भी स्वीकार करने में अपना अपमान नहीं मानते। वे-किसी-न किसी तरह उस मित्र को प्रसन्न करके ही हटते हैं। मुझसे उनकी

इस पहलू पर अकसर खटक जाया करती थी। जब कभी वे जरूरत से अधिक नुक्ताचीनी करते या झिड़कते तो मैं भी अपने स्वभाव से कायल होकर कभी बोलना बन्द कर देता तो कभी जाना बन्द कर देता और तब वे खुद मेरे पास आते और मुझे प्रसन्न करते।

एक बार रात को वाडं तीन में किसी बात को लेकर बड़ा ही हल्ला मचा। सब लोगों ने बन्द होने से इन्कार कर दिया। ६ वार्ड में जब यह खबर पहुँची तो हममें ६, ७ आदमी भी बन्द नहीं हुए। इसके पूर्व मेरे वाडं के और लोग बन्द हो चुके थे। बड़ा ही हल्ला मचा। मेरे न बन्द होने पर अनुग्रह बाबू बहुत बिगड़े। उन्होंने कटु आलोचना की। तब भी मैं बाहर ही रहा। दो बजे रात को जब बात तय पायी तो हम बन्द होने गये। उसमें गलती हम बन्दियों की थी। दूसरे दिन बिगड़ कर प्रातः काल के नाश्ते के समय चाय-पार्टी में उनके पास मैं नहीं गया। बिगड़ते हुए वे स्वयं आ पहुँचे। मैं रोष में भरा हुआ चर्खा कातता रहा। उठा तक नहीं। सामने खड़े होकर उन्होंने पूछा —"का होता ?"

मैंने कहा, "देखले जाता।"

मुस्कराते हुए प्रश्न हुआ–"नाश्ता पर काहें ना अइलीं हाँ ?"

मैंने निरपेक्ष भाव से उत्तर दिया—"का करे जाईं। इहें कर लेली हाँ।"

आत्मीयता के स्वर में उन्होंने कहा, " काहे खिसिआइल बानी। जे कहल जाला से रउरे भलाई खातिर नू।"

मैंने उसी रूखेपन के साथ कहा, "भलाई खातिर कहला के मतलब ई ना नू ह कि बेकार डाँटे लागीं। शान्ति से भी त ऊ बात समुझावल जा सकेला।"

उन्होंने फौरन उत्तर दिया, "हाँ, ई हमार गलती बा। उठीं चलीं।"

मैं हँस दिया और वे भी हँसने लगे।

फिर वे किसी की तारीफ मुख पर नहीं करते। उसके प्रति जो उनकी श्रद्धा होती है तो दूसरों से उसकी प्रशंसा कर देते हैं। मेरे "हृदय की ओर" नामक उपन्यास को पढ़कर प्रा:तकाल की चाय-पार्टी में वे देर से आये तो मैंने पूछा, "देर हो गयी ?"

उन्होंने मुस्करा कर कहा, "रउरे किताब पढ़त रहलीं हाँ।"

मैंने हँसते हुए पूछा, "पसन्द पड़ल हा ?"

उन्होंने कहा, "ना। केहू के तारीफ मुँह पर ना करेके।"

मैंने निरपेक्ष भाव से कहा, "तारीफ नइखीं सुनल चाहत। इ जानल चाहतानी कि कवनो त्रुटि बुझाइल हा।"

उन्होंने कहा, "बिला-सनी का अन्त में साधु ना होखे के चाहत रहे। और सब ठीक बा।"

मैंन पूछा, "वार्ता पसन्द पड़ल हा ? "

उन्होंने गम्भीरता के स्वर में कहा, "बहुते सुन्दर लागल। बाकी ई सब आपन तारीफ मत समझीं।"

मैंने हँसकर व्यंग्य के स्वर में कहा, "ई त जानी तानी कि केहू के तारीफ ना कर सकीं। बाकी ई बताईं कि किताब पढ़त के क जगह रोये के पड़ल हा ?"

मेरा निशाना जगह पर पड़ा। वे सर्वत्र से घिर गये थे। कोई उत्तर न दे चुप हो गये। मैंने हँस कर दुहराया, "सच-सच कहियेगा। सच बोलने की परीक्षा ले रहा हूँ।'

लाजभरे-से होकर बोले, "कई बार।"

मैंने हँस कर कहा, "बस। अब साहब का खूब ओह किताब के निन्दा करीं। हम बुरा ना मानब।"

फूलन बाबू, मुरली बाबू, सत्य नारायण बाबू, सब लोग हँसने लगे।

फिर उनकी व्यक्तिगत बातचीत में बहस करने का तरीका भी भिन्न है। बहस में भावुक तो वे अवश्य हो उठते हैं पर वाक्य सदा तर्क से पुष्ट और शुभकामना से ओत-प्रोत होते हैं। एक बार मेरी किसी बात को गलत समझ कर एक मित्र ने बुरा मान अनुग्रह बाबू से शिकायत की। उन्होंने मुझ से पूछा, "तुमने ऐसी बात क्यों कहीं?"

मैंने आश्चर्य के साथ कहा, "यह बात कुछ नहीं है। किसने आप से कही?"

इतने में मुरली बाबू भी आ गये। उन्होंने भी मुझ से कैफियत तलब की। मुझे इस गलत दोषारोपण पर बहुत दुःख हुआ। मैंने प्रतिवाद तो किया पर बहुत दुखी होकर। यहाँ तक कि मेरे नेत्रों में आँसू आ गये। मैं वहाँ से अपने सेल में चला आया। भोजन की घंटी बजी। सब खाने गये। पर मैं अपने सेल में ही बैठ रहा। जब पंगति उठ गयी तो अनुग्रह बाबू मेरे सेल में आये। मैं उठकर खड़ा हो गया। वे चारपाई पर बैठ गये। थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "खाये काहें ना अइली हाँ?"

मैं रोने लगा। वे कहने लगे, "हम उनका बहुत डटलीं हाँ कि वे समझले अइसन दोषारोपन काहें कइलन? उठीं, खाये चलीं। खाना रखल बा।"

मैंने कहा, "खा लेबि। दुक स्वस्थ्य हो लेवे देल जा।"

उन्होंने कहा, "गीता-रामायण पढ़ी ला एही खातिर न कि आत्मानुशासन कर सकीं। ईहे आत्मनुशासन ह?"

मुझको ये वाक्य प्रेम, आत्मीयता, शुभाकांक्षा से इतने ओतप्रोत ज्ञात हुए कि मेरी अन्तस्तल की भक्ति दुगुनी हो गयी। धीरे से कहा, "हृदय से विकार आ निर्बलता के अभाव त कसहूँकहल नइखे जा सकत, बाकी ओह पर शासन करे भर के अपना पौरुष के बात बा।"

उन्होंने कहा, "चलीं रामायण क्लास में लोग रउरे इन्तजारी में बा।"

मैंने कहा, "चलल जा, हम आव तानी।"

वे चले गये। जब दस मिनट बाद स्वस्थ हो मैं वहाँ पहुँचा तो अपने कानों से सुना वे उस मित्र जिन्होंने मुझे गलत समझा था, उनका दोष बता रहे थे।

जेल भर में लोकप्रिय तो वे इतने अधिक थे कि सोशलिस्ट गांधीवादी तथा रैडिकल-दल वाले भी उनके प्रति हार्दिक श्रद्धा अन्यों की तुलना में अधिक रखते हैं और ऐसे अवसर भी मैंने अपनी आखों देखे जब उन्होंने विरोध-पक्षवाले को भी आज्ञा देकर उचित बात करने के लिए बाध्य किया।

एक बार ऐसा हुआ कि अपने वार्ड के किसी आपसी वैमनस्य में न्याय करने के लिए अनुग्रह बाबू पंच बनना पड़ा। उन्होंने किसी एक मित्र को दोषी बनाया। दूसरे दिन दोषी मित्र ने अनशन करना शुरू किया। कारण उसने बताया-'अपनी गलती के लिए आत्म शुद्धि कर रहा हूँ।" पर चन्द विरोधी व्यक्तियों ने इस अवसर हाथ से जाने देना उचित नहीं समझा। वे कहने लगे कि अनुग्रह बाबू के न्याय में पक्षपात करने के कारण ही अनशन हो रहा है। प्रातःकाल के नाश्ते के समय मुझे यह सूचना मिली। मैं अनशन

करनेवाले मित्र के सेल में जाकर उनसे वार्ता करने लगा। उन्होंने बताया कि पंच ने जो मुझे कटु वाक्य के प्रयोग करने के लिए दोषी माना, है उसीसे मैं अपनी आत्मा को शुद्ध करने के लिए प्रायश्चित्त स्वरूप यह दो दिन का अनशन कर रहा हूँ। ये बातें हो ही रही थीं कि श्री बाबू वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मित्र को बहुत समझाया और अनशन तोड़ने के लिए उनसे आग्रह किया। पर वकील मित्र अनशन तोड़ने पर सहमत नहीं हुए। यहाँ तक कि श्री बाबू अपने हाथ से दूध का कटोरा लेकर उनको पिलाने के लिए उनके मुँह तक ले गये पर तब भी वे महाशय राजी नहीं हुए। इसी बीच अनुग्रह बाबू भी आ पहुँचे। वे चुपचाप बैठ गये। श्री बाबू जब विफल होकर वहाँ से उठ गये तब अनुग्रह बाबू ने वार्ता शुरू की, "आप अनशन क्यों करते हैं?"

"आत्म-शुद्धि के लिए।"

"आत्मा ने क्या अपराध किया कि अशुद्ध हो गयी?"

"आपने उसे गलत पाया तभी तो दोषी माना। और जब वह दोषी है तो प्रायश्चित करना चाहिए।"

दोषी किस कारण से माना गया? उसमें कोई एक दूसरा फरीक भी तो है?"

"हाँ, दूसरा फरीक है। और उसको अकारण मैंने दुःख दिया, इससे मैं दोषी समझा गया।"

"तो उसका न्याय तो एक बार हो चुका। पंच ने दोषी करार देकर माफी मँगवा दी। अब अनशन क्यों?"

वकील चुप रहे। थोड़ी देर सोच कर बोले—"आत्म-शुद्धि के लिए?'

"यह तो उत्तर ठीक नहीं है। आप वकील हैं। स्वयं सोचें।"

वकील मित्र चुप रहे। फिर अनुग्रह बाबू ने कहा, 'अनशन-अस्त्र का सत्याग्रह शास्त्र में कब प्रयोग किया जाता है, जानते हैं?"

"आत्म-शुद्धि और साथ ही प्रतिपक्षी की आत्मशुद्धि के लिए भी।"

'लेकिन मैं पूछता हूँ, कि इसका प्रयोग कब होता है?'

"जब शुद्धि की आवश्यकता होती है।"

'नहीं, जब अपनी और प्रतिपक्षी की आत्मा के सुधार के सभी तरीकों का प्रयोग हो चुके और जब वे सबके सब विफल सिद्ध हो जायँ, तब इसका प्रयोग किया जा सकता है पर तब भी विशेष शर्त्तों की पूर्ति होने पर ही। मेरा ऐसा कहना क्या सच है? क्या आपको यह मान्य है?"

वकील ने कहा, "हाँ, आप सच कहते हैं। मुझे यह नियम मान्य है।"

"ठीक है। तो आपने अपनी और प्रतिपक्षी की आत्मा के सुधार के लिए जितने तरीके हैं, सबका प्रयोग कर लिया कि अन्तिम अस्त्र अनशन को उठाया?"

वकील-मित्र निरुत्तर हो चुप रहे। अनुग्रह बाबू उसी प्रेमपूर्ण स्वर में आत्मीयता के साथ कहते गये, "आपने प्रतिपक्षी को इस अनशन की सूचना नहीं दी। इसलिए इससे उसकी आत्मा को जो कष्ट होगा, उसका दोष आप पर है। फिर अपने शरीर को भी जो आप बेकार कष्ट दे रहे हैं, इसके लिए भी आप निर्दोष नहीं हैं। फिर आपने क्या यह अपने भीतर टटोल कर खूब अच्छी तरह से देख लिया है कि इस अनशन को करने के उद्देश्य के पीछे आपके मन में किसी भाँति का विकार नहीं है? केवल दोनों पक्षों के लिए विशुद्ध

शुभ कामना से ही यह अनशन हो रहा है। इसको दो मिनट सोच कर विचारिये तो ?"

ये वाक्य बहुत ही गम्भीर और आत्मीयता भरे स्वर में वैसे कहे गये जैसे कोई बड़ा भाई छोटे भाई को पुचकार-पुचकार उसकी गलती समझा रहा हो।

युवक वकील तो तीक्ष्ण बुद्धि वाले और सच्चे विचार के व्यक्ति थे। उन्होंने क्षण भर सोचा और कहा, नहीं, मैंने अनशन के पूर्व न तो ये सब बातें सोची थीं और न मैं अपने को विकार रहित ही मानता हूं। मैंने अनशन के पूर्व प्रतिपक्षी को इसकी सूचना भी नहीं दी थी।"

अनुग्रह बाबू ने प्रसन्न मन धीरे से ही कहा, "तो गलती न कर रहे हैं! गलत काम का प्रतिफल अच्छा नहीं होता है।"

वकील सच्चे हृदय के आदमी थे, कहा, "गलती तो है।"

अनुग्रह बाबू ने कहा, " मैं इस विचार से आया हूँ कि मित्र को उनकी गलती समझाऊँगा और यदि वे नहीं समझ सकेंगे तो उन्हीं के साथ स्वयं भी अनशन करके उनकी अन्तर्बुद्धि को जगाने का प्रयत्न करूँगा। आपका क्या विचार है ?"

युवक वकील मित्र की आँखें, आत्मीयता से भरी हुई इन बातों को सुन कर सजल हो आयीं। उन्होंने अपने हाथ से दूध से भरे उसी कटोरे को जिसे श्री बाबू ने पिलाने का प्रयत्न किया था, उठा कर मुँह से लगाया।

गाँधी-जयन्ती का अवसर था। सन्ध्या-समय सब वार्डों की सभा एक जगह श्री बाबू के सभापतित्व में हुई। श्री बाबू और अनुग्रह बाबू के व्याख्यान हुए। श्री बाबू का व्याख्यान अति सुन्दर अत्यन्त सारगर्भित और भावनाओं से ओत-प्रोत था। साथ ही

गांधीवाद की अटूट भक्ति और उसकी खूबियों से सम्पन्न था। गांधीवाद की परिपुष्टि और उसकी उत्तमता की व्याख्या में पाश्चात्य अध्ययन का पांडित्य अपनी प्रखर तर्क शक्ति के साथ चमक उठा था।

गांधीवाद ही संसार की विषमता को हटाने का एक मात्र साधन माना गया। इस स्पीच से हम गांधीवादी गद्गद् हो उठे। उसके बाद अनुग्रह बाबू का प्रवचन हुआ। उन्होंने वादों की उत्तमता या निकृष्टता की कोई बात नहीं कही। उन्होंने कोई भी शब्द या वाक्य ऐसे नहीं कहे जिससे किसी को विरोधी-भाव कायम करने का अवसर मिले। उन्होंने कहा, "गांधीजी मोतीहारी सत्याग्रह से आज तक हमें सत्य की रक्षा में निर्भय होकर कार्य करने की शिक्षा दे रहे हैं।" इसी बात को उन्होंने शुरू से लेकर आज तक के गांधीजी के सुन्दर, सरस कथानकों को उद्धृत करके परिपुष्ट किया जो हम सब लोग एकाग्र हो सुनते रहे। सबों के मन को इससे शिक्षा भी खूब

सभा समाप्त हुई। दूसरे दिन जेल में बड़ी सनसनी रही। सोशलिष्ट और कम्यूनिष्ट दलों के प्रमुख-प्रमुख नेता मुझसे बातें कर रहे थे, "अनुग्रह बाबू की स्पीच बड़ी ही सुन्दर, सामयिक और कुशलतापूर्ण हुई। पर श्री बाबू की स्पीच तो कटुता उत्पन्न करने वाली थी।"

सिद्धान्त की भक्ति के सम्बन्ध का भी एक उदाहरण लीजिये। चाय पार्टी पर एक दिन पटना जेल की बातें होने लगीं। मुरली बाबू, सत्यनारायण बाबू, फूलन बाबू आदि मित्र वहाँ आन्दोलन के दिनों में जो खबरें जेल में पहुँचा करतीं उनकी चर्चा कर रहे थे।

किसी ने अनुग्रह बाबू से कहा, "उन दिनों जब बाहर की हिंसात्मक खबरें मिलती थीं तो बाबू तो उतने दुःखित नहीं दीखते थे लेकिन आप उनको सुनकर बहुत दुखी होते थे।"

इसपर अनुग्रह बाबू ने मुस्कराया। तब तक किसी मित्र ने कहा, "उस दिन जब राजेन्द्र बाबू ने इनसे कहा, अनुग्रह बाबू, "You should not discredit the acts of this movement." तब आपने कितनी रुखाई से उत्तर दिया था, " But I see no reason why should one relish these acts of violence in this movement of nonviolence."

इस पर राजेन्द्र बाबू चुप हो गये। हमलोग आपस में जब ये बातें कर रहे थे तो बाबू साहब मुस्कुरा रहे थे। मैंने मजाक में कहा, "आप क्षत्रिय हैं। क्षात्रधर्म के विरुद्ध मत क्यों रखते हैं?"

उन्होंने हँसते हुए कहा, "कुँअर सिंह के वंशज हईं नू। काहें ना तरुआर चमकवली हाँ। काहे गाँधी के पीछे पड़ल रह गईली।'

बाबू श्री कृष्ण सिंह—

श्री बाबू के व्यक्तित्व से भी मैं कम आकर्षित नहीं हुआ। पर उनके प्रति मेरी वह अपनापन की-ममता की भावना नहीं जाग्रत हो सकी जो अनुग्रह बाबू के प्रति जाग्रत हो गई है। उनके सामने मैं अपने को उनके नीचे काम करने-वाला एक क्षुद्र कार्य-कर्त्ता अनुभव करता हूँ। पर अनुग्रह बाबू के सामने मैं अपने को उनका छोटा भाई जैसा समझता है। जो अपने भाई के साथ बराबर का-बँटवारा कराने का हक

रखता है, जो अपने को भी उसीके समान मानता है, पर उसके प्रेम और ममता से इतना बँधा हुआ रहता है कि उसकी आज्ञाओं का उलंघन नहीं कर सकता। उसके साथ लड़-झगड़ कर भी वह उसी बात को करेगा जो उसका बड़ा भाई कहेगा। मैं श्री बाबू के सामने जब बैठता हूँ, वार्ता करता हूँ, बहस करता हूँ, तो उनको अपना नेता मानने की भावना को अपने मन से नहीं निकाल पाता हूँ। उनके वाक्य संयत, परिमित, हँस-परिहास से रहित, गम्भीर और केवल चन्द गम्भीर विषयों तक ही सीमित रहते हैं। पर अनुग्रह बाबू के सामने जब मैं होता हूँ तो ये बन्धन मेरे सामने नहीं रहते श्री बाबू का अध्ययन बिहार में सबसे अधिक नहीं तो सबसे अधिक अध्ययन करने वालों में से एक का अद्वितीय अध्ययन है वे पुस्तकों को पढ़ते ही भर नहीं हैं करते बल्कि उन पुस्तकों पर भी नोट भी लिखते जाते हैं और नोट लिख-लिख कर रख ही नहीं देते, उनका पारायण भी होता रहता है। वे दूसरों की पुस्तक नहीं पढ़ते। अपनी ही पुस्तक इसलिए पढ़ते हैं कि उसपर स्वच्छन्द रूप से वे हरी लाल पेन्सिल घुमा सकते हैं। उनकी पढ़ी हुई किताबों को मैंने देखा। सारी किताब लाल हरी पेन्सिल रँगी रहती है। प्रातःकाल से दस बजे रात तक सिवाय पढ़ने के उनका कोई दूसरा काम नहीं रहता था। सुबह-शाम एक आध घंटा टहल अवश्य लिया करते थे। अध्ययन के ख्याल से मुझे चाहिए था कि मैं उन्हें अपने लेख आदि सुनाता और परामर्श लेता पर ऐसा करते मुझे हिचक मालूम होती थी। पर अनुग्रह बाबू से अपने अधिकांश निबन्धों को सुना कर मैं परामर्श ले लिया करता था। श्री बाबू के सामने केवल मैं ही ऐसी भावनाएं अपने हृदय में वहन करता होऊँ ऐसी बात नहीं थी। अधिकांश बन्दियों की ऐसी

ही भावनाएं थीं। अनुग्रह बाबू, वार्ड में जितने ग्रूपों में खेल होते थे, जितने अध्ययन-ग्रूप थे, सर्वत्र नित्य नियमित रूप से पहुँचते और उनमें शरीक होते थे। ताश, शतरंज या अन्य खेल जहाँ-जहाँ होते, वहाँ-वहाँ वे खेला करते और खेलते समय हँसी-मजाक और बेतकल्लुफी में वैसे ही भाग लेते जैसे सब। पर श्री बाबू को मैंने कभी ताश आदि खेलों में शरीक होते नहीं देखा। हाँ, शाम को गेंद या बैडमिण्टन के पास खड़े होकर तमाशा देखते समय कभी-कभी मैंने उनको जी भर हँसते तथा उन्मुक्त मन बोलते और हँसी-मज़ाक़ करते अवश्य देखा। कभी-कभी मुझसे दस-दस बजे रात तक हिन्दी आदि पर वार्ता करते रहने पर मैं सदा अपने हृदय में यही अनुभव करता रहता कि मैं समुद्र के पास खड़ा हूँ। उसमें स्नान करते समय गंगा की तरह मैं स्वतंत्र रूप से रँगरेलियाँ नहीं कर सकता।

श्रीबाबू का व्यक्तित्व गंभीर, वाक्य सुलझे हुए और गम्भीर, आचरण खिंचा हुआ मुझे दीख पड़ा। सम्भव है वे अन्य जनों के सामने अधिक खुले हुए रहते हों, पर सार्वजनिक रूप में उनके आचरण में इस घुलने मिलने वाली बात की कमी देखी। वे बड़े भावुक प्रकृति के आदमी हैं। उनका व्याख्यान भावुकता से भरा रहता है। पर इसका मतलब यह नहीं है कि उसमें तर्क और सार बातों का अभाव रहता हो। उसमें तर्क भी भावनाओं को छूते हुए होते हैं, उनकी गम्भीरता भी भावनओं को जगाने वाली होती है। मुझे वे उग्र विचार के समर्थक जान पड़े। पर अनुग्रह बाबू को मैंनें उग्र विचारों का घोर विरोधी पाया। आस्तिकता उनमें भी बहुत बढ़ी हुई है। एक रोज़ बात ही बात में अपने मथुरा में रह कर कृष्णभजन करने की आन्तरिक अभिलाषा की बात उन्होंने मुझेसे कह सुनाइ।

आध्यात्म की किताबों का अध्ययन उनको उतने रुचिकर नहीं हैं जितनी अन्य पाश्चात्य विषयोंकी किताबोंको पढ़नेकी उनकी अभिरुचि है। जेल में उनको लोग वैसे ही आदर की दृष्टि से देखते हैं जैसे अनुग्रह बाबू को, पर उनके साथ वे उतना अपने को उन्मुक्त नहीं अनुभव करते जितना अनुग्रह बाबू के सामने। उनकी वार्ता और उनके व्यवहार एक कुशल नीतिकार के सदृश आगा-पीछा सोच कर होते हैं। अपने मिलने वालों से उतना खुलकर वे नहीं मिलते-जुलते हैं। जितना कि अनुग्रह बाबू मिलते हैं। इनके स्वभावमें एक reserved secrecy भी है। कांग्रेस मिनिस्टरी के दिनों में जब जिला बोर्डों के चुनाव का सवाल प्रान्त भर में उथल-पुथल मचाए हुए था और सदाकत आश्रम में कांग्रेसियों का मेला इसी सम्बन्ध में लगा रहता था और हर व्यक्ति पैरवीमें दूसरे को मात करने के प्रयत्नमें कोई कोर कसर बाकी नहीं रखना चाहता था तब मैं भी उम्मीदवारी का पाग बाँधे कूबड़ियों के बल सेक्रेटेरियेट, क़दमकुँआ और सदाकत-आश्रम का चक्कर काटा करता था। दो बार श्री बाबू के पास मुझे जाना पड़ा। पर दोनों बार आध-आध घंटे तक रुक कर विना मिलेही वापस आना पड़ा। पर अनुग्रह बाबू के यहाँ दोनों बार जाते ही जाते मुझे ऊपर बुलाहट हुई और यद्यपि काम नहीं हुआ पर अपनी सत्य और युक्तिपूर्ण बातों से उन्होंने मुझे असन्तुष्ट नहीं होने दिया।

बाबू सत्यनारायण सिंह—

गांधीवादी समुदाय में इस जेल में इन दोनों महारथियों के बाद नम्बर है सत्यनारायण सिंह का जो, प्रान्तीय कांग्रेस कमीटी के प्रधान सभपाति हैं। आप वार्ता करने में निपुण हैं। हिन्दी साहित्य से

प्रेम करन वाले, गांधीवाद के अखण्ड हिमायती और राजसी प्रकृति के सफ़ाई पसन्द पुरुष हैं। स्वभाव मधुर, लोकप्रिय और बातुनी है। आपसे पूरा मिलना-जुलना रख कर भी मैंने उनको अच्छी तरह नहीं जान पाया।

बाबू जय प्रकाश नारायण —

इनसे मेरा कोई खास साबिका ऐसा नहीं हुआ कि उनके चरित्र की तह तक में पहुँच सकूँ और उनके बारे में अपना अनुभव कायम करूँ, फिर भी जो दो तीन भेंट हुईं और जो कुछ जेल में सुना या उनकी स्पीच को सुनने का जो दो एक बार अवसर मिला उनके आधार पर मैं यही कह सकता हूँ कि वे समझदार, अपने विचारों के पक्के ईमानदार, पक्का देश भक्त और अध्ययनशील, मिलनसार, निर्भीक वीर व्यक्ति हैं। सोशलिस्ट ग्रूपवाले उनको गांधीजी, के स्थान पर बैठाना चाहते हैं, पर उस स्थान के लिए न तो अभी उनकी सेवाऐं ही हुईं और न वे उस स्थान के योग्य अभिनेता ही है। और न उनके साथ ही वैसा करने भी सफल करने में इस भारतवर्ष में बीसों वर्ष तक ही सकेंगे। उनके सम्बन्ध में जब मैंउनके मांगने की नीति पर विचार करता हूँ तो उनके कार्यक्रमों में दूरदर्शिता की कुछ कमी और समय को ठीक से न समझने की त्रुटि पाता हूँ। साथ ही उनमें युवावस्था के उग्र विचारों का बहाव अत्यधिक मात्रा में दीख पड़ा। मेरी समझ से जो स्कीमें वे सोचते हैं उनमें समयके अनुसार ठोस रहती है और न दूरदर्शिता ही जेल में एक बार उनका प्रस्ताव था कि जमशेदपुर के सिपाही कैदियों को जो यहाँ 'सी क्लास' के राजनीतिक बन्दी है,

यह सिखलाया जाय कि वे दो चार किसी बहाने जेल के सदर फाटक में घुस जाँय और फाटक की कुंजी लेकर जेल का फाटक खोल दें और तब सब कैदी जेल से भाग निकलें। जिस प्रमुख व्यक्ति से यह प्रस्ताव कहा गया था उसने प्रश्न किया, "मान लीजिये वे निकल भागते हैं। फिर बाद को क्या होगा? तुरत गोली चलेगी, सैकड़ों आदमी बेकार मारे जायँगे। यह सब किस लाभ के लिए होगा। और देश को इससे कौन सी भलाई होगी।" इसका उत्तर वे नहीं दे सके।

मैं एक दो बार उनके यहाँ गया। मामूली बातें हुईं। जिससे इस भेंट से मैं अपने में उनके प्रति कोई खास आकर्षण का अनुभव नहीं कर सका। फिर भी उनकी प्रतिभा, त्याग और सेवा तथा संगठन शक्ति का लोहा तो मैं ही नहीं सारा भारत मानता है। सोशलिस्ट दल के भारत में आदि संस्थापक तो वे ही हैं। फिर जहाँ अपने मत की उग्रता में वे इतना आगे बढ़े हुए हैं, और कभी-कभी छोटी मोटी गलती (जो हमारी दृष्टि से ग़लती कहाँ जाएगी, उनकी विचार धारा से नहीं) कर बैठते हैं वहीं उनके स्वभाव में संजीदगी और चीजों को व्यापक रूप से विचारने की शक्ति भी बहुत ही उच्च श्रेणी की है जिस से देश को बहुत बड़ा लाभ हुआ है। कांग्रेस सोशलिस्ट दल को कांग्रेस के (उनके विचार से) प्रतिगामी प्रस्तावों के साथ बनाये रखने का सब से बड़ा श्रेय भी जयप्रकाश नारायणजी को ही प्राप्त है। इसका फल यह हुआ है कि कांग्रेस की तथा उनके दल की भी शक्ति आज दुगुनी बढ़ गयी है और सन् १९४२ का-सा अन्दोलन देश कर सका है। इस अन्दोलन की हिंसा भी भले गाँधीवादी निन्दा करें पर मैं नहीं करता। मैं ही नहीं, शायद महात्मा जी भी इस बात को

अस्वीकार नहीं करेंगे कि कर्तव्य और अनाशक्तिभाव से परिपूर्ण हिंसा भी उस अहिंसा से लाख गुनी अच्छी है जिसमें आत्म विश्वास की सच्चाई का अभाव, तथा कायरता का ढोंग (Hypocrisy) भरा हुआ रहता है। मेरा विश्वास है कि महात्माजी अपना एक ईश्वरीय सन्देश लेकर आए हैं जिसके आदर्श को जन-समूह मान कर भी कार्य में अपनाने में शायद हमेशा असफल ही रहेगा। और मानव को उस आदर्श-पान में सतत असफलता तथा उस असफलता को टालनेके प्रयत्नमें ढोंग की जो स्वाभाविक सी मनोवृति है, वह एक न एक दिन बड़े से बड़े गांधीवादी से भी इस ढोंगके निराकरण में अपने आदर्श की दूरहता स्वीकार करायगी और गाँधीवाद बुद्धि वादसे सम-झौता करने पर बाध्य होगा। जब अपने मौलिक आदर्श भेदोंके कारण आपसका समझौता न हो सकेगा तब उस दशामें गांधीवाद तथा कथित आज की राजनीति के उपयोग की वस्तु भी शायद तब अपने असली मानी में साधारण मानव के सामने नहीं ही माना जायगा। अपनी इस धारणा के कारण रह रह कर मैं साम्यवाद का आलोचक बन कर भी उसके सिद्धान्त की व्यवहारिकता का प्रशंसक बन जाता हूँ। न मालूम क्यों मैं चाणक्य नीति को, व्यक्ति और समस्टि, दोनों के लिए घातक मानता हूँ और देश को असत्य की ओर ही नहीं रसातल की तरफ ले जाने वाला कहता हूँ। शायद इसलिए मैं जयप्रकाश नारायण जी की स्पष्टवादी नीति से काफी आकर्षक हूँ। भले वह नीति हिंसा की ओर है पर उसमें Hypocrisy को भावना का अभाव तो जरुर है। वह हिंसा करती और उसको स्वीकार करती है, पर हम गांधीवादी हिंसा कर के भी उसको अहिंसा का ही जामा पहिनाना चाहते हैं। और अपनी को झोला ढोंग

में उसको छिपा कर उसकी नाना तरह की व्याख्या करते हैं। गांधीवाद के अधिकांश कार्य्यकर्त्ताओं को अहिंसा को ढोंग की ढोंग और साम्यवाद को स्पष्ट वादिता ही ऐसे दो दोष गुण हैं जो एक को समय के दौरान में गांधीजी के बाद जनता के सामने अप्रिय और दूसरे को प्रिय बनावेंगे। समय के प्रभाव के साथ साथ मेरा यह विश्वास नित्य दृढ़ होता जा रहा है।

सेन्ट्रल जेल, हजारीबाग

१८-३-४३

आज आठ बजे सवेरे रिहाई के लिए गेट पर बुलाया गया। चलते समय सब से भेंट की। वार्ड के गेट तक श्री बाबू, अनुग्रह बाबू, सत्यनारायण बाबू आदि सभी बन्दी पहुँचाने आए थे। चलते समय मैं करुण हो गया। अनुग्रह बाबू की आँखें भी छलछला आयीं! फाटक पर मुझे एक घंटा तक रुकना पड़ा। मेरी सभी चीज़ों की बहुत ही रुखाई के साथ तलाशी ली गयी। सभी किताबें देखी गयीं। डायरी और दो किताबें और पास नहीं थीं क्योंकि डायरी यही जेल में लिखनी शुरु की, और दो किताबें शरत बाबू को जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पुस्तकालय की थीं वहां उन्हें दे देने के लिए श्री छविनाथ पांडेय ने मुझे दी थीं। उनकी लेकर बड़ी बक झक हुई। अन्त में सहायक जेलर आए और उन्होंने पास करके ले जाने की आज्ञा दी।

चलते समय नलवा सुपरिनटेन्टडेन्ट ने अपने व्यवहारों के लिए क्षमा-प्रार्थना की। मैंने कहा "व्यक्तिगत रूप में मेरे साथ आप का कोई दुर्व्यवहार नहीं हुआ।

जेल से निकलते ही एक महाशय पीछा करते हुए सा ज्ञात हुए।

कुछ भय का संचार हुआ। सोचा,चलो फिर वापस ही होना होगा।" परन्तु थोड़ी ही देर के बाद वे सज्जन अपनी साइकिल दूसरी ओर घुमा ले गए।

मैंने अपनी रिहाई का सन्देश घर नहीं भेजा था। इसलिए कोई आदमी लेने नहीं आया था। छः मास पर जेल से निकलने पर कितना आनन्द मिला। दासता और परतन्त्रता कितनी बुरी वस्तु है। दस बजे रात को गया पहुँचा। वहाँ एक कांग्रेसी मित्र मिले रात को धर्मशाला में सोया। प्रातःकाल पटना की गाड़ी मिली। ग्यारह बजे पटना पहुँच कर सभी मित्रों के घर जाकर उन लोगों से सन्देश कहा। सर्चलाइट प्रेस में जाकर सहायक सम्पादक से मिला और उनसे जेल में किए गए अत्याचार की आलोचना कम से कम उस हद तक, जहाँ तक कानून नाजायज है, करने को कहा और जेल की दुर्दशा कह सुनायी। सब सुन कर उन्होंने अन्त में कहा, "क्या करूं? मैं विवश हूँ। जिस का पत्र है उसका आदेश यह है कि एक भी ऐसी बात न निकले जिससे पत्र या प्रेस पर आफत आने की अन्देशा हो। साधारण आलोचना तक की मनाही है। समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ। सम्भव है कि मुझे इस्तीफा देना हो। इस वातावरण में कैसे चल सकूँगा?।"

मैंने कहा, "आप के पत्र के मालिक तो राष्ट्रीय विचार के हैं?"

उन्होंने कहा, "लेकिन सम्पत्ति का विचार तो उससे भी आगे है।"

सन्ध्या समय की गाड़ी से घर के स्टेशन पर पहुँचा। रातों रात घर पहुँचा। ग्यारह बज चुके थे। भाई साहब से भेंट हुई। मुझे देख कर वे करुण हो उठे। मुझे भी करुणा आ गयी। बच्चों से

खूब लिपट-लिपट कर मिला। पत्नी को इतनी प्रसन्नता हुई कि उसका वर्णन नहीं कर सकता।

दलीपपुर, शाहाबाद,
१२—३—४३

आज दिन भर मिलनेवालों का ताँता बंधा रहा। स्कूल देखा तो उस की दशा बहुत बुरी थी। लड़के कम थे। आग लगा दी जाने के कारण भय से भर्तियां भी कम ही हुईं। पढ़ाई का काम भी अच्छा नहीं। सभी कागज पत्र जल गए हैं। बड़ी भारी क्षति हुई है। हमारी बहुत-सी पुरानी हस्तलिपियाँ जो कई पुश्तों से मेरी लाइब्रेरियों चली आ रही थी, उसी आग में जल कर राख हो गयी। यहां सुरक्षा के लिए उन्हें रखा था। अच्छी सुरक्षा हुई भूख की ज्वाला, नामक पुस्तक की भी ४०० चार सौ कौपियां जल गयी। फ़रनीचर आदि तो सब स्वाहा हो ही गए हैं। मकान में भी काफ़ी क्षति पहुँची है। यह सब दशा देख कर बड़ी वेदना हुई। अपनी कृति को अपनी आखों जलते देखने में जितना कष्ट नहीं हुआ था उतना आज इस क्षति को देखकर हुआ। अभीतक राखा को लोगों ने फेकने की हिम्मत तक न की थी। जो जो कमरे जल चुके थे, वे वैसे ही पड़े हैं। यह करतूत है हमारी सभ्य और संगठित अंग्रेज सरकारकी जिसका कहना है कि जर्मन बड़े असभ्य और बर्बर हैं कि स्कूल और अस्पताल पर बमगिराते हैं।

आरा
२८-मार्च ४३

आज प्रातः काल पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से स्कूल जलाए जाने के सम्बन्ध में बड़ी देर तक बातें हुईं। अन्दोलन पर बातें होते

समय उन्होंने स्वीकार किया" "मुझे मालूम है, आप आद्योपान्त अहिंसात्मक रहे।"

मैंने तब पूछा, "जब मैं अहिंसात्मक था तो मेरा हाई स्कूल पुलिस द्वारा क्यों जलाया गया?"

उन्होंने कहा-"वहाँ कॉंग्रेस का काम होता था।

मैंने पूछा, "मैं हर्जाने के लिए दावा करने वाला हूँ। आप लोग स्वीकार करेंगे कि ए० एस० पी० ने स्कूल जालाया?" उन्होंने कहा, "यह तो छिपी बात नहीं है। ए०-एस०-पी० ने लिखकर अपनी रिपोर्ट में दिया है कि मैंने दलीपपुर हाई स्कूल को जलाया। आप कलक्टर साहब से मिलिए। पर मेरा ख्याल नहीं है कि गवर्न्मेन्ट हर्जाना देगी।"

मैंने कहा, "मैं तो गवर्न्मेंट से माँगूगा नहीं। मैं तो दीवानी करूँगा।"

मैंने अंग्रेज कलक्टर से मिलना उचित नहीं समझा। सरकार का भाव तो इनकी बातों से ज्ञात हो चुका था।

२६ अप्रैल

१ मई पटना ४३

आज स्कूल का केस दिखाने केलिएपटना आया। एक जूनियर वकीलको लेकर प्रतिष्ठित कांग्रेसी सरकारी वकील से मिला। उनके सजे-सजाये कमरे में इतला कराकर जब पहुँचा तो आपने जरा भी ध्यान न दिया। जब वकील ने केस के मुतअलिक कहा तो "आपने मुझसे उसके सम्बन्ध में दो चार प्रश्न किये और कहा, आप बड़े बेवकूफ जो वकील को केस समझा कर नहीं लाये। मुझे फर्सत नहीं। जाइए समझा कर लाइए।"

मैंने कहा, "बेवकूफ तो जरूर हूँ कि कांग्रेसी वकील के पास

आया। नहीं जनता था कि यहाँ भी साधारण केस की तरह जूनियर की तैयार करना पड़ेगा। "

बस्ता बाँध कर जब दरवाजे पर पहुँचा तो आपने पूछा, "केस लड़िएगा। ठीक निश्चय है ? पहले क्यों नहीं ख़बर दी ?"

मैंने कहा, "जेल से ख़बर देने को भूल गया था। मैं सोचता था कि आपने ख़बर ले ली होगी। "

इस पर वे लजा-से गए। मैं बाहर निकलने लगा तो बोले, "को ` में मिलियेगा। वहीं कागज देखेंगे। "

मैं जब हाईकोर्ट गया। तो तीन घंटे के इन्तज़ार के बाद उनको फ़ुरसत मिली। वकालत खाने में जब पहुँचे तब एक वकील ने कहा, "अरे Indemnity act निकल गया है। उन्हें कुछ नहीं होगा। "

उन्होंने पूछा, "कहाँ है ? लाइए।"

वकील ने जब उसे लाकर उन्हें दिया तो आपने उसे पढ़कर चुपचाप टेबुल पर रख दिया। एक ने पूछा, "क्या है इसमें?"

उन्होंने कहा—"यही है कि इस सरकार के यहाँ चाहे जो करो न्याय नहीं है।"

फिर उन्होंने कागज-पत्र कुछ नहीं देखा। जूनियर वकील से कहा कि कुछ तत्व नहीं है लेकिन कस दायर करने के लिए आज्ञा पाने के वास्ते एक दरखास्त दिलवा दो उन्होंने यह भी नहीं बताया। कि कैसे और क्या दरखास्त दी जायगी [illegible] तीन कांग्रेसी वकीलों जब बातें हुई तो सबों ने कहा, "इसके साथ Plaint भी देना होगा और सबूत भी। उक्त प्रतिष्ठित कांग्रेसी वकील से लिखाइये। "

जूनियर वकील मसविदा (Plaint) लिखाने गए तो उन्होंने कहा, "किसी से लिखवा कर दे दो। या कह दो आप किसी से लिखा लेंगे।"

मैंने जूनियर वकील से कहा, "यदि वे फीस चाहते हो होतो फ़ीस तो दे सकता हूँ। उन्हीं से लिखवा दीजिये।

वे गये और लौट कर मुझसे बोले, 'फीस का सवाल नहीं। फ़ुरसत नहीं है।"

मैं अपना-सा मुँह लिए वापस आया। बड़ा दु:ख हुआ कि इतने बड़े आन्दोलन में आरा या पटना के अच्छे वकीलों में से किसी ने भी जरा देहातों में जाकर उन मुक्त भोगियों की खबर तक नहीं ली। उलटे जो केस आये उनकेलिए फ़ीस ली गयी। स्वयं उक्त प्रतिष्ठित कांग्रेसी वकील ही इस अन्दोलन के केसों में मेरे ही जिले में काफी रूपए फीस में लिये है। यह तो हमारे प्रान्त के वकीलों की दशा है। अन्य प्रान्तों के वकीलों के सार्वजनिक कामों का जब हम अपने प्रान्त के वकीलों के सार्वजनिक कामों से मुकाविला करते हैं, तो जमीन आसमान का अन्तर पाते हैं। पटना से आरा आया और अपने वकील को कागज दिखाकर फीस दे मसविदा plaint लिखने को कह कर घर आया। Indemnity act उस समय उन्हें लभ्य नहीं था इससे दूसरे समय में सब करने को कह कर मुझे लौट आना पड़ा।

दलीपपुर शाहाबाद

३ जुलाई, ४३

जबसे आया हूँ, कांग्रेसी फरार हर दूसरे-तीसरे आते हैं, खाते-पीते और बातें करके चले जाते हैं। मैं सबसे हाजिर होने, अहिंसा का पालन करने और हिंसात्मक कार्य्यावाही के प्रतिकूल प्रचार करने

की बातें समझाता हूँ। उनसे यह भी कहता हूँ कि हजारीबाग के गांधीवादी नेताओं की राय इस हिंसा के प्रतिकूल है। वे चाहते हैं कि ये बातें न हों। जो फरार हैं वे या तो हाजिर होजायें और यदि वे हाजिर नहीं होते तो रचनात्मक कार्य का प्रचार करें। विभिन्न अन्य दलों के लोग भी जो फरार हैं कभी कभी आजाते हैं। उनसे भी यही बातें होती हैं। एक दिन एक-दो युवक ऐसे भी आए थे जो छात्र-संघ के कार्य कर्त्ता थे और फरार का जीवन बिता रहे थे। उनसे भी यही वार्ता हुई। उन्होंने मेरे स्कूल के लड़कों से बात-चीत भी की पर उनमें से कोइ उनके साथ नहीं हुआ। मैंने उनकी वार्ता वगैरह में कोई अड़चन नहीं पैदा की। उनको गांधीवाद के वसूलों को खूब समझाया और वे बहुत परिवर्तित भी हुए। आज बाबू शिवपूजन राय, जो जिला कांग्रेस के सहायक मंत्री हैं, आकर मुझसे विशेष वार्ता किये। बहुत बड़ी बहस के उपरान्त उनसे अन्त में यहीं तय पाया कि कार्य कर्त्ताओं को अहिंसात्मक कार्यों को समझाया जाय और इसके लिए वे सब फरारों की एक सभा यहीं जल्द बुलावें। वे मुझको एक स्थल पर जिला भरके फरारों की होने वाली सभा में ले जाकर व्याख्या दिलवाना चाहते थे पर मैंने अपने वहाँ जाने में असमर्थता इसलिए प्रकट की। कि मेरे वहाँ जाने से बात गुप्त नहीं रह सकेगी। अतः उन्होंने आगामी ८ अगस्त के उपलक्ष्य में कार्यक्रम बनाने के लिए यहीं मिटिङ्ग करने का निश्चय किया। २६ जुलाई दिन ठीक करके वे चले गये।

दलीपपुर, शाहाबाद

२६ जुलाई १९४३

आज चार बजे सन्ध्या समय १५ बीस कांग्रेसी फरार और

दो-चार मुक्त कांग्रेसियों की मीटिङ्ग बाग के बंगले में हुई। मैंने उनको अहिंसा की बातें समझाइं और हाजिर हो जाने की अपील की। साथ ही यह भी बताया कि आठ अगस्त को अगस्त-दिवस मनाया जाय और उसी दिन सब फ़रार कलक्टरी पर झंडा फहराने के उद्योग में गिरफ्तार हो जायँ। मेरी राय सबों को मान्य हुई। पर चूँकि अन्य सबडिवीजनों के लोग नहीं आए थे, इस लिए ३१ जुलाई या १ अगस्त को फिर यहाँ दूसरी मीटिङ्ग करने का निश्चय हुआ। मीटिङ्ग, बरखास्त होने पर सभी लोग बाजार में भी गए। इससे बात कुछ प्रकट सी हो गई।

दलीपपुर

१ अगस्त, ४३

आज करीब ४० की संख्या में कांग्रेसी फरार निर्धारित स्थान पर आए कुछ मुक्त कांग्रेसी भी थे। उनमें दो-एक आदमी कांग्रेस सोशलिस्ट-ग्रूप के भी थे। जिला कांग्रेस के सभापति श्री सूर्य्यनाथ चौबे जो फरार हैं नहीं आये। अपने प्रतिनिधि द्वारा केवल सन्देश भेज दिया है। सभा हुई। हाजिर होने की बात का घोर विरोध हुआ। पर अन्त में बहुत बहसमुबाहसा के बाद तय हुआ कि ८ अगस्त को अगस्त-दिवस मनाया जाय और जो फरार हाजिर होना चाहें वे अन्य वालंटियरों और कार्यकर्त्ताओं के साथ उस दिन निश्चित समय पर कलक्टरी पर इकट्ठे होकर झंडा फहराने का प्रयत्न करें। स्थान वगैरह की सूचना मंत्री बाद में सब को दे देंगे। फिर भी जितने लोग थे उनको स्थान की सूचना यहीं दे दी गयी। कुछ लोगों ने हिंसा की बातें भी की। पर बहस के बाद वे भी अहिंसात्मक वसूलों पर काम करने को राजी हुए। फरारों की दशा

शोचनीय थी । ग्रामबासी उनको खिलाते-खिलाते थक गये हैं। कितने के पाँव में जूते तक नहीं थे। उनके घर की जायदाद मालमवेशी, जो कुछ पासकी थी पुलिस सब जब्त करले गयी है। कितनों के घरवाले भी घर से निकाल दिये गये हैं। उनके खेतों की लगी -लगायी फसल भी जब्त कर ली गयी है। धनिक-वर्ग जरा भी इनकी मदद करने की ओर ध्यान नहीं देता। उस दिन बाबू जगन्नाथ सिंह जो जिला बो० के कांग्रेसी वाइसचेयरमैन थे आये थे। उनके पिता काफी बड़े जमींदार हैं। उन बेचारे की दशा देखकर मुझे तरस आयी। मैंने उन्हें हाजिर होने की राय दी। एक समय एक गाँव में तो दूसरे समय दूसरे गाँव में नित्य फिरा करते हैं। कहीं भी दो दिन जमकर ठहर नहीं सकते। कपड़े-लत्ते सब मैले थे। चलते-चलते पाँवों में फोले पड़ गये थे। ऐसे ही बलिया जिले के भी दो-एक अच्छे धनिक जमींदार अपना जीवन इसी जिले में व्यतीत कर रहे हैं। कई बार मेरे यहाँ भी आये और ठहरे।

दलीपपुर

४ अगस्त ४३

आज सन्ध्या समय स्कूल के सामने वाले खण्ड में खड़ा था। सब्जी जो बोई गयी थी उसे देख रहा था। मास्टर लोग स्कूल बन्द कर के बरामदे में बैठे हुये बातें कर रहे थे। इतने में एक मिलिटरी लौरी आठ सशस्त्र सिपाही, कलक्टर, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा दो-चार और पुलिस अफसरों के साथ आकर स्कूल के सामने सड़क पर खड़ी हो गयी। उसमें से एक आदमी उतर कर गाँव की ओर बढ़ा। लौरी मुझसे दस बीस गज की दूरी पर खड़ी थी। बीच में खांई जरुर थी पर हम लोग बिल्कुल आमने सामने थे। मैं तो

पहली तारीख से ही सोच रहा था कि कोई आफत आवेगी। समझ गया कि मेरी गिरफ्तारी केलिए यह तैयारी है। मन में एक बार हुआ कि चलो यहीं से चल चलें। फिर दूसरे क्षण पुत्र की बीमारी और कन्या का विवाह तथा अन्य घरेलू बातें और मुकदमे आदि आँखों के सामने खड़े हो गये। एक-दो मिनट तक उन लोगों की ओर पीठ किये यह सोचता रहा कि अब क्या करें ? कुछ निश्चय नहीं कर सका, पर तब भी इतना तो निश्चय अवश्य कर लिया कि इस समय निश्चय करने के लिए समय जरुर लेना चाहिये। अतः अभी सामने से हट चलो। बस इस विचार के आते ही खण्ड के फाटक से निकल कर उनके सामने से होकर बाजार के फाटक में घुसा। उसी समय गाँव के एक आदमी ने आकर धीरे से कहा "दारोगा जी आप के मकान का रास्ता पूछ रह थे और पूछ रहे थे कि आप घर पर हैं कि नहीं ?"

मैं सब समझ गया। फौरन दूसरे रास्ते से होकर धान के खेतों के मैदान में निकल गया। सर से टोपी भी उतार कर हाथ में ले ली। जब देखा कि लोरी स्टार्ट होकर मेरी ड्योढ़ी की ओर जाने लगी और उसके और मेरे बीच का फासिला केवल २०० गज के करीब का है तब मैंने उनकी नजर से बचने के लिए कुर्ता भी निकाल कर कंधे पर गमछे की तरह रख लिया और धोती समेट कर काछे की सूरत में कर ली ताकि दूर से खेत में घूमता हुआ किसान मालूम होऊँ। लौरी तो दरवाजे पर गयी और मैं तेजी से नहर की ओर बढ़ा। रास्ता ऐसा लिया कि कोई देख न सके और ईख ओट पड़ती जाय। मकान से करीब दो फर्लांग पर जाकर एक बाग के पास ईखके एक खेतमें घुस कर बैठ गया और अपना कर्त्तव्य.-कर्त्तव्य

निश्चित करने लगा। एक ओर कायर की तरह भागना अपने गांधीवाद को शोभा नहीं देता था और दूसरी ओर पुत्र को थाइसिस की बीमारी और कन्या का विवाह रह-रह कर रुकने के लिए अपील कर रहे थे। दिमाग में तूफान सा उठा हुआ था। थोड़ी देर तक सोचते रहने के उपरान्त निश्चय किया कि चलो, हाजिर ही हो जायँ। कुर्ता पहना, सर पर टोपी रक्खो और दस कदम चला भो। फिर भीतर से हृदय में प्रश्न हुआ, रुग्ण बालक को किस के ऊपर छोड़ जाते हो? कुछ बुरा होतो जन्म भर के लिए अफसोस नहीं मिटेगा। आज भी तो सैकड़ों गांधीवादी फरार हैं। कुछ दिन ठहर क्यों नहीं जाते?" ऐसा मालूम हुआ कि भीतर से कोई चेतन-शक्ति, जो मुझसे अधिक समझदार है, समझा-समझा कर मुझे उपदेश कर रही है। पुनः कुर्ता निकल गया। टोपी टेट में खोंसी और डंडा कंधे पर रखकर नहर की ओर रवाना हुआ। दो सौ गज पर नहर छाती भर पानी के साथ तीव्रगति से बह रही थी। बाँध पर से नीचे उतरा और दोनों नहरें पार करके उसपार सुदूर की अमराई में जा छिपा, रास्ते में मिल गये स्कूल के एक मास्टर। उनको भी साथ ले लिया। उन्होंने भी कुर्ता निकाल कर किसान का रूप बनाया। मेरी धोती भींग गयी थी। फिर भी लौरी के जाने के इन्तजार में बैठा रहा। यह अमराई भी सड़क से दूर नहीं थी। करीब २००—३०० गज की दूरी पर होगी। वापसी में लौरी उसी तरफ से जाती। अतः हम को उससे भी सावधान रहना था। करीब दो घंटे तक इन्तजार करता रहा। इसके बाद लौरी की घर्राहट सुनाई पड़ी। हमलोग सजग होगये। लौरी जब पास से गुजरने लगी तो मास्टर महाशय एक पेड़ की आड़ में जमीन पर लेट गये। मैं पहले से एक बड़े

मोटेपेड़ के पीछे बैठा था। मास्टर को उस दशा में देख कर मुझे हँसी आ गयी। मैंने हँसी में कहा, "सिपाही ऐसे लेटगये। मानो बन्दूक होती तो आप निशाना लगाने से नहीं चूकते। वे भी हँसने लगे। फिर लौरी के चले जाने पर मास्टर को घर यह जानने केलिए भेजा कि वे कौन थे और क्यों आये थे। एक दो घंटे के बाद जब रात काफी बीत चुकी थी, मास्टर महोदय लौट कर आये। लालटेन भी नौकर ने साथ लायो थी। ज्ञात हुआ कि कलक्टर एस. पी० दारोगा, और डी० एस० पी० थे। आठ सिपाही भी थे। पहले मेरे बारे में पूछा, "कहां हैं ?" फिर कहा कि यहाँ कांग्रेस की मीटिङ्ग की जाती है। और जब मेरे टहलने जाने की बात सुनी तो फौरन अपनी मीटिङ्ग; करने पर आमादा हो गये। मतलब यह था कि मुझे चौकन्ना न होने दें। यदि इसी बीच मैं पहुँच गया तब तो उनका पौ बारह रहेगा अन्यथा दूसरे समय फिर धावा किया जायगा। गाँव से लोग चौकीदारों द्वारा पकड़-पकड़ कर बुलाये गये और तीस चालीस आदमियों के सामने कलक्टर का लेकचर हुआ। फिर जाते समय कांग्रेस की मीटिङ्ग वैगरह वहाँ नहीं होने देने का सख्त हुक्म हुआ। रात को मैं घर पर तो सोया, पर चौकन्नाजरुर रहा।

दलीपपुर,

५ अगस्त, ४३

आज इस प्रान्त को छोड़ कर युक्तप्रान्त में जाने के लिए मैं तैयार हो गया। राजरोग होने की शंकासे डाक्टर ने लड़के को भी वायुपरिवर्तन के लिए उधर जानेकी राय दी थी। अतः लड़के को लेकर शाम की गाड़ी से चल दिया। रास्ते में एक कांग्रेसी वालंटियर से मंन्त्री के पास सन्देशा भेज दिया कि मेरी गिरफ्तारी आयी थी। मुझे लोग नहीं

पासके। आज मैं लड़के को लेकर इलाज कराने जा रहा हूँ।

अज्ञात वास

६ अगस्त, ४३

आज से मैं अपने निवास का स्थान सांकेतिक रूप से ही लिखूँगा जो दूसरा न जान सके। कारण यह है कि व्यक्तियों के और स्थानों के नाम दे देने से मैं अपने उन अनुभवों को जो उनके खिलाफ है व्यक्त करने में संकोचवश लाचार हो जाऊँगा। फिर यह भी सम्भव है कि उन पर भी शायद कुछ जवाल आये। और हमारा मेजबान मेरी खातिर आफत में पड़े। अतः ऐसा निर्णय करना मैंने उचित समझा है। लड़के की खाँसी और बुखार यात्रा के कारण फिर शुरू हो गये।

अज्ञात वास

१४ अगस्त, १९४३

आज सात आठ दिनों से मेरे पुत्र को फिर बुखार होने लगा है। जो डाक्टर इलाज कर रहे हैं उन्होंने आज कहा, "बड़े डाक्टरों ने जो इसका फेफड़ा कमजोर होने की बात कही है, वह मालूम होता, सही है। क्योंकि खाँसी भी है, बुखार भी कम नहीं हो रहा है। खयाल था कि मलेरिया है, पर अब यह भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह निदान सही है। एक मेरा केस ऐसे ही मलेरिया के सुबहे में राजयक्ष्मा का शिकार बन गया। इसलिए कहता हूँ कि आप बड़े डाक्टरों से इनको एक बार फिर दिखा कर निदान ठीक करा लें तो इलाज यहाँ भी हो सकता है। डाक्टर तो यह कह कर चले गये। मैंने डाक्टर के इस कथन को यहाँ जिस कुटुम्ब के यहाँ ठहरा था, उनसे कहा और किसी अच्छे

डाक्टर से दिखाने का सुझाव दबी जबान से पेश किया। उन्होंने उस व्यक्ति को सुना कर, जो एक दूसरी जगह से आया था और हम लोगों को पहचानता था, इस ढंग से बड़े आश्वासन के शब्दों में डाक्टर बुलाने का आदेश दिया कि वह समझ जाय कि हमलोगों का सारा खर्च वे ही देते हैं। इस बात से मेरे आत्मसम्मान को चोट लगी। पर करता क्या ! विरोध करना भी ठीक नहीं था विवशता सब कराती है। चुप हो रोगी की सेवा में लग गया। रात-रात भर अकेले जग कर देखने और सेवा करने का काम बड़ा ही कठिन था। फिर भी सेवा करने लगा हूं। पर सबसे बड़ी कठिनाई थी दूसरे के घर में रहने की। सब चीजों के लिए पराश्रित रहना है। किसी बात की कमी न होने पर भी नौकर-चाकर मेरे मन के माफिक समय पर जो समान नहीं पहुँचाते। इसमें मेजबान का लेश मात्र भी दोष नहीं है। फिर अपनी भी तबीयत खराब होने लगी है। कुछ बुखार भी रात में ज्ञात हुआ। इन सब बातों से चिन्ता आज विशेष बढ़ गयी है। ईश्वर ने सन्तान-प्रेम भी क्या गजब की चीज मनुष्य को दे रक्खी है। रह रह कर चित्त व्याकुल हो उठता है।

अज्ञातवास,

१६—८—४२

आज तीन चार दिन बीत गए। पर बड़े डाक्टर को मेजवान ने कहकर भी शहर से नहीं भेजा। मेरी चिन्ता सीमा को पार कर रही है। मुझे भी दो दिन से बुखार आने लगा है। फिर अपने होनहार पुत्र के स्वास्थ्य की यह गिरी दशा देखकर तथा उसके उपचार में अपनी बेबसी समझ कर रह रह कर वृश्चिकदंश की तरह टीस हृदय में उत्पन्न हो रही है। एक ओर अपना वात्सल्य, प्रेम दूसरी ओर पुत्र

को राज्य यक्ष्मा होने की शंका और उसके ऊपर दूसरे के घर में बिना नौकर-चाकर के निवास करने की अपनी मजबूरी, फिर, पाकेट में पैसे का अभाव मन की शान्ति को रह रह कर भंग कर देते हैं। फिर राजयक्ष्मा की छूत की बीमारी होने पर दूसरे के घर में जहाँ उनके परिवार के सभी रहते हैं, अपने निवास करने का संकोच अलग परेशान कर रहा है। उसपर उचित उपचार का अभाव तो हृदय को रह रह कर ऐसा दुःखी बना देता है कि जी चाहता है कि अभी उसे लेकर किसी शहर में चला जाऊँ पर खर्चे का प्रश्न गोखरू-गड़े हाथी की तरह मुझे यहीं रोक रखता है।

अज्ञातवास

१७—८—४३

आज मेरा बुखार छूटा। पर पुत्रका बुखार ज्यों का त्यों ही है। इधर बड़े डाक्टर को कौन कहे, छोटे डाक्टर भी नहीं आये। दवा लाने भी कोई शहर नहीं जा सका। पुत्र मेरी व्यग्रता को देखकर अपनी पीड़ा को प्रकट नहीं करता है। हमेशा जब पूछता हूँ, तब अच्छे होने की ही बात कहता है। पर उसकी चेष्टा से मैं साफ समझता हूँ कि उसके मनमें भी बीमारी की भयंकरता कंपन कर रही है और वह अपने जीवन से निराश-सा हो रहा है। पर मेरे प्रेम को देखकर, मेरे घबड़ाने के डर से स्वस्थ होने का स्वाँग करना चाहता है। उसकी यह क्रिया मेरे हृदय को मथ डालती है। ऐसे तीक्ष्ण बुद्धि और होनहार प्रिय पुत्र की यह जत्ती और पितृ-भक्ति देखर मैं और विकल हो उठता हूँ। आज की गाड़ी से जब बड़े डाक्टर नहीं आये तो छोटे डाक्टर की बातों को सोंच कर मैं घबड़ाहट की अथाह धारा में बहने

लगा। कहीं से भी कोई आश्रय दिखाई नहीं पड़ा, मेजबान के घर के सभी लोग अपने काम से बाहर गये हैं। नौकर चाकर से कुछ कहना व्यर्थ बात गँवाना है। सन्ध्या समय टहलने गया तो रास्ते भर ईश्वर से प्रार्थना करता और रह रह कर रोता रहा। निराधार होकर संकल्प भी किया कि अब ईश-प्रार्थना के अतिरिक्त मानव सहारे की आशा छोड़ दूँ। घर आकर "शरणागत दीनार्थ परित्राण परायणे सर्वस्यर्ति हरे देवि! नारायणि नमस्तुते" वाला-दुर्गा शप्तपदीका मंत्र जपना प्रारम्भ किया। इतना दीन, आर्त और विह्वल होकर प्रार्थना और जप किया कि १००० के जप में बीसों बार रोयी उस समय देवी की कल्पित मूर्ति आँखों के सामने दिखायी पड़ी और मैंने उनसे रो-रो कर पुत्र की नीरोगता के लिए प्रार्थना की। रोने या प्रार्थना के प्रभाव से या अपने पर ही एक मात्र आशा निरूपित करने के कारण मन में ऐसी शान्ति अनुभूत हुई और सब प्रयत्नों को ईश्वराधीन छोड़ कर अनाशक्ति की ऐसी भावना भीतर जाग्रत हो उठी कि उससे मन की सारी विकलता और व्यग्रता नष्ट हो गयी। एक विलक्षण तरह से उत्कट सहन-शक्ति की सत्ता भी भीतर अनुभूत होने लगी। सब ईश्वर पर छोड़कर मैं निश्चिन्त हो गया। प्रयत्न करते-करते थक कर जब हम पौरुष हार जाते हैं और अपने पास कोई चारा नहीं रह जाता तब सब कुछ सहन करने का जैसा उत्कट, दृढ़ता मिश्रित भाव हृदय में उत्पन्न हो जाता है वैसा ही भीतर अनुभव होने लगा। १००० जप खतम करके जब सर पटक कर देवी की कल्पित मूर्ति को नमस्कार किया और पुत्र की चारपाई के पास जाकर देखा तो वह सो रहा था। मैं भी बिना खाये बगल की चारपाई पर जा लेटा और निश्चिन्त हो सो गया।

अज्ञात वास

१८-८-४३

आज प्रात:काल उठा तो पुत्र का बुखार उतरा था। मन भी अच्छा था। बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी आस्था और श्रद्धा भी प्रार्थना और जप पर खूब बढ़ी। अब दोनो समय जप और प्रार्थना करना शुरु किया। पर वह तल्लीनता, वह दीनता और वह आर्तता हृदय में नहीं उत्पन्न हुई जो कल की प्रार्थना में पैदा हुई थीं। सन्ध्या समय एक डिग्री बुखार बढ़ा पर वह भी तुरत उतर गया। मेजबान भी आये और उन्होंने बड़े डाक्टर को न बुलाये जाने का कारण बताया कि बड़े डाक्टर ने हालत सुनकर कहा है कि जाने की जरूरत नहीं है। बुखार खुद उत्तर जायगा। मियादी बुखार है। यह कथन विश्वसनीय तो था नहीं। पर तब भी बुखार उतरने की बात तो प्रत्यक्ष सही थी। मेजबान ने समझा होगा, कितना नपा-तुला सही जबाब दिया। पर मैंने उनके इस नपेतुले जबाब को सुन करके भी यही निश्चय किया कि बुखार उतरने का कारण बुखार की मियाद नहीं बल्कि देवी की सहायता है।

अज्ञातवास।

१६-८-४३।

आज एक विलक्षण बात घटी। मेजबान महोदय ने कहीं से आये हुए एक कांग्रेसी फरार से मुझ को मिलने को कहा और यह ताकीद की कि बातों ही बात में मैं उसे टटोलूँ कि वह आन्दोलनके कार्यों के सम्बन्ध में कुछ जनता है या नहीं। लेकिन जब उन्होंने मुझे उनसे मिलाया तो ऐजा परिचय दिया कि मैं सुन कर दंग हो गया। कहा कि मैं बिहार से राजेन्द्र बाबू का भेजा हुआ सन्देश लेकर उनके पास

आया हूँ।" वह बिलकुल मिथ्या बात थी। मेरा यह फर्ज था कि उसका खण्डन करता। पर अपना बुद्धूपन कहूँ या मेजबान को बुरी स्थिति में न डालने का विचार कहूँ, किसी कारण वश मैं वैसा न कर सका। फिर इसके बाद मेजबान महोदय ने डींग हाकनी शुरु की। कहा, "मैं अभी युक्त प्रान्त के बड़े नेताओं से मिल चुका हूँ। वे मुझे बम्बई भेजना चाहते हैं। जाना ही होगा। देखें कहाँ कहाँ जाना पड़ता है और लौट कर क्या क्या करना पड़ता है!" परन्तु ये सब बातें आधार हीन थीं। इनमें असलियत शायद कुछ नहीं थी। मुझे इस मिथ्याचरण से बहुत आघात पहुँचा। पूँजीवाद कितने मिथ्या चरणों से भर गया है, इसका यह ज्वलन्त उदारण है। बेकार ढोंग लोग खाली बातों के सहारे क्यों बनाना चाहते हैं? बालू की भीत कब तक खड़ी रह सकती है? फिर ऐसी बातें तो आचरण से सम्बन्ध रखती हैं और आचरण बालू की नीव पर नहीं खड़ा किया जा सकता। आज सन्ध्या समय एक मित्र ने कहा—"sow an act and reap a habit; sow a habit and reap a character, and sow a character and reap a destiny". "काम का बीज बोओ और आदत की फसल काटो। फिर आदत का बीज बोओ चरित्र की उपज काटो। और अन्त में चरित्र का बीज बोओ और भाग्य की फसल काटो।" मित्र का यह कथन सुन कर मैं गद्‌गद् हो उठा। जी चाहा की मेजबान से इसको कह सुनाऊँ। पर धनी आदमी सारी बातें सुनना पसन्द नहीं करते। फिर मैं जो इस दुर्दिन में उनका शरणागत हूँ।यह उन्हें क्यों अकारण दुःख पहुँचाऊँ।

अज्ञातवास।

२२, २३-८-४६

अब लड़का स्वस्थ होने लगा है। ताकत भी आने लगी है। पर आज ही मेजबान ने कहा 'एक विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि तुम्हारे नाम वारंट २६ A (D. I. R.) आडिनेन्स की दफा में जिला शाहाबाद से इस स्थान में आया हुआ है। पुलिस कल ही तुम्हारी गिरफ्तारी के लिए यहाँ आयगी"। मैं तो इस सूचना से सन्न हो गया। प्रिय पुत्र की बीमारी की दशा और अपना प्रेम जिसका वर्णन अभी ऊपर कर चुका हूँ, एक ओर-और दूसरी ओर अपने देश के प्रति कर्तव्य और उसका अटूट प्रेम, फिर घर की अन्य व्यवहारिक और आर्थिक अड़चनें और कठिनाइयाँ तथा कन्या का विवाह ठीक और सम्पन्न करना, ये सभी बातें अपने पक्ष की दलीलों का दल साथ लेकर मेरी आँखों के सामने एक के बाद एक आने लगीं। और मैं उनके पक्ष विपक्ष की सभी बातों को सोच सोच कर अपना कर्तव्य निश्चय करने में अनिश्चित-सा होने लगा। दूसरे कांग्रेसी दोस्तों तथा कुटुम्बियों से इस विषय पर बातें हुईं। पर सबों ने यही कहा कि इस कठिन समय में गिरफ्तार होना उचित नहीं। इस समय हट जाना ही उचित है। मेजबान ने भी यही राय दी और समझाया कि इन कठिनाइयों के हल हो जाने के बाद ही हाजिर होना हमारे लिए हितकर होगा। यद्यपि मैं भी अपनी कठिनाइयों और सन्तान मोह तथा कन्या के विवाह के कारणों से इस समय फरार होना ही अपने लिए श्रेयस्कर मानता हूँ परन्तु तब भी रह रह कर हृदय में ऐसा मालूम होता है और वहाँ कोई रह रह कर कह जाता है कि मैं इस निश्चय में कहीं गलती कर रहा हूँ और उसको सुधारना मेरा

परम कर्तव्य है। परन्तु इतना होने पर भी मैं इस निश्चय को न बदलने के लिए केवल अर्थाभाव के कारण आज विवश हूँ। आज मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है कि जिस निर्धन मनुष्य को इस अर्थ प्रधान समाज में आज देश-सेवा का व्रत लेना हो उसका सर्व प्रथम कर्तव्य यह है कि ऐसी प्रतिज्ञा करने के बहुत पूर्व वह अपनी घर गिरस्ती को त्याग करके संन्यास ले ले या उसके निर्वाह के लिए प्रचुर धन संचय कर जाय। विना इसके कोई भी देश-भक्त निश्चिन्त मन से देश-सेवा नहीं कर सकता और न कष्टों को प्रसन्न मन सह सकता है।

यदि वह यह न कर सके तब उसे चाहिये कि अपने सम्पूर्ण परिवार को इसी फाकेमस्ती के रंग में रंग डाले तभी तो वह देश सेवा कर सकेगा अन्यथा दो विरोधी बोझों को सिर पर लाद कर वहन करने की चेष्टा में उसके मन की शान्ति दो दिशाओं में सदा खींचती रहेगी। और चिन्ता एक क्षण के लिए भी उसका पिण्ड नहीं छोड़ सकेगी। एक परिवारवाले व्यक्ति के लिए जो अपनी इज्जत मर्य्यादा और रखरखाव को समाज में बनाये हुए हैं और जिस के ऊपर एक दो दर्जन आश्रित परिवार के भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, दवा-दारु, शादी-विवाह का भार लदा हुआ है और जो घर की खेती बारी को चला कर या नौकरी तिजारत करके ही उनकी इन आवश्यकताओं की पूर्ति अपने डील के एक मात्र परिश्रम से करता है, दो-दो तीन-तीन वर्षों तक कारागार में रहना और इन आश्रितों को रास्ते का भिखारी बना देना कितना कष्ट साध्य, कितना दुखद और धैर्य को विचलित करनेवाली चीज होती हैं। यहीं ऐसे ही समयों में उसके धैर्य और देश-प्रेम तथा और सिद्धान्त-प्रेम की उत्कट परीक्षा होती है और ऐसे अवसरों

पर ही बहुत लोग अपने कर्तव्य से फिसल भी जाते हैं। यह सत्य है कि आपत्ति ही मनुष्य की मनुष्यता और धैर्य की कसौटी है पर इससे उसके परिवार वालों को जो अपने विश्वास के प्रतिकूल अकारण दुःख भोगना पड़ता है यह निर्बल हृदय को भाव-न्याय संगत नहीं जँचता। अपना वह धनी समाज जो राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त है न तो ऐसा सम्पन्न है और न ऐसी उसकी भावना ही है कि इन निराश्रित परिवारों को उसी रख-रखाव के साथ या कम से कम उचित मान मर्यादा के साथ पालन पोषण कर सके जिस से उस भुक्त भोगी को कारागार में शान्ति और निश्चिन्तता मिले तथा उसके परिवार वालों के आत्म सम्मान को धक्का न लगे। जब कोई धनी-मानी सम्बन्धी या मित्र ऐसों को या उसके परिवार वालों को कभी कभी कुछ सहायता करते भी हैं तो वह इस बुरे ढंग से करते हैं कि उस सहायता को उस मनस्वी परिवार को ग्रहण करना मरण कष्ट के समान दुःखद हो जाता है। अभी कल की बात है कि भारतीय इतिहास की रूप-रेखा के लेखक श्री जयचन्द विद्यालंकार की शिक्षिता धर्मपत्नी को जिनका एक मात्र लड़का पैसे के अभाव में पढ़ाई छोड़ बैठा है, और वे खुद काशी में फाका कर रही हैं भदन्त आनन्द कौशल्यायन के कहने पर एक धनी सेठाइन ने जब डाक से सहायता के रुपये भेजे तब उन्होंने उसे ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया। बात यह है कि धनिक के ऐसे दानों में वास्तविक सहायता या सहानुभूति का भाव नहीं रहता। वहाँ या तो दान देकर स्वर्ग-प्राप्ति या देश में यश लाने की भावना रहती है या कांग्रेसी राज के समय इस दिये हुए दान से लाभ उठाने की इच्छा इसलिए अपनी रंच मात्र की ऐसी सहायता को गोप्य न रख कर वे ढिंढोरा पीट कर सर्वत्र विज्ञापन

करते फिरते हैं। इसका प्रभाव मनस्वी व्यक्तियों के परिवार पर इतना कटु पड़ता है कि वह इस स्वार्थ और दम्भ पूर्ण तथा सहानुभूति रहित दान को ग्रहण करने की अपेक्षा भिक्षाटन करना अधिक उचित समझता है। ऐसे दाता गण किसी दार्शनिक के इस कथन का अर्थ कदापि नहीं समझते कि औदार्य का मूल्य वहीं नष्ट हो जाता है जहाँ उसमें दूसरे पक्ष के आत्म-सम्मान का विचार लोप हो करके अपने निजी यश की भावना जाग्रत हो उठती है।

तो देश की इस अवस्था में सन् ४२ के आन्दोलन के देशभक्तों के कष्टों और त्यागों और उनके परिवारों की अधिक यातनाओं की गणना करते समय किसी भी हृदय रखने वाले का कलेजा दहले बिना नहीं रह सकता। तभी तो जवाहर लालजी ने अपने प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन में इस बात पर जोर दिया था कि ऐसे देश सेवकों को कांग्रेस को अधिक सहायता देनी चाहिये।

तो यही कारण था कि मैं अपने परिवार को ऐसी कठिनाइयों का सामना करने के लिए छोड़ने का साहस न कर सका। और दारोगा के आने के पूर्व ही मेजबान के यहाँ से हट कर फरारी जीवन में भी परिवार को यथा शक्ति ऐहिक सहायता करने के पक्ष में अपना निर्णय किया। शायद इस निर्णय को कुछ योग इस बात से भी मिला कि आज कल फरार रहना अधिकांश कांग्रेस कर्मियों के लिए नीतित: मान्य हो गया है। पर प्रश्न यह है कि मैंने इस नीति का लाभ तब क्यों नहीं उठाया, जब २०० सशस्त्र अंग्रेज सिपाहियों ने मुझे पकड़ने के लिए मेरे घर पर धावा बोला था और जब कांग्रेस जनन के गोली से मार दिये जाने की अनेक खबरें भी सर्वत्र फैली हुई थीं। जब पल्टन के धावे की खबर मिली और

दर्जनों कांग्रेस कर्मी अपने यहाँ से अपनी आँखों के सामने हुई ही तक नहीं बल्कि मुझे भी हट चलने के हेतु प्रलोभन देने लगे तब मैंने उसे क्यों स्वीकार नहीं किया और क्यों अपने प्राणों की बाजी सिद्धान्त का हवाला देकर खेल डालना उचति समझा ? परन्तु जब उस समय अपने को गिरफ्तार करा देने और अब फरारी जीवन व्यतीत करने के दो विरोधि निर्णयों का सिंहावलोकन करता हूँ तब यही निश्चय निकलता है कि दोनों समय के विरोधी निर्णयों के पीछे अपने तथा अन्यों के परिवारों की भावी बरबादी से बचाने की भावना ही अधिक प्रबल रूप से शायद वहा काम कर रही थी सिद्धान्त की बात नहीं। सिद्धान्त-प्रेम की बात इस परिवार-हित की भावना में यदि प्रत्यक्ष रूप से विरोध करती होती तब सिद्धान्त-प्रेम जीतता या परिवार–प्रेम यह कहना इस समय मेरे लिये कठिन है। यह तो आत्म परीक्षा की बात है। और बिना परीक्षा के ही उसका फल बताना कठिन है।

अब प्रश्न उठा अपने पुत्र-स्नेह का ? यहीं अपने कर्तव्यविचार की जीत हुई। इतनी रुगणावस्था में अपने चौदह वर्ष के बच्चे को बिना किसी निजी परिवार के, केवल कुटुम्बियों के भरोसे, जहाँ सभी काम नौकरों द्वारा होते हैं, छोड़कर मैं कैसे चला जाऊँ ? यही प्रश्न बार-बार चित्त में उठने लगा। बच्चा आद्योपान्त यही तर्क करता रहा कि आप मेरी चिन्ता न करके निश्चिन्त हो यहाँ से हट जाँय, पर मैं बार-बार मोह में पड़कर यही सोचता कि बच्चे को किस जगह और किस को सौंप कर मैं निश्चित हो पाऊँगा ? मेजबान बार-बार आश्वासन देकर बच्चे की देखभाल की सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले रहे थे। इससे मन उनकी बातों पर विश्वास

तो कर लेता पर तुरत शंका भी करने लगता कि देख-भाल तो इन्हीं नौकरों के जिम्मे न रहेगा जो आज मेरे सामने पानी तक देने में टाल मटोल करते हैं। फिर भी विवशता एक ऐसी वस्तु है जिसके सम्मुख सब को नतमस्तक होना पड़ता है। विपत्ति जब तक आई नहीं रहती तभी तक मनुष्य उससे डरता है। जब वह सन्मुख आकर खड़ी हो जाती है, तब उसे उससे लड़ने के लिए विशेष बल का जाने कहाँ से प्राप्त हो जाता है और तब उसके हृदय का सारा भय जाता रहता है। यही दशा मेरी भी हुई। मैंने छाती पर पत्थर रख करके भरे कण्ठ से बच्चे को मेजबान को सौंपा और मेजबान तथा बच्चे से सजलनेत्र विदा ली। अपना गंतव्य स्थान क्या होगा, इसका निर्णय कुछ नही किया। पहली गाड़ी जो मिली, उसीमें बैठ गया।

'यात्रा'

ता० २३-८-४३ से

३०-८-४३ तक

ट्रेन में सोचता रहा कि अब कहाँ जाऊँ और जीवन कैसे व्यतीत करूँ? साथ में रूपये कुछ अधिक नहीं कि किसी शहर में ही रह कर पठन पाठन तथा लेखक का काम करूँ। सोचा, "कहीं सुदूर देहात में निकल चलूँ और वहीं जन-सेवा करके कुछ रचनात्मक कार्यक्रम का प्रयोग करूँ जिससे फरार-जीवन की सार्थकता तो सिद्ध हो। वहीं से शादी का जोगाड़ भी करूँगा। पर प्रश्न उठा जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? कौन अपने यहाँ एक अपरिचित को इस समय, जब दमन करने के लिए सर्वत्र सी० आइ० डी० घूम रहे हैं, स्थान देगा।" इस प्रश्न के उत्तर में हृदय के भीतर से तुरन्त ही

आवाज आई, "सेवक को सेवा खोजने की भी कहीं जरूरत पड़ती है ? इस प्रश्न में ही तो सेवा-भाव की कमी है।" सोचा, "मिर्जापुर चल कर विन्ध्याचल-देवी का दर्शन ही पहले क्यों न करलूँ ? दिल जब भरा रहता है, तब अपनी संस्कार जनित आस्तिकता के शरण में मनुष्य तुरन्त भागना चाहता है। मैं, जन्म का देवी पूजक हूँ इस विपत्ती के दिनों में प्रथम-प्रथम उन्हीं को याद किया। विन्ध्याचल पहुँच कर गंगा-स्नान के बाद देवी का दर्शन किया। उनसे नाना तरह के वरों की याचना करके धर्मशाला में डेरा डाला। तीन दिन बीत गये। जी ऊबने सा लगा। चौथे दिन जब स्नान कर रहा था तो दस-पाँच पासियों (बहलियों) को भोजपुरी में शिकार की वार्त्ता करते सुना। उनमें जो एक मुखिया था वह पढ़ा लिखा तो था नहीं पर अपने पेशे का पूरा जानकार ज्ञात हुआ। उसका प्रभाव उसके साथियों पर अच्छा था। मैं उधर आकर्षित हुआ। भोजपुरी में नाम गाँव आदि पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे डालटेनगंज के निकट के एक गाँव के निवासी हैं। यहां देवी के दर्शनार्थ आये हैं। बातों ही बातों में मैंने उस गाँव, के सम्बन्ध में सब बातें जानलीं और उनको अपनी सेवा अर्पित करने के अनूकूल समझा। मुखिया का नाम कवलेसर पासी था। पासी हटा कर उसके स्थान पर मैंने राम शब्द का प्रयोग करना अच्छा समझा। उनको उस रात रहने के लिये स्थान की आवश्यकता थी। मैंने उनको अपनी धर्मशाला में रहने के लिए आमन्त्रित किया। हम लोगों ने दो तीन दिन तक सर्वत्र घूम-घूम कर आसपास के दर्शनीय स्थानों का दर्शन किया। चलने के दिन कवलेसर राम ने कहा, "मालिक, हमनी के गाँवें आपन चरन-धूरि ना गिराइबि ?"

मैंने कहा—"काहे ना जबे बोलाइब तबे आइब। आइब त कुछ सेवा भी करबि। हमार कामे तोहनी अन लोगन के सेवा करना ह!"

बस उसी क्षण मैं आमन्त्रित हुआ और मेरे बिस्तर-बक्स उनके कंधे पर उठे।

'पसिया के टोला' जाने के लिये हमें डालटेनगंज से नदी पार कर पहाड़ी पर तीन मील चल कर एक बड़े पहाड़ के नीचे उतर जाना पड़ा। नीचे छोटी पहाड़ी थी। उसके समतल पर सौ घर का एक गांव था। सब पासी के घर थे। ये पासी युक्तप्रांत के पासियों से भिन्न जाति के हैं। इस जाति को युक्तप्रांत में बहेलिया कहते हैं। और युक्तप्रांत के पासियों, को यहाँ दुसाध या गोड़ाइत कहते हैं। इस गांव के सभी घरों की जीविका शिकार थी। पशु पक्षियों को फँसाना या मारना और इन्हें नीचे के गाँवों में ले जा कर बेचना ही उनकी मुख्य दिनचर्या थी। पास की नदी से मछली भी मार कर खाना और बेचना वे खूब जानते थे। उनकी जनसंख्या लगभग ६ सौ की थी। मेरा स्वागत बहुत आदर और सत्कार से हुआ। उनके निष्कपट प्रेम और भक्तिपूर्ण सत्कार के सामने मुझे उस धनिक सम्बन्धी का आतिथ्य फीका लगा। संसार में जितने मनस्वी पुरुष हैं उन्हें भाव ही शायद सबसे प्रिय होता है। ईश्वर को भी भाव ही प्रिय है। तभी तो कृष्ण भगवान पाण्डवों का सन्देश लेकर दुर्योधन के यहाँ जाने के अवसर पर दुर्योधन का राज्य अतिथि न होकर विदुर के यहाँ ठहरे। और विदुरानी ने जब उन्हें भाव विह्वल हो केले की गुद्दी देने के बजाय उसका छिलका ही दिया तो उसे उन्होंने बड़े ही प्रेम से खाया। जब विदुर आये और अपनी पत्नी को उसकी इस भूल को

समझाया और अपने कृत्य पर लज्जित होकर उसने केले की गुद्दी कृष्ण के हाथों में दी तो कृष्ण ने उसे खाकर विदुर से कहा, "इसमें उतनी मिठास नहीं है विदुर, जितना उस केले के छिलके में था।" मनस्वी तुलसी ने भी तो कहा ही है:—

आवत ही हरसे नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह ॥

और फिर रहीम ने तो यह कह कर

रहिमन मुहि न सुहाय, अमिय पिआवत मान बिनु।
जो विष देय बुलाइ, मान सहित मरिबो भलो ॥

तुलसी को भी मात कर दिया है। तो इस तरह मुझे जो स्वाद इन पासियों के भुजिया चावल और खेसारी की दाल तथा सदहन मछली में मिला वह धनिक सम्बन्धी के यहाँ के नाना-व्यजन-विभूषित स्वादिष्ट पकवानों और विभिन्न तरह की बनी हुई कलिया में नहीं मिला। मैं कवलेसर राम के बाहरी घर में रहने लगा।

पसिया के टोला।
ता० १-६-४३ से
८-६-४३ तक।

आज मेरे यहाँ आये ८ दिन हो गये। आठ दिन के भीतर ही मैं गाँव के प्रत्येक व्यक्ति से परिचित ही नहीं हो गया बल्कि उनका एक तरह से विश्वासी मित्र बन गया। सभी मेरे पास निजी बातों में मुझ से सलाह लेने तथा आपस के लड़ाई-झगड़ों का निपटारा कराने आने लगे हैं यहां दो दल है जिससे आपस में बड़ी फूट रहती है। इससे गाँव के मालिक का अत्याचार अपनी कठोरता प्रदर्शित करने में चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। गाँव के सारे भेद सारे

रहस्य मालिक के पास बिना प्रयास के ही पहुँच जाया करते हैं। मालिक कभी एक को सहायता देकर दूसरे को परास्त करता है तो कभी दूसरे को सर चढ़ा कर तीसरे को या पहले को तबाह करता है।

इस तरह इन ग्रामवासियों का नैतिक पतन घटने के स्थान पर दिन-दिन बढ़ता ही जाता है और इससे उनके आर्थिक कष्ट असीम हो रहे हैं। उनका रहन सहन, घर द्वार तथा उनकी सफाई आदि इतनी गिरी अवस्था में दीख पड़ी कि इन मनुष्यों के जीवन को मानव जीवन मानना कठिन प्रतीत हुआ। किसी के छप्पर पर पूरा फूस तक नहीं हैं। चार पाच हाथ लम्बा-चौड़ा नीचे द्वार के कच्चे घर हैं। उनके बनने के ढंग ऐसे हैं कि किसी तरह उनको मनुष्य के रहने योग्य घर नहीं कह सकते। सात आठ सदस्यों के परिवार के लिए भी एक ही दो घर पर्याप्त समझे जाते हैं जिन में सभी सदस्य घुस कर सूअरों की तरह सो रहते हैं। मैंने उनकी इस पतितावस्था को देखी और प्रभावित हो सन्ध्या समय सबों को एक पेड़ तरे इकट्ठा करके इन त्रुटियों की चर्चा की। कितने दिनों से स्पीच नहीं दी थी। साथ ही अपने दुःखों से द्रवित हृदय में इन नर-पशुओं की दरिद्रता विवशता और अज्ञान को देख कर मन में विशेष दया और सहानुभूति भी उग आयी थी। प्रवचन बहुत प्रभाव जनक तथा सुन्दर हुआ। घंटे भर तक उनकी दशा, उसके कारणों का सरल पर मार्मिक शब्दों में दिग्दर्शन कराके जब मैं चुप हुआ तो मेरी पलकों की पपनियां अश्रुकणों से भीगी थीं। इसको इन्होंने देखा और मेरी बातों के मर्मों को अच्छी तरह से समझा भी। मेरी पूंजीवादियों की निन्दा और गरीबों के सारे दुःखों का कारण एक मात्र पूंजीवाद को ही बताने की दलीलें उन्हें इतनी सरलता और शीघ्रता

से हृदयंगम हो गयीं कि उतनी सरलता से शिक्षित और समझदार वर्ग शायद ही हृदयंगम कर पाता। मूर्खों में यदि आस्था और विश्वास उत्पन्न हो जायं तो वे बड़े बड़े सिद्धान्तों की बातों को भी काम भर के लिए बात की बात में समझ लेते हैं और उसके अनुसार कार्य भी करने लगते हैं।

पसिया के टोला।

ता० १०-६-४३।

मैंने आज यह जानने के लिए कि मेरा यहां रहना इन लोगों को खलता है या नहीं अपने जाने की बात चलाई। कवलेसर राम से ही मैंने सब से पहले चर्चा की। सन्ध्या समय दोनों दल के सभी प्रमुख व्यक्तियों ने मुझ से यहां कुछ दिन रह कर उनका सुधार करने के लिए प्रार्थना की। मैंने आपस के फूट और मेल की गुण दोषों पर प्रवचन देते हुए उनको समझाया कि मैं यहां दो ही शर्तों पर कुछ दिन ठहर कर उनकी सेवा कर सकता हूँ। और वे शर्ते यह है कि गांव में दो पार्टी न रहे सब एक हो कर आपस में मेल कर लें और मेरी कही बातों के अनुसार कार्य करने के लिए प्रतिज्ञा करें। पार्टी तोड़ने का प्रश्न बहुत जटिल प्रश्न था। पुस्तैनी बैर को एक क्षण में भूल जाना उनके लिए कठिन काम था। वे इधर उधर की बातें करने लगे। मैंने एकता का मूल्य फिर बता कर उन्हें सामूहिक उत्थान का महत्व समझाया और साफ शब्दों में बताया कि विना ऐसा किये मालिक के शासन के जुआ से वे कभी भी मुक्त नहीं हो सकेंगे। और विना उन अन्यायों से मुक्त हुए वे कोई सुधार भी नहीं कर सकेंगे। यह बात युवकों को सूझ गयी। बूढ़े भी इसे समझ गये। सबों ने मिल कर

मेरे दोनों शर्तों को मानने की प्रतिज्ञा की और आज से मैं इस गाँव के सुधार के लिए कार्यशील होना निश्चय किया।

पसिया के टोला।

ता० ११-६-४३ से १२-६-४३ तक।

किसी भी सुधारक को उसके सुधार-योजना में तभी सफलता मिल सकती है जब वह स्कीम उसके विश्वास और शक्ति तथा योग्यता के अनुकूल हो यानी दूसरे शब्दों में जब वह स्वयं उस स्कीम का अक्षर पालन करता और उसमें पूरा विश्वास रखता हो। फिर स्वार्थ के लोभ का अभाव तथा जन-प्रेम का अस्तित्व पूर्ण रूप से होना भी उतना ही आवश्यक है। मुझ में ये सभी बातें पूर्ण मात्रा में हैं या नहीं और मैं अपने राजनीतिक जीवन में इनका पालन मनसा-वाचा-कर्मणा करता हूं या नहीं ये प्रश्न इन दिनों की डायरी लिखते समय मेरे सामने सहसा उठ खड़े होते हैं। पर इनके उत्तर अपनी लेखनी से देना भी तो मुझे उचित नहीं जनाता यह तो दूसरों द्वारा ही ठीक से जानने समझने की बात है। आत्म दम्भ, इसके प्रयत्न में मुझे निष्पक्ष रखेगा कि नहीं यह निश्चय रूप से नहीं ही कह सकता हूं। फिर भी हृदय के भीतर अब कुछ ऐसा बोध सा होने लगा है कि आत्म-विश्वास के अनुसार सद् दिशा में तटस्थ होकर विवेक बुद्धि और सच्चे मन से जन हितार्थ कार्य करते रहने में कोई भय, कोई अड़चन, कोई बदनामी की सम्भावना न इस संसार में है और न ईश्वर के सामने दूसरे संसार में ही, और इससे मैं शायद अपने में पूर्व्वा ऐसा समाज-भय के अस्तित्व का अभाव अधिक देखने लगा हूँ।

अतः आज दिन भर यही निर्णय करने में बीत गया कि मैंने जो इन पासियों की सेवा करने का वचन दे रखा है उसमें केवल सेवा की प्रेरणा है या कुछ अपने निजी स्वार्थ साधन के छिपे भाव भी वर्तमान है जिन्हें मैं अपनी, स्वार्थान्ध आंखों से इस समय नहीं देख पाता हूँ। बीती रात तक इसी को उधेड़बुन में जागता रहा। देव बेला में नींद खुलन पर भी वही प्रश्न फिर सामने आया; पर इस बार सभी बातें सुलझी हुई सी मालूम पड़ी और अपनी अन्तर-दृष्टि अधिक तीव्र, अधिक विवेकशील भी प्रतीत हुई। तुरत ही इस निश्चय पर पहुँचा कि अब कतिपय मासों के भीतर यहाँ से हटना उचित नहीं। अपने फरारी जीवन के कठिन समय को इस तरह यहाँ कुछ काल के लिए काट लेने की स्वार्थ-सिद्धि तो इस संकल्प में अवश्य है ही पर इस स्वार्थ का रहना भी तो इस समय मेरे साथ अनिवार्य है। उसका निराकरण फरार रह कर मैं कर भी तो नहीं सकता?

पसिया के टोला

६ अक्टूबर, ४३।

आज मैंने नये ग्राम की योजना तैयार की। अभी ही मकानों का निर्माण-कार्य प्रारम्भ होना चाहिये तभी वर्षा के प्रारम्भ तक काम समाप्त हो सकेगा। मैंने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर ग्राम का एक नकशा बनाया फिर उसमें होनेवाले परिश्रम का हिसाब लगा कर देखा कि कितने दिनों में सब घर तैयार हो जायंगे। इस हिसाब-किताब से जब मुझे विश्वास हो गया कि यदि ग्राम भर के नर नारी नित्य अपना आधा दिन यानी ४ घंटा समय मकान के काम में दें तो आधे दिसम्बर तक सब परिवार के मकानों की दिवालें तैयार हो जायँगी और जनवरी के अन्त तक खपड़ा नरिया आदि

पारने और जंगल से लकड़ी आदि काटने और ढोने का काम भी समाप्त हो जायगा तब फरवरी के अन्त तक मकान तैयार भी हो उठेंगे और मैं होली के दिन इन सबों का गृह प्रवेश करा कर यहाँ से छुट्टी भी पा जाऊँगा।

अपनी इस योजना को, मैंने ग्राम-सुधार पंचायत के सामने रक्खी सबों ने मेरी बातें स्वीकार की। तय यह हुआ कि प्रातःकाल तो जीविका-निर्वाह हेतु शिकार और चिड़िया आदि के फँसाने का काम सब करें और दूसरे समय सब गृह-निर्माण के कार्य में समय दें। फिर नये ग्राम का इस भूमि पर न बनाना इसलिये उचित जँचा कि यह समतल भूमि क्षेत्र फल में कम है। यहां से एक फरलाङ्ग दूरी पर एक दूसरी समतल भूमि है और नदी का पानी भी वहाँ से निकट ही है। उसी स्थान पर नव ग्राम 'गांधी-ग्राम' के नाम से बनाने का निश्चय हुआ। यह भी पास हुआ कि इस नयी भूमि पर बसने के लिये आज्ञा पत्र जमीन्दार से ले लिया जाय ताकि बाद को झंझट न खड़ी हो। कवलेसर राय को यह काम सौंपा गया। उनसे कहा गया कि यदि लिखित आज्ञा अभी न भी मिल सके तो मौखिक आज्ञा कल ही ले लेंगे।

पसिया के टोला।

६ अक्टूबर, ४३।

आज तीसरे पहर से तीन सौ कुदाल गांधी-ग्राम में काम करने लगे। हर घर में तीन कमरे, एक रसोई घर और काफी दरवाजे तथा खिड़कियां रक्खी गई हैं। ऐसे घर कुल ६५ की संख्या में हैं। एक घर और दूसरे घर में २५ हाथ का फासला छोड़ कर सामने की सब भूमि सहन के लिये छोड़ दी गयी है। आज छ घरों की नीव

काटी गयी। पुरुष नीव काट रहे थे, औरतें मिट्टी हटा रही थीं। सन्ध्या समय काम समाप्त होने पर हम सबों ने इकट्ठा होकर ईश-वन्दना की और वन्देमातरम् का गाना गाया।

पसिया के टोला।

१० अक्टूबर, ४३।

सूर्योदय के पूर्व देव बेला में शौच होकर लौटा लिये लौटा आ रहा था कि सामने बट-वृक्ष के नीचे लगभग ५० पासियों को बैठे हुए तम्बाकू पीते देखा। हाथ-मुंह धोकर मैं उनके पास गया और उनके वहां इस समय इकट्ठे होने का कारण पूछा। कवलेसर राम ने कहा, "मालिक, सरकार नइखो जानत। यह टोला भर का आज मुट्ठी भर अन्न यही जालने का बदौलत मिलता। ई चाहा के जाल सोभइआ ताल में जाता डनस। असहीं बोस गो जाल नीचे धनहर के पास गड़हन में लगावे वास्ते गइल नस। हर जाल पर पचास साठ से कम चाहा नइखन स। आजकाल बाझत चार चार पाँच पाँच गो बड़का डेला ले जाये के जरूरत पड़ता। छोटको डोली से त कामे नइखे चलत।" मालिक आप नहीं जानते। आज जो इस टोले भर के मनुष्यों को मुट्ठी भर अन्न मिल रहा है वह इन जालों की बजह से ही। यह चाहा के जाल से जो सोभइया तरल में लगने जा रहे हैं उसी तरह बीस जाल नीचे के खेतों के पास गढ़ों में लगाने को गये। हर जाल पर पचास साठ चाहों से कम नहीं बझेंगे। चार चार पाँच पाँच बड़े डेले (चिड़िया रखने को टोकरी) ले जाने पड़ते हैं। छोटी डेलियों से काम नहीं चलता।

मुझे अपने बालपन का जीवन स्मरण हो आया जब रात दिन शिकार, बन्दूक, तलवार और कुश्ती तथा घोड़सवारी आदि की धुन

सवार रहती थी। जब दिन रात इसी टोह में रहता कि कहां कौन शिकार उतरा है। कहाँ कौन चिड़िया बैठी है। यद्यपि इस उमर में, संसार के अनुभवों, अपनी आयु की गिरती तथा गांधीजी के अहिंसा व्रत ने अहिंसा और दया की बातें प्रचुर मात्रा में समझा रक्खी हैं, पर तब भी जन्मजात कुल परंपरा के संस्कारों का प्रभाव इनके पासियों साथ शिकार में जाने के लिये मन में छिपी सी चाह उत्पन्न ही कर दिये, जिसको भीतर ही दबा कर मैंने अपने को यह कह कर छलना चाहा कि चलो इनके साथ जाने से इन में हिलमिल कर इनके रहन-सहन को जानने-समझने में सहायता मिलेगी। मैंने प्रकट कहा ई "यदि मैं भी तुम लोगों के साथ चल कर शिकार देखूं तो तुम्हे कोई आपत्ति होगी ?"

कवलेसर राम ने कहा, "मालिक, हमनी के ई भागि कब हो कि सरकारी चरन शिकार में साथ चली। चलल जा। येह में क कवन बात बा ? शिकार देखल जाई मन बहली।" (स्वामी हमारे भाग्य ऐसे कब होंगे जब सरकार के चरण हमारे साथ शिकार देखने ले चलेंगे। आप चलिये। इसमें पूछने की कौन बात है। शिकार देखियेगा मन बहलेगा)।

मैं धोती लेकर पासियों के साथ हो लिया। दो मील पर सोभ-इआ ताल था। पहुंचते ही पासियों का गिरोह बीस टोली में बँट गया। बीसों जाल ताल के चारों ओर चाहों के बैठने वाले स्थानों पर लगाने को चले गये। मैं कवलेसर राम की टोली के साथ हो लिया। अब मुंह लुकान होने के थोड़े ही समय अवशेष थे। यही समय चाहों के आने का होता है। कवलेसर राम ने बड़ी तेजी से जाल खोल कर एक समतल किनारे पर उसे फैला कर ठीक किया।

फिर घुट्टी भर पानी में जाकर बीस बीस हाथ लम्बे और चार चार हाथ चौड़े दो जाल को फैला कर चौड़ाई के एक किनारे को बंधी हुई खूटियों के सहारे, ६ कोण के रूप में लगा कर ठीक कर दिया। फिर उस जाल से एक बाँस की टोनी की बनी मजबूत रस्सी बांध कर ५० गज की दूरी पर एक पेड़ के पास जहां तीन चार आदमियों के छिप कर बैठने के लिए एक गढ़ा ऐसा बना था फैला दिया। फिर उस रस्सी के सहारे दो-चार बार जाल यह देखने के लिये खींचा गया कि वह ठीक से लगा है कि नहीं। देखने में तो जहां जाल लगा था कुछ नहीं मालूम पड़ता था —जाल का कोई चिन्ह तक दिखाई नहीं पड़ता था। पर रस्सी के खींचते ही रक्खे हुए जाल के किनारे इस तेजी से डंडा के सहारे दोनों ओर से उठ कर मिल जाते थे कि पल भर के भीतर ही वहाँ जाल की एक छोटी छोलदारी खड़ी हो जाती थी। जब जाल के ठीक से लगे होने की परीक्षा इस तरह ले ली गयी तब कवलेसर राम और उनके दो सहयोगियों ने बीसों मुल्लहियों (पकड़ कर फंसाने के काम के लिये रक्खे हुए जीवित चाहे जिनकी आंखों की पलके सूई से एक में सटा कर सी दी गई रहती हैं) को निकाला और उनके पांव में रस्सी बांध-बांध कर जाल के भीतर यत्र-तत्र खूटी के सहारे उन्हे बांध दिया इन सब कामों के सम्पादन में मुश्किल से दस बीस मिनट लगे होगें। इसके बाद मुझ को लेकर सब के सब उसी छिपनेवाले गढ़े में बैठ गये। कवलेसर राम मुहं में दो अंगुल चौड़ी और तीन इंच लम्बी केले की हरी पती को डाल कर झफोल बोलना शुरु किया। उस लम्बी पत्ती के सहारे बड़ी जाति लमगोड़ा चाहा से लेकर छोटो टुँइया जाति के चाहे तक की बोली बोलना शुरु की। लम्बे

ताल में जहाँ जहाँ जाल लगे थे सर्वत्र से ऐसी ही आवाजें आने लगीं मानो हजारों चाहें ताल में चुग रहे हैं। पूर्व दिशा में अब पह फटने का लाली भापने लगी थी। जहाँ हमलोग बैठे थे उसके आगे हरी पत्तियाँ तोड़ कर इस रूप में सजा दी गयी थीं कि जाल की ओर से हम दिखाई न पड़ें। इतने ही में बहुत ऊपर से जाता हुआ चाहों के झुण्ड की बोली सुनाई पड़ी। फिर क्या था तीनों पासी गढ़े में लवा पक्षी की तरह ऐसे छिप गये कि बाहर से उनका देखना मुश्किल हो गया। मुझे भी वैसे ही छिपना पड़ा। इसके साथ ही हर जाति की चाहा की बोलियाँ बोली जाने लगीं। चाहों का गोल कुछ दूर आगे जब निकल गया तो कबलेतर राम ने कहा, 'देह झारको' और खुद भी झारकी देने लगे याना झफेल में चाहों की उस बोली को बोलने लगे जिसे जमीन पर बैठे चाहे अपने आकाश में उड़ते चाहों को बुलाने के लिये बोलते हैं। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो पृथ्वीपर बैठे असंख्य चाहें एक स्वर से अपने गगन गामी साथियों से कह रहे हों, "आओ भाई लौट आओ यहां काफी चारा है।" गगन गामी विहंग-वृन्द तुरत ही कावा काट कर, पर बांधे, उसी तरह की बोली बोलता हुआ लौटा जिस तरह का स्वर इन तीन मानव मुखों से कदली पत्र के सहारे निकल रहा था। इस समय तीनों पासियों की मनसा-वाचा-कर्मणा सचेष्टता और एकाग्रता तथा छिपने की विधि को देखते ही बनता था। पर बाँधे हुए झुंड पूर्व से आया और जाल के निकट पहुँचने लगा। बस इनके निकट पहुँचते ही तीनों झफीलों ने एक दूसरे ही स्वर की बोली बोलनी शुरु की। उनके इस स्वर-परिवर्तन को सुन कर मुझे ऐसा लगा मानो सचमुच ही ऊपर चाहों की आगमन की खुशी को नीचे बैठे हुए चाहें सुने र

हों। परन्तु चाहों के उतरने का अन्दाज ठीक नहीं था इससे वे जाल के ऊपर से होते हुए जाल से कुछ पश्चिम निकल गये। फिर वहीं झफील शुरु हुई। चाहों का जाता हुआ झुंड एक विलक्षण तेजी के साथ कावा काटता हुआ घूम पड़ा। जाल के ऊपर पहुँच कर उनके पाँव जैसे ही लम्बे होकर जल छूने लगे और उतरने की मुद्रा में पंख सिमटने लगे कि कवलेसर राम रस्सी की बकुली को गढ़े की दिवाल से एड़ी लगा कर खीचते हुए चित्त हो गये। जाल छोलदारी की तरह खड़ा हो गया और पचासों चाहे उसमें फटफटाने लगे। कवलेसर राम तो वैसे ही चित्त पड़े बकुली खींचे चिल्लाने लगे—'दउरस पकड़स। (दौड़ो पकड़ो दौड़ो पकड़ो) उनके दोनों साथी डेली लिये जाल के पास इस तेजी से पहुंचे जैसे ताजी कुत्ता। मैं भी उनके पीछे पहुँचा। उनका काम उस वक्त देखते ही बनता था। जाल के भीतर उड़ते हुए और रह रह कर जाल से सट जानेवाले चाहों को वे जल्दी २ पकड़ते और उनके चारो पचवख (दोनों डैनों के आगे वाले बड़े पर) उखाड़ उखाड़ उन्हें डेली में (बास की बनी चतुर्दिक से बन्द एक चिपटी पिटारी जिस के बीच के एक सुराख पर ढक्कन पड़ा रहता है) डालते जाते। बात की बात में तीन कोरी चाहे पकड़ कर डेली में कैद कर दिये गये। मैं पासियों के हस्त कौशल को देख देख कर यही सोच रहा था कि यहाँ भारत में कला को जाति गत पेशा के रूप में परिणत कर कला-शिक्षण की समस्या कितना सरल, सहज, सुबोध और सामूहिक तथा खर्चा ही बना दी गयी है। यह योजना बिना राज्य की सहायता के समाज द्वारा स्वतः इस निपुणता से चला दी गयी है कि बिना खर्चा के ही सब अपनी अपनी जातीय कला-ज्ञान को हंसते खेलते बिना

किसी मानसिक बोझ के सीख लेते हैं। इससे न तो बेकारी प्रश्न उठता है और न आपस की छीना-झपटी का ही प्रोत्साहन मिलता है। हर व्यक्ति को कला की बनी वस्तु की आवश्यकता है और समाज की बनावट ऐसी है कि हर जाति एक एक कला को लेकर अपनी पैतृक चातुरी उसमें दिखाने का व्यक्तिगत रूप में अवकाश पाता है और दूसरी जाति वालों को इस कला का लाभ पहुँचा कर उस जाति का कला से स्वतः लाभान्वित करता है। यदि हमारे समाज की प्रारम्भिक योजना ठीक रूप से चालू रहे तो जाति गत प्रतिद्वन्दिता तथा व्यक्ति गत छीना-झपटी और पूंजीवाद की खराबियों को प्रोत्साहन मिलने का मौका ही शायद न मिलने पावे। सभी अपने अपने में सन्तुष्ट होकर एक दूसरे के अस्तित्व की आवश्यकता महसूस करने लगें और एक दूसरे के बीच पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति का विकाश हो। परन्तु ये दलील ही भर की बातें हैं। व्यवहार में इस मुख्य ध्येय की प्राप्ति आततायी द्वारा हो नहीं पाती। यही अभाव तो इस मशीन युग में भी हमारे जीवन की सुविधाओं को बढ़ा कर और शारीरिक परिश्रम कम करके सब से ज्यादा खलने भी लगा है। इधर मैं अपने मन में इन राजनीतिक समस्याओं पर विचार ही कर रहा था कि उधर सब चाहों को डेली में रख कर सब पासियों ने पूर्ववत् जाल लगा दिया और मुझे जल्दी फिर अपने पूर्व स्थान पर जाने की आज्ञा दी। फिर वही झफोल का क्रम चला। तीन बार जाल और उठा। दो बार में तो पचास चाहे मिले पर एक बार बार खाली गया। जैसे ही कवलेसर राम ने जोर लगा कर रस्सी खींची वैसे ही रस्सी टूट गई और वे चारो खाने चित्त हो दो गज की दूरी पर जा गिरे। जाल आधा उठ कर

रह गया। केवल एक चाहा जाल के कोने की ओर भाग कर बझ सका। उधर कवलेसर राम को चोट लगने का दर्द उतना नहीं अनुभूत हो रहा था जितना चाहों के निकल जाने का उन्हें अफसोस था। दस ग्यारह बजते बजते सब पासी जाल उठा कर उसी पेड़ के नीचे इकट्ठे हुए। उनमें कुछ अपनी विजय पर फूले नहीं समाते थे। और कुछ अपनी असफलता पर पश्चाताप कर रहे थे। फिर भी कुल ५११ चाहे। यहीं साथ लाये हुए सत्तू को खा कर अपने अपने डेली को बड़ी बोझ लेकर हर टोली से एक एक आदमी पहाड़ के नीचे चिड़ियों को बेचने के लिए उतर गया। शेष जाल वगैरह लेकर घर की ओर चले मैं भी उन्हीं के साथ भींगता भींगता घर आया। खा पीकर जब खाट की शरण ली तो इस वृहत हत्यायों की बात सोचने लगा। ५११ जानें नित्य मार कर ये पशु रूप मनुष्य अपने परिवार के रोजी चला रहे हैं। टोले भर में नरनारी हैं ६०० जिनमें ३०० स्त्री बच्चे के रूप में निकाल भी दिये जायं तब ३०० आदमियों द्वारा चार हजार के लगभग रोज जानें मारी जाती हैं यह क्यों? ६०० की रक्षा के लिए ४००० को मारने की आवश्यकता? प्रकृति का इसमें क्या रहस्य है? मानव जाति के लिए जीवन धारण करने का दूसरा कोई तरीका भले कहा जाय पर अन्य मांस भोगी जीव धारियों के सामने तो हत्या करके जीने का ही एक मात्र तरीका है। प्रकृति ने या ईश्वर ने या विकाश स्वभाव ने अपनी इस निर्दय-योजना में क्या भलाई देखी? क्या रहस्य रखा? और सृष्टि का इसमें क्या कल्याण समझा है? इस तरह के अनेक जटिल प्रश्न आंखों के सामने नाचने लगे। "जीवो जीवस्य भोजनम्" सूत्र के अर्थ का बोध व्यावहारिक रूप में प्रत्यक्ष होने लगा। बुद्धि ने

समझा कर कह दिया—"हिंसा संसार से उठाई नहीं जा सकती। प्रकृति का राज्य हिंसा की नींव पर कायम है। इसे कौन 'नहीं' कर सकता है? तब शास्त्र कथित अहिंसा, दया? इनका स्थान कहाँ है? इनकी उपयोगिता क्या है? सभी अवतारों ने—सभी महात्माओं ने इसीका स्थान ऊँचा रखा है। क्यों? इन प्रश्नों का ताना-बाना बुनने लगा कि मति विभ्रम हो गयी। कुछ निश्चय नहीं कर सकने की अवस्था में थक कर मस्तिष्क शान्ति चाहने लगा। शरीर थका था ही। फिर पानी भी पड़ने लगा था। उस शीतल वायु में नींद आ गयी। सो कर उठा तो चित्त शान्त था। लेटे लेटे देखा तो बाहर अब भी झड़ी लगी हुई थी। मन में कुछ काव्य करने की सी भावना जाग्रत हुई पर तुरत ही सोने के पूर्व के प्रश्नों का तांता सामने आ खड़ा हुआ। पर अब प्रश्न व्यवहारिकता का रूप धारण करके अपने कर्त्तव्य को निश्चय करने का था। यहीं रह कर इतनी बड़ी संख्या में जीव हत्या देख कर इनकी जीविकोपार्जन-विधि में कुछ सुधार कैसे किया जाय? इन्हें सात्विक भावनाओं की ओर कैसे चलाया जाय? उपाय तो है, प्रचार में सफलता भी मिल सकती है, पर इस पहाड़ में न खेत है और न इनके पास ही इतने धन हैं कि नीचे जाकर दूसरा पेशा अख्तियार करें। एक दिन भी काम न करें तो उपवास करना पड़े। परन्तु सच कहूँ तो इस साधन हीन अवस्था में रह कर भी इनकी अवस्था समतल के गरीबों से कई मानो में अच्छी है। इनको किसी तरह भर पेट खाने को दोनो समय मिल जाता है। और कुछ नहीं तो मांस तो घर की चीज है। जो खाद्य पदार्थों में सब से पुष्ट भी है। संसार की बड़ी मानव-संख्या इसे खाती है। पर नीचे समतल के गरीबों को तो यह भी नहीं लभ्य है। इनकी

मान्यतायें भी तो इन्हीं की तरह अहिंसा की नहीं। तो वे इनसे अच्छे कैसे कहे जायेंगे ? फिर हिंसा ही में क्या बुराई है ? अपनी मान्यता के अनुकूल कार्य करने में पाप कैसा ? कवलेसर राम का भाई तो कंठी बांधे है। मांस मछली नहीं खाता, पर नित्य शिकार करके मांस बेचता और पचासों जीव मार कर अपनी जीविका चलाता है। पूछता हूँ तो कहता है, 'मालिक भगवान हमार जीव मारे के पेशे बना देलन त का करीं ? ईपेशा ना करना रहित त काहें उ हमरा के पासी का घरे जनम देतन। बताईं सात पुस्त से त सब बाप दादा इहे कमाई क आइल। हम कहां वेद पढ़लीं कि कथा बाँचत फिरीं। आ बँचबे करीं त हमार कथा के सुनबे करी। मांस येह से ना खाईं कि अपना भर बचा दीं त इहे ढ़ेर बा। जीभ के स्वाद ना लिहीं। अपना स्वाद खातिर ना जीव मारीं। बाकी रउरे बताई जे हमरा पर आश्रित बा ओकर पेट भरे के सहारा इहां पर गाँव में दूसर कवन बा ? फिर हम अपना भगति के ख्याल से उन्हनी के भूखन मारीं त ई उचित कहाई ? फेन दूसर बात ई कि जेकरा कीह? हमार बाप दादा सनातन से मास खिअवलन उनका के हम आज काहे ना खिआईं ? जान तानी येह पहाड़ के नीचे जे बाबू लोग के बड़ बड़ गाँव बाड़न स ओह सब में हमनी के रोज मांस मछरी देवे के उठवना लागल बा। येकरा बास्ते उ लोग हमनीके खेतसे निकाल देले बाड़न जे ओही लोगके हर बैलसे बोके दस मन काट लिहीला जा। ओही लोगन कीहाँ रोपनी डोभनी भी कर के भादो भदवारी के कुसमय के दिन काटी लाजा, त बाबू, हमारा जीविका के सहारा त इहे शिकार नू बा ? ई छोड़ के अपना परिवार के कई से पोसी ? हाँ, अपना स्वाद खातिर हम जीव ना मारी।

"मालिक भगवान् ने जीव मारने का मेरा पेशा ही बना दिया तो मैं क्या करूँ। यह पेशा नहीं करना रहता तो उन्होंने वे मुझे पासी के घर जन्म ही क्यों देते ? बताइऐ सात पुश्तों से तो मेरे बाप दादे सब यह काम करते चले आये। मैं ने कहाँ वेद पढ़ा कि कथा सुनाते फिरूँ ? और सुनाऊँ भी तो कौन सुनता ही हैं ? मांस इससे स्वयं नहीं खाता।क अपने भर तो कम से कम बचा दूँ तो यही बहुत है। अपने स्वाद वास्ते जीव नहीं मारता जीभ का स्वाद नहीं लेता। किन्तु आप ही बताइये जो मेरे ऊपर आश्रित हैं उनके पेट भरने का सहारा इस गांव मे हमारा दूसरा क्या है ? फिर यदि मैं अपनी भक्ति के विचार से उन आश्रितों को भूखों मारूँ तो यह उचित बात होगी ? फिर दूसरी बात यह कि पहाड़ के नीचे के बाबू लोगों के यहाँ बाप दादे सनातन से मांस मछली नियमित रूप से देते चले आये हैं और वे बाबू लोग इसके एवज में हमे जागीर दिये हुये हैं जो अपने ही हल बैल से जोत बो देते हैं। जिससे हम फसल के दिनों में दस मन अन्न पा जाते हैं। यह सब कैसे छोड़ दें। फिर इन्हीं बाबूओं के यहाँ मजदूरी करके भादों के कठिन दिनों को भी तो हम लोग काट लेते हैं। तो बाबू ! हमारी जीविका का सहारा तो एक मात्र यही शिकार ही न है। इसको त्याग कर अपने परिवार को कैसे पालू-पोसूँ ? हां इतने भर कर सकते है कि अपनी जीभ के लिये जीव हत्या न करें। बस यही अपने बस की बात है।"

रमेसर राम की इस युक्ति के सामने मेरी सारी अहिंसा वाली स्कीम कुण्ठित पड़ गयी। द्वापर में सदन कसाई का किस्सा जहाँ राजा जनक ऐसे विद्वान ने भी ब्रह्म तत्व की शिक्षा ग्रहण की थी याद आ गयी। किस तरह दिन भर गो-मांस बेच कर सन्ध्या समय नहा

धोकर वह ईश्वर ध्यान करता तथा आध्यात्म-दर्शन की चर्चा में लीन होता था। फिर महाभारत की महा नर-हत्या को भी जाति-कर्त्तव्य के सामने श्री कृष्णचन्द्र को समर्थन करने की आवश्यकता हुई थी। अतः अन्त में मन को इसी निर्णय पर विश्राम करना पड़ा कि इनके जीविकोपार्जन की शैली को छुड़ाने या उसके विरुद्ध स्पीच देने की क्षमता मुझ में तब तक नहीं होनी चाहिये जब तक मैं इनको इससे अच्छी नहीं तो कम से कम इसी तरह भरण-पोषण करने वाली दूसरी जीविका-विधि का प्रबन्ध नहीं कर देता जिसके लिए भले महात्मा गांधी समर्थ हों पर मैं तो अपने को आज इस परिस्थिति में असमर्थ ही मानता हूँ। अतः यह निश्चय किया कि इनके पुराने रहन-सहन में वहीं तक मैं सुधार करूँ जहाँ तक इनके लाभ ही लाभ की सम्भावना हो। आवेश में आकर जो लोग विवेक की सीमा को लांघ वैसी सुधार-योजना चालू कर देते हैं जिनका चलना उस परिस्थिति और वातावरण में कठिन ही नहीं असम्भव रहता है तो उनसे हित कम और अहित अधिक होता है। सन् १९४२ के जन-आन्दोलन के अवसर पर या सन् १९१६ में आरा के हिन्दू-मुस्लिम दंगा के समय इसके सैकड़ों ऐसे उदाहरण मेरी आखों के आगे से गुजरे हैं जिन्हें देख कर मुझे दंग होना पड़ा है। मैंने देखा है कि किस तरह उस समय तथाकथित बड़े समझदार नेता या नायक मूर्ख जनता को उत्तेजना दे देकर धर्म और जातीयता या राष्ट्रीयता के नाम पर गुमराह करके उनसे अवांछनीय कृत्य करा दिये। अतः अपने इस अनुभव की अवहेलना अपने इस ग्राम-सुधार की स्कीम में न करना ही उचित समझा और महात्मा गांधी-के अहिंसा सिद्धान्त को मान कर के भी इस विशेष परिस्थिति में हिंसा का

विरोध न करना मैं पासियों के हित में उचित समझा; और सुधार के वे ही कार्य-क्रम पहले चालू करना चाहा जो इनके अर्थ को सहायता दें तथा निरक्षता को दूर और ज्ञान की अभिवृद्धि करें। अतः शाम को पानी खुलने पर जब सब सयाने पासियों का वृन्द तथा बड़ी बूढ़ियों का समूह वट वृक्ष के नीचे खा पीकर इकट्ठा हुआ और चिलम का दौर चलने लगा तो मैंने उनसे कपड़ा की दिक्कत और चर्खा की उपयोगिता तथा पढ़ने का आवश्यकता आदि रचनात्मक कार्य-क्रम की बातों को मर्मस्पर्शी शब्दों में समझा कर सबों को बचे समय में चर्खा चलाने और सूतकातने पर राजी किया, और पढ़ने के लिये रात्रि-पाठशाला सयानों के वास्ते और दिन-पाठशाला बालक बालिकाओं के लिए खोलने का निश्चय कराया। इस स्कूल का अध्यापक बनना मैंने स्वयं स्वीकार किया। साथ ही रूई के लिए कपास बोने की आवश्यकता बता कर हर घर के पीछे वाले खण्ड में कपास बोने की बात पंचायत से पास कराई। इतने प्रस्तावों को पास कर चरखा और रुई की कीमत तथा कपास का बीज और पढ़ाई के लिए स्लेट पेन्सिल तथा किताब आदि खरीदने के लिए रुपये के वास्ते मुठिया प्रथा चालू करने का जब मैंने प्रस्ताव किया तब उसी समय परमेसर रामने कहा, "चिड़ियों की बिक्री से जो आमदनी ग्राम में होती है उसमें से फी रुपया एक पैसा इस काम के लिए निकाला जाय। सबों नें मुठिया और यह चन्दा दोनों देना स्वीकार किया। तब गाँव की सफाई के लिये मैंने यह योजना बनाई कि घर-द्वार बुहारने आदि का काम और जागरुकता के साथ चलाया जाय और प्रत्येक रविवार को एक आदमी घर पीछे अपना समय गाँव के रास्ते आदि बनाने और अन्य सफाई के कामों के लिए दे। पाठशाला के

विद्यार्थियों का भी उसमें सहयोग रहे। यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। काम तत्त्वण चालू करने के लिए २५ स्लेट १० चर्खा १०० तकली और पाँच सेर रुई की कीमत अपने पास से देकर कवलेसर राम को मैंने शहर से सब चीजें खरीद लाने को भेजा। फिर दूसरे दिन तीतर और खरगोश के शिकार में जाने वाले शिकारियों ने अपने साथ जाने को मुझे आमन्त्रित किया। उन्हें वचन दे मैं सोने गया।

पसिया के टोला।

ता० ११-१०-४३।

रमेसर राम इस गाँव के सब से भक्त जीवों में समझे जाते हैं। वे जाल का शिकार नहीं करते। उनका कहना है कि जाल से अधिकाधिक हत्यायें होती हैं और निरीह छोटे जीव ही मारे जाते हैं। उनके नाम नीचे के गाँव के बाबू ने एक तोड़ेदार बन्दूक की लैसेन्स करा दी है। साथ ही दो जोर्रा और एक बाज भी खरीदवा दिये हैं। वे उन्हीं के सहारे बड़े बड़े पत्तियों तथा जानवरों का शिकार किया करते हैं। उनके तीन लड़के हैं। वे भी बन्दूक चलाने तथा बाज जोर्रा पालने के खेल से भिज्ञ हैं। एक बाज और दो जोर्रा के अलावे उनके पास तीन शिकरे निजी भी हैं जिन में दो तो तीन तीन साल के कुरीच हैं यानी तीन साल में तीन बार अपना पर सफल रूप से झाड़ चुके हैं। चिड़िया पालने की कला में चिड़ियों को समय पर सफल रूप से साफ साफ पर गिरवा देना बहुत कठिन समझा जाता है। इसी पर उस चिड़िया के भावी साल की अच्छाई बुराई निर्भर करती है। कुरीचते समय की जरा सी भी असावधानी चिड़ियों की अस्वस्थता तथा मृत्यु तक का कारण

बन जाती है। पर एक शिकरा इस साल का ही है। शिकार तो वह अच्छा करने लगा है पर ठीक से कुरीच न सकने के कारण इस समय मरणप्राय हो रहा है। इससे एक दूसरे शिकारे को बझाने की बात चल रही है। आपस में नित्य परामर्श हुआ करता है कि तीन बच्चों में से किस बच्चे को बझाया जाय। जो पहलवान मरद वाले पीपल पर का बच्चा है वह देखने में तो जरा छोटा जरूर है पर शिकार में बहुत तेज है। मैंना, गिलहरी का तो कई बार पकड़ चुका है पर परसों वह कौवा पर भी झपटा था और उसे पकड़ ही लिया होता यदि भूजेटी या भूचेंगा (काली छोटी पक्षी जो प्रातःकाल बहुत तेज मीठे स्वर से बोलता है और जो पक्षियों तथा पशुओं को उनके होने वाले घातक हमलों से एक विशेष स्वर से आगाह कर दिया करती है) बोल कर चतुर कौवे को सावधान न कर दिए होती। दूसरे दो श्येन-शिशु देखने में तो बड़े हैं पर अभी तक वे मैंनी को भी पकड़ते नहीं देखे गये। इससे रमेसर राम की आज्ञा पहलवान मरद के पीपल पर के श्येन-शिशु को पकड़ने की हुई है। जिस दिन एक मूसिका जीती पकड़ ली जा सकेगी उसी दिन श्येन-शिशु भी उसके सहारे फसाया जा सकेगा।

रमेसरराम और उनके आत्मज गण बन्दूक से तो सूअर, साम्भर, चीतल, चीता, भालू बाघ आदि का शिकार करते हैं और उनके चमड़े, मांस, नख आदि बेच कर रुपया पाते हैं और बाज जोरा आदि से लमझ, घाटी (सघन जंगली वत) गैवर, लगलग, नकटा, तीतर, मुर्ग, कबूतर, कालक आदि का शिकार किया करते हैं। अपने मालिक को सप्ताह में चार दिन मांस पहुँचाना तथा बड़े जानवरों का शिकार उनकी मर्जी के मुताबिक कराना उनका सर्व प्रथम कर्त्तव्य

है। यदि बारी के दिन शिकार न भी मिले तो उन्हें खरीद कर मालिक के यहां चिड़िया पहुँचाना पड़ता है। इसीलिए उनको जंगल में सब शिकार मारने की आज्ञा है। और ५ बीघे खेत बिना मालगुजारी के माफी नीचे गाँवों में मिले हुए हैं। शौकीन मालिक ने बाज खरीदने के लिये तीन वर्ष पूर्व २७५) रुपये और दो जालों के लिए १००) रुपये बिना सूद के इनको कर्ज भी दे रक्खा है। बन्दूक भी तो मालिक की ही कृपा से मिली है। जब बाघ या चितवा कहीं मरूही मारता है तो रमेसरराम को उसकी खबर मालिक को हर दशा में देनी अनिवार्य्य है। स्वामी या तो सदर से किसी हाकिम को शिकार करने के लिए बुलाते हैं या उनके अभाव में स्वयं मौचा पर बैठते हैं या मन न होने पर रमेसरराम को ही शिकार करने की आज्ञा मिलती है। बिना आज्ञा पाये वे बाघ या चितवा को नहीं मार सकते।

आज चार बजे प्रातःकाल पानी बरसा और पाँच बजते बजते खुल गया। पानी के खुलते ही रमेसरराम ने मुझे जगा कर शीघ्र शिकार चलने को कहा। देर होने से सहेजनी के शिकार का अवसर जाता रहेगा (जब पानी देर तक बरस कर विशेष कर सन्ध्या या प्रातःकाल खुल जाता है तब घाँधों में छिपे हुए शशक या कोटरा (छोटी हरन) आदि पशु और तीतर आदि बड़े पक्षी उन खुले स्थानों पर जहाँ दूब उगी रहती है और जलकण उसकी पत्तियों पर मोती जैसा चमका करते हैं—निकल कर अपना शरीर सुखाते और तृण आदि चरने लगते हैं। उस समय झाड़ियों में छिप कर जो शिकार खेला जाता है उसे सहेजनी का शिकार कहते हैं। सहेजनी भोजपुरी में हरी घास आदि को कहते हैं जो किसान ढोरों को खिलाता है।)

मैं तुरत उठा और रमेसरराम की बन्दूक, बाज, जोरों, शिकरा से लैस टोली के साथ हो लिया। पहाड़ पर चढ़ते चढ़ते पाँव फटने लगे थे और पूर्व में ऊषा की लाली भी अधिक साफ होने लगी थी। ध्येय स्थल पर पहुँचते ही चारों व्यक्ति चार विभिन्न स्थानों की झाड़ियों में छिप कर बैठ गये। मैं रमेसरराम के साथ बैठा। उन के साथ एक बन्दूक, एक बाज और एक जोरा थे। बाज जोरा को तो उन्होंने धाँध की एक डाली पर बैठा दिया और आप बन्दूक लेकर हरन या साम्भर की ताक में बैठ गये। क्योंकि उसी रास्ते से रात्रि में पहाड़ से नीचे खेत चरने के लिए उतरे हुए साम्भर या हरन प्रातःकाल वापस होते हैं। झाड़ी के सामने प्रायः एक सौ वर्ग गज जमीन खुली थी। हरी हरी दूबें कहीं कहीं बीता भर उठी थीं। उनके पत्तों पर नव-पतित-जल बिन्दु मोतियों को लजा रही थीं। मुझे चुपचाप बैठने का आदेश इस लिए नहीं मिला कि वे मेरे शिकार ज्ञान से पूर्ण भिज्ञ थे। तुरत ही मझिली राशि का एक साम्भर उस मैदान में झाड़ी में धड़ रगड़ता हुआ आ निकला। रमेसरराम ने बन्दूक छाती पर रक्खी ही थी कि एक दूसरा विशाल काय नर साम्भर भी आ निकला। इसकी सींघें बहुत बड़ी थीं। बन्दूक की नली उधर हो गई। तुरत लबलबी दबी, धुआँ निकला और धाँय का स्वर हुआ। साम्भर एक बार उछला और कटे वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसका शरीर थर थर काँपने लगा और—और गरदन इधर उधर घूम घूम कर ऐंठने लगी। वेदना पूर्ण आंखें हमारी झाड़ी की ओर घूर घूर कर निहारने लगीं। मैं अपने भारी दिल को थामे हुए उसकी इस यातना को देख रहा था। दो एक मिन्ट इसी तरह बीत गये।

सहसा पाँव लम्बे तन कर मन्द गति से आगे पीछे हिले और सर जरा थरथरा कर सदा के लिए शान्त हो गया। उधर मैं यह करुण दृश्य देख रहा था और इधर रमेसर राम बतको (बारुद रखने का यन्त्र) से बारुद निकाल निकाल कर जल्दी जल्दी बन्दूक भर रहे थे। मैंने उनको बन्दूक कसते देख कर धीरे से कहा, 'अरे! यह तो मर गया। अब क्यों मारोगे ?"

रमेसरराम ने कहा—"मालिक गोली बन्द पर पडलि हा ना त फेन त मार ही के परित। (गोली मार्मिक स्थान पर पड़ी है। इससे मर गया नहीं तो दूसरी बार तो मारनाही पड़ता)। इतना कह कर उन्होंने मेरे चरण छू कर प्रणाम किया। शिकारियों में शिकार मिलने पर विजय-प्रणाम करने की प्रथा इसी देश में नहीं अन्य देशों में भी पुरानी है। मैंने कहा, "चलो घर चलें। अब तो शिकार मिल गया। बहुत काफी है।" पर रमेसर राम "अबे त दैव जागल बाड़न।" (अभी तो सकुन हुआ है।) कह कर दूर पर हिलती हुई झाड़ी को निहारते निहारते चुप हो गये। पहाड़ों में बन्दूक छूटने से उसकी प्रतिध्वनि चारों ओर से सुनाई पड़ने लगती है। जैसे जैसे पहाड़ नजदीक दूर होते हैं वैसे वैसे आवाज भी विभिन्न दिशाओं से आगे पीछे कई सेकण्डों तक निरन्तर आती रहती है। इससे जानवरों को अकसर यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि किधर बन्दूक छूटी है और किधर शत्रु है। प्रायः घबड़ा कर वे शिकारी कीही ओर निकल भागते हैं। यही सोच कर झाड़ी हिलने पर रमेसरराम किसी दूसरे शिकार की प्रतीक्षा करने लगे। तुरत ही एक चीतल भागता हुआ सामने आ निकला। उसके मैदान के बीच में पहुँचते पहुँचते बन्दूक दगी। पर गोली के बन्द पर

न पड़ने के कारण वह गिर कर भी उठ भागा। रमेसरराम दूसरी चोट तैयार नहीं कर सके। अतः टुक आगे बढ़ कर उसके भागने की दिशा का उन्होंने अन्दाजा लगा लिया।

इस घटना के आध घंटे बाद तक कोई शिकार नहीं दिखाई पड़ा। सूर्योदय तो होही चुका था पर उस मैदान में पहाड़ों के कारण धूप नहीं आयी थी। रमेसरराम ने बन्दूक एक ओर रख कर अंगुश्तदान (बाज के बैठने के लिये अंगूठे में पहनने वाली छोटी गद्दी) को दाहिने अंगूठे में लगाया। और बाज का डाल से खोल कर हाथ पर बैठाया। मैंने पूछा, "क्या अब जानवर नहीं आयँगे जो बन्दूक रख दी?"

रमेसरराम ने कहा, "ना मालिक। अब नीचे के तरफ से लौटे के बेरा खतम होगइल। अब लमहा निकलोहन स। बाज के शिकार नइखीं नू देखले। देखीं ना कइसन मजा आवता।" (नहीं मालिक! अब नीचे की तराई से जानवरों के लौटने का समय समाप्त हो गया। अब खरहा आदि निकलेंगे। आपने बाज का शिकार नहीं न देखा है। देखिये कैसा मजा आता है।)

मैंने फिर आग्रह किया, "अब क्यों जाने मार रहे हो। शिकार तो काफी मिल गया।" रमेसर राम ने मैदान की ओर दृष्टि गड़ाये हुए मुस्कुराते हुए कहा, "अरे! शिकार जूआनू हटे मालिक। शिकार औरत आ रुपया से केहू के मन भरल हा? देखीं खरहा आ रहल बा। पुरब भर घास हिलतिया" (अरे! शिकार जूआन है, मालिक, शिकार, स्त्री और रुपया से आज तक किसी का पेट नहीं भरी। वह देखिये। दूब हिल रही है। खरहा आ रहा है।)

तुरत ही एक शशक-मिथुन सामने आकर फुदक फुदक घास चरने

लगा। कभी वे दूब की हरी हरी पत्तियाँ कपटते, तो कभी उन पर पड़े मुक्ता समान जलकणों को चाटते, और कभो पीछे के पावों पर कुकरू बैठ कर अपने दोनों हांथों से अपने भींगे मुख को मोछों को साफ करते, और कभी भींगे शरीर को झाड़कर और रोएँ फुलारकर सुखाने को मुद्रा दिखाते। उनका कभी इस दूब के पास और कभी उस दूब के पास दौड़ना और कलोल करना इतना भला मालूम हो रहा था कि मेरे मन में फिर दया का संचार हो आया और जी चाहा कि इनके वध में बाधा डालूँ, पर अपने जन्म से ही शिकार के शोकीन होने के संस्कार ने इसको कार्य्य में परिणत नहीं ही होने दिया। दूसरों को विपत्ति में देख कर जो एक बार प्राय: सब के हृदय के हृदय में एक तुष्टी जैसी भावना जाग्रत हो उठने की शैतानी प्रवृति है, जिसे हम भी स्वयं नहीं स्वीकार करते वह भी शायद अपने हृदय के हृदय में उदय होकर शिकार रोकने में बाधा डालने लगी थी। मैं कुछ न कह कर समय की प्रतीक्षा करने लगा। उधर रमेसर राम शशक मिथुन के मैदान के बीच में आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। और बाज के पाँव में लगी हुई चमड़े की दोआलो से बँधी रस्सी को खोल कर बाज की पीठ पर हांथ फेर फेर कर उसे शिकार के लिए तैयार कर रहे थे। मैंने साफ देखा कि बाज की मुद्रा में सतर्कता आ गयी है। वह रह रह कर गरदन उठा मस्तक घुमा मैदान की ओर ताक लेता था। अब शशकमिथुन भी बीच मैदान से कुछ इधर बढ़ आया था। रमेसरराम झुके झुके उठे और झाड़ी के किनारे जाकर हाथ जरा ऊपर कर "धर धर" कहते हुए बाज को उड़ा दिये। सधा हुआ बाज फौरन उड़ा पर ऊपर उठने के बजाय जमीन से केवल दो तीन गज की उचाई पर

उड़ता हुआ तीर की तरह खरहों की ओर झपटा। इतने में चीरहारी (भूजेटा) ने, 'भो चपचप, भो चपचप की आवाज दी। (यह पक्षी सदा खतरे के मौका को सब से पहले ताड़ जाती है और शिकार विशेष को बोल कर आगाह कर देती है खरहे चौकन्ने हो बाज को देखे, और भाग निकले। परन्तु दस बीस गज भी नहीं भागे होंगे, कि एक खरहे की पीठ और गरदन बाज के खूंखार चँगुल में पड़ गये। दोनो बाज और लमहा क्षण भर के लिए गुत्थमगुथ हो गये और फिर उसके बाद मैंने देखा कि खरहा को पंजों से पकड़ और डखनों से छापे हुए बाज अपनी पूँछ और घुटनों के बल से पृथ्वी पर बैठा है। और खरहा चारो पाँव फेकता हुआ चीं चीं चिल्लाता हुआ घातक चंगुलों से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा है। बाज के पंजे के एक एक इंच लम्बे नख शशक शरीर में घुस कर उसको इस सबलता से पकड़े थे कि खरहा भागना क्या हिलने डुलने तक से विवश था। बाज की क्रोधभरी गोली-गोली आंखें विस्फारित हो होकर खरहे को निहारतीं तथा बड़े खमदार चोंच रह रह कर उसके गले का काटते। रमेसर राम खरहे के चारों पावों को जोर से पकड़े हुए बाज को उसकी गरदन से एकाध कौर (ग्रास) मांस खाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब बाज ने एक जगह गरदन का चमड़ा काट कर दो एक कौर मांस खालिया, तब रमेसर राम ने झोले से मांस का रक्त लिप्त टुकड़ा निकाल कर बायें हाथ के अंगुश्तदान पर रक्खा और चुमकारते हुए बाज को बुलाने लगे। हसद भरी नजर से बाज उस मांस पिण्ड को कुछ क्षणों तक देखता रहा। मानों वह सोच रहा था कि वह छिला छिलाया मांस खाने में सुगम होगा। तुरत ही वह खरहा को छोड़ कर उस

मांसपिण्ड से चिपट गया। अंगुश्तदान पर बाज को बैठाये और मांस खिलाते हुए वे फिर पूर्वस्थान पर आ ही रहे थे कि आकाश से सौन पक्षियों की बोली सुनाई पड़ी। रमेसर राम उनको देखने लगे। बतों का झुण्ड पर बाँधे पास ही कहीं बैठ रहा था। रमेसर राम को जंगल के एक एक स्थान का ज्ञान था। झुण्ड की ओर तब तक निहारते रहे जब तक वह आंख से ओझल होकर पास ही पर बाँध कर बैठता हुआ नहीं मालूम हुआ। उधर से नजर फेर कर उन्होंने कहा "मालिक, चलों अब बतक के शिकार देखीं। रमतलवा के झरना में गिरलनस।" (मालिक ! रमतलवा के झरना में ये बत बैठे। चलिये अब बतक का शिकार देखिये)

उन्होंने बन्दूक तो मुझे थम्हायो और जोरों को वहीं ऊंची डाल पर बांध दिया। और बाज लेकर तेजी से चलने लगे। मैं भी उनके पीछे अपना लँगड़ा टाँग घसीटता हुआ पढ़ता गया। जङ्गल की टेढ़ी मेढ़ी पगडंडी से करीब चार फर्लाङ्ग चलकर रमेसरराम रुक गये। सामने एक छोटा सा पहाड़ी झरना दिखाई पड़ता था। पानी पड़ जाने के कारण वह इस समय बड़े बेग से गिर रहा था। जल-पात का स्वर मधुरगान-सा सुन पड़ता था। उसमें जल पक्षियों के कलरव ताल-सुर भरते-से मालूम हो रहे थे। सामने ही हरी दूब पर पचास-साठ सौन चर रहे थे। रमेसरराम ने मुझ को एक छोटे में दरख्त पर चढ़ कर तमाशा देखने का संकेत किया। जब मैं पास के छायक ढाक के तने पर बैठ गया तब उन्होंने बायें हाथ में टाटी (हरी पत्तियों की बनी तीन फीट की हलकी टाटी जिस के बीच में देखने के लिए दो छोटे सुराख बने रहते हैं और दाहिने हाथ पर बाज को बैठाये हुए टाटी की ओट में ढुक कर बतों के पास जाने लगे। सधा हुआ

बाज फौरन समझ लिया कि उसे शिकार पर फिर उड़ना है। बतों के स्वर को सुन कर उसने शायद यह भी जान लिया था कि उसे कौन शिकार करना होगा। मैं दरख्तसे देख रहा था। करीब ४० गज की दूरी से रमेसर राम ने टाटी के ऊपर हाथ करके बाज को उड़ने का संकेत किया। जैसे शशकपर तीर की तरह उसने हमला किया था, वैसे ही बतों पर भी जमीन से सटा सटा तीर की तरह जाने लगा। मेरी नजर भी उसके साथ साथ दौड़ी दौड़ी चली जा रही थी। एक निकटतम बत के पास पहुँच कर वह जरा ऊपर उठा, और फिर बत के सर पर पहुँच गया। उसके दोनों चंगुल खुले और बत की उठी हुई गरदन और सर पर पड़ गये। सब सौन तो उड़ गये, पर पकड़े गये बत और बाज में द्वन्द्व युद्ध शुरु हुआ। बत के दोनों डखने फट फट करके बाज के ऊपर चटकन की तरह पड़ने लगे, पर क्रोध की मूर्त्ति बना हुआ बाज वैसे ही चिपटा हुआ, डखनों को खोले हुए बत को छापे रहा। भोजपुरी में जो कहावत सुनीथी कि 'बत के चटकन अहीर के पटकन (बतक के डखने की मार और अहीर की लाठी की मार दोनों बराबर है) वह आज आंखों देखने को मिला। कभी बाज बत के नीचे गिर जाता और बत दोनों डखनों को फटफटा कर भागने का प्रयत्न करता, तो कभी बाज बत के ऊपर होकर, घुटने के बल बैठ कर अपने पाँवों को लम्बा कर देता, मानों बत के डखनों की मार से अपने को बचा रहा हो। मैं इस युद्ध को देख कर दो पहलवानों की कुश्ती से भी अधिक आनंद ले रहा था। मुझे विश्वास हो गया कि यदि बतक को गरदन और सर न पकड़े गये होते तो बाज को हार खानी पड़ती। फिर चंगुल का नाखून' जो बत की आंख में घस गया था, उसको और बेहाल कर दिया

था। इतने में रमेसरराम दौड़ते हुए युद्धस्थल पर पहुँचे और झट से बत के दोनों डखनों को पकड़ कर चटचट तोड़ डाले। फिर पूर्ववत रक्त पिला कर बत को उसके चंगुल से छुड़ाया। वहाँ से हम दोनों फिर अपने पूर्व स्थान पर आकर ओसा फिर पर बैठ गये।

मैंने रमेसर से कहा, "चलो, अब कितना शिकार करोगे ?"

रमेसर राम ने कहा, "बस अब चलतानी। लइकन के आ जाये दीं" (बस अब चलता हूँ लड़कों को आने दीजिये।) यह कहकर उन्होंने अपने दाहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ठ के शिरों को एक में मिला कर अपने मुँह में डाला और कदली पत्र की झफील से भी कड़ी झफील बाली। दो तीन बार स्वर देने पर दूसरी ओर से भी वैसी ही आवाज सुनाई पड़ी। मैं समझ गया कि लड़कों के बुलाने के लिए यह संकेत था। मेरे थके मन को सान्त्वना मिली। इतने ही में एक दूसरा लमहा दिखलाई पड़ा। वह मैदान में आकर खड़ा हो गया। रमेसरराम ने फिर बाज को छोड़ दिया। पर इस बार एक ऐसी दुर्घटना घटी कि रमेसरराम को ही नहीं मुझे भी पश्चात्ताप और मोह उत्पन्न हुए बिना नहीं रहा। बाज को देखते ही खरहा भाग चला। जैसे ही मैदान में गड़े हुए एक खूँटे के पास से वह गुजरा वैसे ही बाज का एक चंगुल तो अंदाज में गलती हो जाने के कारण उसकी पीठ पर न पड़कर खूँटे पर पड़ा, पर दूसरा चंगुल खरहे की पीठ को पकड़ लिया। खरहा तेज भागा जा रहा था। भागनें की तेजी के कारण बाज का एक पाँव उखड़ कर उसकी पीठ पर लगा हुआ चला गया, और दूसरे पाँव के साथ बाज उस खूँटे से नीचे लटक पड़ा। पर अब भी उसका पंजा खूँटे को पकड़े ही था, और उसके क्रोध की सीमा

दुगुनी बढ़ गई थी। रमेसरराम तो बाज़ की यह दशा देख उसे गोद में उठा रोने लगे, पर मैं प्रयत्न करके भी आंखों से आंसू नहीं निकाल सका। अब उनके लड़के भी आ गए थे। उन्होंने दो चार तीतरों का शिकार किया था। बाज की दशा पर सभी दुखित हुए। सबों को भय हुआ कि बाज की कीमत के रुपये मालिक कहीं इनसे वसूल न करें। फिर भी एक लड़के को बाज देकर उन्होंने उसे मेरे साथ घर जाने का आदेश दिया और दो लड़के सांभर की लाद खोल निकालने बैठे। पर रमेसरराम बन्दूक लेकर घायल चीतल को ढ़ूँढ़ निकालने के मोह को संवरण न कर सके। शिकारी की भी धनिकों के धनकी तरह अधिकाधिक शिकार पाने की चाह होती है। मैं रमेसरराम के लड़के के साथ घर चला। रास्ते में एक जगह कई तीतर चरते हुए दिखलाई पड़े। वधिक ने गमछा में बँधे हुए घायल बाज को एक तरफ रख दिया और अपने जोर्रा को सँभाल कर तीतरों पर छोड़ा। पर तीतर कान्ना काट कर निकल गये और जोर्रा पास के दरख्त पर जा बैठा। तब व्याधा ने झोले में रक्खे मांस के टुकड़ों में से एक पर लगा हुआ मांसपिंड निकालकर बांये हाथ के अंगुस्तदान को जोर्रा की ओर दिखाते हुए उस मांसपिण्ड को उसपर रक्ख-रक्ख कर 'आव 'आव' कह जोर्रा को बुलाने लगा। इस क्रिया को पत्ती पालन कला में 'हंकबा बुलाना' कहते हैं। जोर्रा भूख पर था, उसने दो एक बार अपनी भूख के प्रलोभन को अपनी वन स्वतन्त्रता के विरुद्ध रोका, पर आगे नहीं रोक सका। वह दरख्त से उड़ा और अंगुस्तदान पर रक्खे हुए मांस पिंड पर चिपट गया। इसी भूख के प्रलोभन के पीछे तो संसार आज दास है। घर पहुँचते पहुँचते ग्यारह बज चुके थे।

संध्या समय नहाने के पूर्व मैंने टोकड़ी, फावड़ा और झाड़ू लेकर गाँव के दो एक स्थलों की सफाई की। रात को बट वृक्ष के नीचे जब गोष्ठी सभा बैठी, तो इस घटना की चर्चा छेड़कर कौलेसर राम ने सर्वसम्मति से यह पास कराया कि कल गाँव के सभी गन्दे स्थल साफ किये जाय। कल कौलेसर राम चरखा लाने शहर जायगें, उनके वापस आने तक मैंने अपना कुछ समय इन पासियों के साथ शिकार के अध्ययन में देना निश्चय किया।

पसिया के टोला,
१२—६—४३

प्रात: काल पहाड़ के नीचे तीतरों के चरने वाले स्थल पर झूटियों के बीच के मैदान में तीतर फसाने वाला जाल लगाया गया। तीतर का जाल? 'बांस के पतले फट्ठों के बने हुए दो वर्ग गज के चंचरा के प्रत्येक जोड़ पर घोड़े के बार के बने हुए सरकवासी (सरकने वाली गाँठ) के फन्दे असंख्य संख्या में बने होते हैं जो सदा विच्छू की टूँड़ की तरह ऊपर खड़े रहते हैं। इस ठटरे के बीचोबीच तीतर का एक पिजड़ा ठटरे से बँधा रहता है जिसके भी चारो ओर ऐसे ही फन्दे लगे रहते हैं, व्याधा ने उसी पींजड़े में एक पालतू और सधा हुआ मस्त तीतर डाल कर ठटरे के बासों पर इस तरह धूल बिछा दिया कि जिससे जंगली तीतरों को फट्ठियाँ दिखाई न पड़े। जाल लगा कर शिकारी मेरे साथ एक धौंध में जा छिपा। वहीं से सीटी देकर अपने पालतू तीतर को बोलाते ही चारों तरफ से अनेक तीतर बोलने लगे और एक एक दो दो करके जाल के निकट जमा होने लगे। उनको देखकर पींजड़े का तीतर उनसे लड़ने के लिए "च्यौंव च्यौंव" और 'तिरकोको तिरकोको" करके ऐसा बोलने लगा मान

युद्ध के लिए वह उन्हें ललकार रहा है। जंगली तीतर भी वैसे ही बोल बोलकर उसकी ललकार का प्रत्युत्तर देने लगे। पर जाल की शंका के भय से या पीजड़े को देखकर पास जाते डरते थे। वे कभी अपने गुलाम सजातीय की ललकार से "च्यॉंव च्यॉंव" करके डखना फुलाये पींजड़े की ओर बढ़ते पर फन्दों को देखतेही सहम कर खड़े हो गम्भीर मुद्रा में गरदन उठा इधर उधर देखने लगते। चार पाँच मिनट इसी तरह आगा-पीछा करने में बीत गये। इतने में दस बारह तीतर जिनमें दो तीन माँदा तीतर भी थीं, जमा हो गये। मादों ने 'पटीलों पटीलों' करके बोलना शुरू किया। उस पर नर तीतरों ने 'तिरकोको तिरकोको' के उच्चारणों से आकाश गुंजा दिया। मानों कुरुक्षेत्र के मैदान में सजी सजाई सेनाओं के बीच दुन्दुभियां बज रही हों। मैं झाड़ी के भीतर छिपा-छिपा एक गुलाम पक्षी के ऊपर जिसके पीछे एक दूसरा मानवबद्ध सहायक था, वन प्रदेश के स्वतंत्र पक्षियों द्वारा होने वाले इन दाव पेचों को—आक्रमण को निहार रहा था और देख रहा था अपने पास बैठे हुए साथी व्याधे की नीच वक्र दृष्टि को, जिसमें निकृष्ट स्वार्थ भावनाएं क्रीड़ा कर रही थीं। वैसे तो सहस्रों बार तीतरों की लड़ाई देख चुका हूँ और स्वयं पाल कर लड़ा भी चुका हूँ पर जो मजा इस संग्राम की तैयारी में मिला वह पूर्व कभी नहीं मिला था। लड़ने वाले पक्षियों में तीतर ही एक ऐसा पक्षी है जो अपने मालिक की ललकार पर प्राण तक देने को तैयार रहता है और लड़ाई के समय प्रतिद्वन्दी की मार से बचने के लिए दाँव-पेच का प्रयोग करता है। जैसे पशुओं में कुत्ता अपनी स्वामिभक्ति के लिए प्रसिद्ध है, वैसे पक्षियों में तीतर।

अभी तक दो स्वतन्त्र नर पहलवान तीतर गुलाम तीतर की ललकार से क्रोधित हो होकर संकट भय की भीतरी उत्प्रेरणा से उस पर आक्रमण करने म आगापीछा कर रहे थे, पर जब उनकी माँदा तीतर आकर, अपना सर ऊपर उठा उठा कर कड़े से कड़े स्वर में 'पटीलो-पटीलो' बोलकर अपने वीरप्रेमियों को हमला करने के लिए बढ़ावा देने लगीं तब वे अपनी कामान्धता के कारण अपनी वीर पत्नियों के सामने बल का परिचय दिये बिना नहीं रुक सके। तुरत संकट भय को भुलाकर गुलाम तीतर से लड़ने के लिए आगे बढ़े। संसार में नर की वीर भावना अपनी मादा के सामने कितने अधिक रूप में जाग्रत हो जाती है इसका लिखित उदाहरण तो मनुष्यों के इतिहास में बहुत पढ़ चुका था और व्यावहारिक रूप में भी कई देख चुका था। माँदा और भूख के माध्यम से पशु पक्षियों की लड़ाई अपने लड़कपन से देखता और खेलता भी आया हूं, पर अपनी प्रेयसी की ललकार पर स्वाभाविक रूप में पक्षियों के मर मिटने के उदाहरण को आज ही अपनी आखों से देख पाया हूँ। किसी कवि की कही हुई "जाहिर ये जग इश्क कियो, मुनियां पर आशिक लाल लड़ैं" की लाइन स्मरण हो आई।

चार पाँच जंगली तीतर आगे बढ़े और पिंजड़ा के पालतू तीतर पर वार करने लगे। पास वाले और तीतर भी आगे बढ़े। मादीनों ने भी आगे बढ़ना शुरु किया-रणभेरी देते हुए। अब उनको भावी संकट का भय जाता रहा। सभी संग्राम में पागल होकर इधर उधर जाल पर कूदने लगे। बस किसी का फंदे में सर पकड़ गया तो किसी का पाँव, किसी की अंगुली ही बँध कर रह गई। तुरन्त ही चार पाँच तीतर फदफदाने और आर्तस्वर करने लगे। शिकारी

दौड़ा और उन्हें पकड़ कर डेली में रख दिया। दूसरी जगह भी जाल लगाया गया पर इस बार तीतर नहीं बझे।

इसी तरह लवा के भी जाल थे। पर वे अधिक बारीक और उनके फंदे अधिक छोटे थे। लवों का पिंजरा नर मादा के एक साथ रहने का तीन या पाँच की संख्या में बना होता है। तीन वाले में एक मादा और पाँच वाले में दो मादापाली जाती हैं। वहाँ सभी नर आपस में अपनी मादाओं के स्वर पर प्रतिद्वंदिता करते हैं। कोई कोई तीतर के शौकीन नर-मादा तीतर की जोड़ी भी पालते हैं। पालतू लवा के पांजड़े को भी तीतर के पींजड़े की तरह जाल के बीच में रख कर तीतर की तरह लवा को भी फसाते हैं, पर लवा तीतर की तुलना में अधिक फंसते हैं। इन दोनों तरह के शिकारों को दो घन्टे में देख कर मैं घर चलने के लिए तैयार हो गया कि इतने में सोभुवा (रमेसरराम का छोटा लड़का) पहलवान मर्द वाले शिकरे को बझाने के लिए सभी साधनों को ठीक करके यहाँ आ पहुँचा और शिकरा भी सामने ही के बाँस पर बैठा हुआ दिखाई दिया।

सोभुवा ने कहा, "मालिक, कम्पा तैयार बा। रखते रखते सिकरा गिर परो। ईर्चीका सा ठहर के इहो सिकार देखि लीहीं।" (स्वामी कम्पा तैयार है। रखते ही रखते शिकरा बझ जायगा। टुक ठहर कर इस शिकार को भी देख लीजिये)

मुझे आज के शिकार में कोई खास मजा नहीं आ रहा था। फिर भी उसके बाल सुलभ आग्रह को टाल नहीं सका। तुरन्त ही एक एक हाथ के लम्बे दो कम्पों (बांस की पतली सींके) में लासा (पीपल के कच्चे गोंद को निकाल कर जरा सा कड़ू तेल के साथ आग पर पका लेने पर चिड़िया बझानेवाला लासा बन जाता है) लसौटा से

निकाल कर लगाया गया और उन्हें सनी हुई मिट्टी की गोली के सहारे सवा बित्ते की दूरी पर खड़ा करके बीच में खूँटी के सहारे एक मूसिका बाँध दी गई। कम्पा लगा कर सोभुवा मेरे पास आ बैठा। सामने बांस पर बैठा हुआ पट्ठा श्येन उस कूदता हुई मूसिका को निहारने लगा। दो चार मिनट बाद इधर उधर देख कर वह उड़ा और पर बाँध कर मूसिका पर झपटा। उधर चंगुल म मूसिका पकड़ी गई और इधर दोनो कम्पे दोनों डैनों में सट गये। शिकरा वहीं गिर गया। सोभुवा ने दौड़ कर उसे पकड़ लिया और कम्पा छुड़ाकर उसके दोनो आखों की पपनियाँ सूई तागे से मिला कर एक में सी दी गईं। फिर पतली डोर से बँधी चमड़े की दोवाली उसके दोनो पाँव में बांध दी गई। आखो के बन्द होते ही शिकरा फटफटाना भूल गया। वह पालतू पक्षी की तरह सोभुवा के हाथ पर बैठ गया। रह रह कर उड़ने का प्रयत्न जरूर करता था, पर तुरत ही शान्त हो जाता था। दस बजे के करीब घर आया। रास्ता में सोभुवा अपने विजय की उमंग में तरह तरह की बातें करता आया। नहा धोकर पाठशाला में आये हुए टोले भर के लड़कों को बैठाकर पढ़ाई का श्रीगणेश आज किया। बच्चों को कुछ मौखिक शिक्षा देकर नये नये खेलों की बातें कर उनका मनोविनोद किया। इस तरह दो घन्टे रोक कर उन्हें खाने की छुट्टी दी। सन्ध्या समय भी थोड़ी पढ़ाई हुई। कल के निश्चय के अनुसार पासियों ने गाँव की सभी गन्दी जगहों को साफ किया। उनके साथ मैं भी झाड़ू टोकरी लिए एक काम करनेवालों में था।

पसिया के टोला।

१३-१-४३

आज मैं शिकार में नहीं गया। सुअराखाह में किसो हाकिम के आगमन में हाँका होने वाला है। गाँव के सभी पासी जमीन्दार की ओर से पकड़ कर वहाँ भेजे गये हैं। जमीन्दार हाकिम को बोला, खेलाने में एड़ी चोटी का पसीना एक कर रहा है। मैं -
नीचे बैठा बैठा रवि बाबू की गीतांजलि पढ़ रहा था दस कदम दूसरी ओर अपने साथी मंगरा से बातें कर रहा था। उसकी बातें ऐसी थीं कि मैं उन्हें ध्यान से सुनने और डायरी में अंकित करने के प्रलोभन को रोक नहीं सका।

सोभुवा, "हम तो उबिआइ गइली मंगरा। (आजिज़ आ गये)

मगरा हंस कर, "त दूसर करिए का सकत बाड?" (कर ही क्या सकते हो?)

सोभुवा, आखें तरेर कर, "करेके ऊ कइ देखाइं कि देखि परोसी झल मारे, बाकी..........(करने को तो मैं वह कर दिखाऊँ कि पडोसी देख कर आश्चर्य करे, लेकिन·········)

मंगरा, "सुनताड़, सोभू भाई, जे कहीं ना हारे से अपना घरे ही नू हारेला"। (सुनते हो सोभू भाई, जो कहीं नहीं हारता, वह अपने घर में ही हारता है।)

सोभुवा, "चिन्ता की मुद्रा में, अपने से औंय? हाँ ·····अपने से? ठीक कहताड़े रे, अपने करते रवनओ नू हारल। घर के भेदिया लंकादाह एही से नू कहले बा। (अपने वालों की करतूत से ही तो रावण भी हारा, इसी से तो घर का भेदिया लंकादाह कहा गया है।)

इतने में आकाश से एक हवाईजहाज फर्र फर्र धुआं छोड़ता हुआ जाता दिखलाई पड़ा। दोनों उधर देखने लगे। सोभुवा ने लाल लाल आखें करके कहा, "हऊ देखु, एगो सरवा होदे उड़ल [illegible]। (वह देखो, एक साला वहाँ उड़ा चला जाता है) मंगरा [illegible] देखता हुआ चुप रहा। सोभुवा उधर ताकता हुआ कुछ को निहार[illegible]हा। फिर ठंडा सांस लेकर कहा, "मंगरा, ते अइसं उड़ उड़ा और पर (तुम इस तरह उड़ सकते हो)?
पकड़ी गई और [illegible] ही निहारते हुए, 'आ तू सोभू भाई?' (और तुम सोभू भाई?)

सोभुवा ने गर्व स्वर में कहा, "६ महीना का सिखला में जो उड़ेमें येह फिरंगिन के नाक ना काटीं, त हमार नाँव ना, बाकी (आह के साथ) जहाज उड़ावे के बात के कहो, ओकरा के देखे तक हमनी का ना पाईंजा। हमार चलीत न धनिकहन के गटई बटेर अस मरोरी के मार देतीं। (६ मास की शिक्षा में मैं जहाज चलाने में इन अंग्रेजों की नाक न काट लूं, तो मेरा नाम नहीं। किन्तु जहाज उड़ाने की शिक्षा पाने की बात तो दूर रही, जहाज को निकट से देखने तक की यहाँ इजाजत नहीं है। यदि मेरा चलता तो मैं इन धनिकों का गला मरोड़ कर बटेर ऐसा मार डालता।)

मंगरा ने मेरी ओर इशारा करके उसे सावधान करना चाहा, पर वह कहता ही गया, "हमरा साँच कहे में केहू से डर भय नानू लागे।" (सच्ची बात कहने में मुझे किसी से डर भय नहीं लगता। इतने में जहाज दूर चला गया। दोनों फिर छाये में आकर बैठ गए। सोभुवा ने गम्भीर होकर कहा, चले राजा सिपाही के खेल खेलीं जा।" (चलो राजा सिपाही का खेल खेलते जाँय।)

मंगरा ने आखें मटकाकर कहा "बाबू बानी देखि लेबि बाबू"। (बाबू यहीं बैठे हैं, देख लेंगे) सोभुवा उसकी बातों को अनसुनी करके दूर आकाश में चिड़िया के बराबर उड़ते हुए जहाज को देखता हुआ गम्भीर मुद्रा में बोला, "के बा हो ?" —(कौन है ?)

मंगरा प्रहरी के स्वांग में खड़ा हो हाथ जोड़कर बोला, "सरकार।" सोभुवा, "सेनापति के बोलाउ।"

मंगरा, "बहुत अच्छा कहकर परिचारक के मुद्रा में दस कदम आगे जाकर खड़ा हो गया। और वहाँ डण्डे को तलवार बनाकर बगल में लटकाये हुए सैनिक की मुद्रा में पाँव पटकते हुए सोभुवा के सामने आकर एड़ी पटकर खड़ा हो, फौजी तरीके से सलाम किया।

सोभुवा ने राजा की मुद्रा में धीरे से कहा, "केह सेनापति ?"

सेनापति, "सरकार।"

राजा, "सेना तैयार बा ?"

सेनापति, "जी, सरकार।"

राजा—"अच्छा त धनिकहन के जुलुम से परजा तबाह हो गइल। पहिला कातिक के किरन फूटे के पहिले राज भर के सब धनिक हा जेमें गिरफ्तार हो जासु।" (धनिकों के जुल्म से प्रजा तबाह हो गयी। पहली कातिक को सूर्य्योदय के पूर्व सब धनिक गिरफ्तार कर लिये जाँय।) सेनापति "बहुत अच्छा' कहकर सलाम करके एड़ी पटक कर घूमा और सैनिक चाल से चलने लगा कि इतने में फिर पुकार हुई, "एक बातअवरू सुनी" सेनापति फोरन घूम पड़े। सामने आकर सलाम करके खड़े हो गये सोभुवा ने कहा, "सिक्ख

रेजिमेण्ट अवध जाय,, पठान पंजाबी बिहार में,, राजपूत पंजाब में आ गोरखा दक्षिण में समझलीं ? ”

सेनापति, “जी सरकार, लेकिन ·······।’

राजा, डांटकर “समय चाहतानी ? अच्छा, १५ कातिक के देस भर के सब धनिक सूर्योदय के पहिले गिरफ्तार हो जासु, अब ठीक बानू ? ”

सेनापति सलाम करके जाने लगे कि इतने में फिर पुकार हुई। सेनापति फिर लौट कर सामने आकर के खड़े हो गये।

राजा, “एक बात के और आज्ञा सुनले जाईं अवरू लेकिन ई गुपुत राखब। गिरफ्तारी के बाद सब लोग परजा के सतवला का कसूर में सुरज डूबे का पहिले बंदूक से मार डालल जासु। समझलीं ? ” (सेनापति खड़ा रहता है।) (एक बात की और आज्ञा है। उसे भी सुनते जाइये। किन्तु इसको गोप्य रखियेगा। गिरफ्तार हो जाने के उपरान्त सब धनिक प्रजा का रीक्त शोषण करने के अपराध में सूर्य्यास्त के पूर्व्व मार डालें जाँय समझें ?)

राजा डांटकर, “ए में आगा पीछा का सोचले बानी ? यह निसचरन के बे मरले परजा सुखी ना हो सकी। आज का ४६ वां दिने एक भी धनिक अगर देस भर में देखि पड़ी त रउआ सेनापति के पद से हटा दीहल जाईब। ” (इसमें आप आगा पीछा क्या सोच रहे हैं ? इन निश्चरों को विना मारे प्रजा सुखी नहीं हो सकेगी। आज के ४६ वाँ दिन देश में एक भी धनिक न दिखलाई पड़े। यदि दीख पड़ेगा तो आप अपने सेनापति के पद से हटा दिये जांयगे।)

सेनापति सलाम करके दश कदम चलता है और फिर डंडा फेंककर हंसता हुआ सोभुवा से लिपट जाता है। सोभुवा भी हसते

हसते पृथ्वी पर लोट जाता है। टुक स्वस्थ होकर सोभुवा ने धीरे से कहा, "आज जो हमरा पास सेना रहितत करिअरका डिपटी आ जमीदारवा के सुअराखोह से जियत न जाये दीहतीं। (आज जो हमारे पास सेना होती तो इस काले डिप्टी को और इस जमीन्दार को मैं सुअराखोह से जीते जी न जाने देता।)

मंगरा ने कहा, "अरे काहे एतना रोसि आइल बाड़। उहो लोग त तोहरे देस के आदमी हवन (क्यों इतना क्रोध कर रहे हो, वे भी तो तुम्हारे ही देश के आदमी हैं न ?

सोभुवा गम्भीर हो उठा। उसकी आखें रोष के मारे लाल हो गईं। वह मुट्ठी बाँध कर काँपने लगा। कुछ ठहर करउसने दांत पीसते हुए कहा, "हमरा देस के होइ के परदेसी के जे मदद करेसे कुत्ता हटे। अइसने आदमी रुपया का पाछा सब करम कर सकताड़न स (अपने देश का होकर जो विदेशियों की देश के प्रतिकूल मदद करे, वह कुत्ता है। ऐसे मनुष्य स्वार्थ के पीछे क्या नहीं कर सकते ?)

सोभुवा चिन्तित हो आकाश की ओर देखने लगा। मंगरा बगल में बैठा चुपचाप उसको ताकता रहा। सोभुवा ने आकाश से नजर हटा कर मंगरा के कन्धे को झकझोर कर कहा, "जानताड़े ? हमनी के अइसन गरीब के बनवले बा ? इहे धनी बाबू लोग। हमार चलीतत एके राति में देस से धनी लोग के नेस्त नाबूत कर देतीं। गरीबन के धन लेके ई लोग मोटर चढ़त बा, रंडी राखत बा, लैस करत बा। अजुए देखु, एक आदमी से बाघ पिटवावे खातिर सऊँसे टोला धइके गइल बा। रोज मजूरी कुछ ना मिली। बाघ केहू के मारि खाई त कुछ ना होई। बाकी डिपटी बाबू के सिकार खेले के चाहीं।" (जानते हो हम लोगों को किसने ऐसा गरीब

बनाया है। ये ही धनी बाबू लोग। अगर मेरा चलता तो एक ही रात में देश भर के सभी धनिकों का नेस्तनाबूद करा देता। गरीबों का धन हरण करके ये लोग मोटर पर चढ़ते है, रंडियाँ रखते हैं--ऐश करते हैं। आज ही देखो एक आदमी से बाघ मरवाने के वास्ते सारा टोला पकड़ कर ले जाया गया है। रोज मजूरी तो कुछ मिलेगी ही नहीं। यदि बाघ किसी को मार खायगा तो उसके लिए भी कुछ होने को नहीं। लेकिन डिपटी को शिकार खेलाना जरूर चाहिये।) मंगरे को उसने इतने जोरों से झकझोरा कि वह परेशान हो गया। सोभुवा ने जब जी भर मंगरा को झकझोर कर अपना आवेश शान्त किया तब फिर मंगरा के पास बैठ कर शान्त स्वर में कहने लगा, "भाई मंगर! ई कइसन भगवान हवन जे गरीबन के एतना दुख देले बाड़न? का हमनी का मोटर नइखीं चला सकत। हवाई जहाज नइखीं उड़ा सकत? आज लड़ाई में त हमनो का सब कइके देखाइ देलीं तबो हमनी का गरीबे बानी। दाना दाना के तरसत बानीं। गरीब के न्याव कतहीं नइखे भैया!" (भाई मंगर! यह भगवान कैसे हैं कि हमलोगों को इतना दुःख दे रहे हैं? क्या हमलोग मोटर नहीं चला सकते? क्या हमलोग हवाई जहांज नहीं उठा सकते? आज इस लड़ाई में तो हमलोगोंने सब करके दिखा दिया। तब भी हम गरीब ही हैं। दाना दाना के लिए तरस रहे हैं। गरीब के लिए न्याय कहीं नहीं है।)

इतना कह कर दीर्घनिश्वास लेता हुआ सोभुवा उठा और कल के पकड़े हुए शिकरे को डाली से खोल कर हाथ पर बैठा चुमकारते हुए बोला, "देख मंगरा, यह सिकरा के आंखि सी के पोस मनावल

जातबा हो। ओसहीं नू ई धनी लोग हमनो के आंखि में पट्टी बांधि के हमनी से सिकार खेलता।" (जिस प्रकार इस शिकरे की आंख सोकर अंधा बना पालतू बनाया जा रहा है और तब इससे शिकार खेला जायगा वैसे ही हम गरीबों को भी ये धनिक वर्ग आखें बन्द करके अंधा बना कर हमीं से हमारा शिकार खेल रहे हैं।)

फिर रुक कर उसने कहना शुरू किया, "आजु अगर बाबू बीच में ना पड़ितन त हम त जमींदार राम के काम तमाम कर देतीं। तेही बताउ, बाज के चंगुल त असकते खूंटा पर पड़ि गइल जवना से ओकर गोड़ उखड़ि गइल। एह में बाबू के कवन दोस रह कि जमींदार उनका के अतना गाली फजीहत कइलसिहा। आ ऊपर से हैन्डनोट के नालिस करेके धमकी देता। परू साल के हकवाँ में जब एही जमींदार बाबू के बनूकि से हमार काका मरि गइलन तब उनका ई बात ना सूझल रहे। तब त टोला के सब पासिन के गोड़परिया करत फिरलन। आज एगो चिरई का मरला पर अतना माई बहिन के गारी देत बाड़न" (आज अगर बीच में पिता जी न पड़े होते तो जमींदार को विना मारे मैं नहीं छोड़ता। तुम्हीं बताओ बाज का चंगुल गलती से खूंटे पर पड़ जाने के कारण उसका पाँव उखड़ गया तो इसमें पिताजी की क्या गलती थी कि इतनी गाली फजीहत की गई। और ऊपर से हैंडनोट की नालिश करने की धमकी दी जा रही है। पारसाल जब इसी हाँका में जमींदार की बन्दूक से हमारे काका की मृत्यु हो गई तब जमीदार बाबू को यह तर्क नहीं सूझते थे। तब तो टोले भर के पासियों के पाँव पड़ते रहे और आज एक चिड़िया के मर जाने से इतना ज्ञान बता रहे हैं।)

सोभुवा का कंठ भर गया। आखों से आँसू गिरने लगे। वह टहल टहल कर धीरे धीरे गाने लगा।

नदिया बहति रहे नदिया बहति रहे ॥
पहाड़न से नीचवा गिरावल गइलि रहे।
कगारन से दूनो फँसावल गइलि रहे।
अरे—हर तरह से सतावल गइलि रहे;
विवस हो पतन के गरवा पड़लि रहे
नदिया बहति रहे ० ॥
एकरा लीलि के पेट सागर भरी,
बड़ नाम ऊ रत्न आकर गही।
मगर केहू पिआसल पानी ना भरी,
नदिया बहति रहे हतक सहति रहे।
नदिया बहति रहे ० ॥
असहीं त जगवा के बड़का छलत बा
कि छोटकन के निगलत चलि जा रहल बा
येही से त सबका खलत जा रहल बा
नदिया रोअति रहे रोइ के कहति रहे।
नदिया बहति रहे ० ॥

अर्थ—नदी बह रही थी, नदी बह रही थी।
पहाड़ों से वह नीचे गिराई गई थी।
दोनों कगारों से फसाई गई थी।
वह हर तरह से सताई गई थी।
विवश हो पतन के गले पड़ी हुई थी।
नदी बह रही थी ०। नदी बह रही थी।

इस नदी को लील कर सागर अपना पेट भरेगा
और रत्नाकर की बड़ी उपाधि ग्रहण करेगा।
फिर भी कोई प्यासा मनुष्य उससे एक घड़ा पानी भर
कर अपनी तृषा नहीं बुझा सकेगा।
हा! नदी बह रही थी और जीवन के सभी हतक सह
रही थी।

नदी बह रही थी।

इसी तरह तो जगत को बड़े लोग छलते चले जा रहे हैं
और छोटों को निगलते जा रहे हैं।
इसीसे तो आज सबको वे खल रहे हैं
नदी रो रही थी और रो रो कर यही कह रही थी।

नदी बह रही थी।

गीत समाप्त होते होते सैकड़ों लड़के बटवृक्ष के नीचे जमा हो गए। पाठशाला का समय हो गया था। मैं उठकर उनको ईशवन्दना और बन्दे मातरम् का गान टूटे फूटे कंठ से स्वयं गाकर सुनाया। सोभुवा मंगरा के साथ मेरे निकट आ बड़े ध्यान से सुनने लगा। जब तक मैं ईशवन्दना का अर्थ सुनाता रहा तब तक सोभुवा आखें मटका मटका कर ईशमहिमा की बातों पर अविश्वास की हँसी हँस रहा था। परन्तु जैसे ही मैंने बंदेमातरम् गान का अथ समझाना शुरु किया और 'की बोले मां तुमी, अबला' का अर्थ बताया, वैसे ही लाठी भाँजता हुआ सोभुवा लड़कों के सामने कूदने लगा और बार-बार 'की बोले मां तुमी अबला' गाने लगा। फिर भोजपुरियों का राष्ट्रीय फाग

बाबू कुँअर सिंह तोहरे राज बिन अबन रँगइबों केसरिया॥
इतते घेरि अइलैं फिरंगी उतते कुँवर दूनो भाई,

गोला बरूदि के चलेली फिचुकारी,
बीचवा में होत बा लड़ाई ॥
बाबू कुँअर सिंह तोहरे राजबिनु
अब न रंगइबो केसरिया ॥
बाबू कुँअर सिंह ० ० ॥

(हे वीर बाबू कुँअर सिंह तुम्हारे राज्य के बिना अब केसरिया साफा नहीं रंगाउँगा। इधर से तो फिरँगियों (अँगरेज सेना) ने आ घेरा और उधर से दोनों भाई बाबू कुँअर सिंह अपने सैन्य दल के साथ आये गोला और बारुद की पिचकारी चल रही है और बीच में जम कर लड़ रहे हैं। संग्राम हो रहा है)

मैं उनके देश-प्रेम की इस उत्कट भावना को देख कर मन में कहने लगा, "ऐसे नौनिहाल वीर, देश प्रेमी इस बीहड़ जंगल में अदेखे मुरझा रहे हैं ! उन्हें अपनी श्रद्धा की पुष्पाञ्जलि भारत माता के चरणों पर अर्पित तक करने का अवसर नहीं मिलता। देश के नेताओं का क्या यह कर्त्तव्य नहीं कि देश के ऐसे व्यक्तियों को ढूंढ कर निकालें और उनको छिपी हुई प्रतिभा को विकसित करने का प्रबन्ध करें। लेकिन यहाँ के यथाकथित छोटे लीडरों में अब तो स्वार्थवश ऐसी क्षुद्र मनोवृत्ति जगने लगी है कि ऐसे नौनिहाल प्रतिभा वालों को वॉलटियर की सूची से आगे बढ़ाने में वे किसी निजी स्वार्थ की हानि देखते हैं। फिर राष्ट्रीय संस्थाओं के रूपए तो संगठन, चुनाव, आदि दूसरे कामों में पानी की तरह बहा दिए जाते हैं, पर इन नौनिहालों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करने में प्रचुर द्रव्य नहीं व्यय किया जाता। मैंने सोभुवा को पास बुलाकर कहा, "सोभू, तुम्हारी बाते मैंने सुनी है। नाटक भी देख ही लिया

है। फिर तुम्हारा वीरभाव भी देख ही रहा हूँ। तुम भारत माता की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हो। तुम मुझसे मैत्री करके अपना ज्ञान बढ़ाओ और सेवा का तरीका सीखो।"

सोभुआ अपनी प्रशंसा की बातें सुनकर लजा गया। पर सुअवसर को हाथ से जाने नहीं दिया। हँस कर कहा, "सुनीला रउरा कांग्रेसी हईं। गाँधी जी के चेला भी हईं। रउरा किताबो लिखी ला। भला रउरा से हमार दोस्ती के नाता कइसे निबही। हां, हमार गुरू बने के सकारीं त हम रउरा से पढ़े सुरु करी। (सुनता हूँ कि आप कांग्रेसी हैं। गाँधीजी के शिष्य भी है। आप किताब भी लिखते हैं। भला आप से मेरी मैत्री का सम्बन्ध कैसे निबहे गा। हाँ मेरा गुरू बनना स्वीकार करें तो मैं आप से पढ़ना शुरू करूँ।)

मैंने हंसकर कहा, "अच्छा जैसे भी हो, तुम मुझसे निर्भीक होकर अपने मन की सभी शंकाएँ कहा करो। हम लोग मिल कर उस पर विचार करेंगे। मैं देखता हूं कि तुम में नाट्यकला की भी प्रतिभा है। तुम में उसकी भी वृद्धि होनी उतनी ही आवश्यक है जितना कि देश सेवा आदि के कार्य-क्रमों का ज्ञान प्राप्त करना। केवल अपनी नाट्य कला के सदुपयोग से भी तुम देश की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हो।"

सोभुआ ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया तारीफे करब कि कुछ सिखइबो करब ?" (तारीफ ही कीजियेगा कि कुछ सिखाईयेगा भी।)

मैंने पूछा, "तुम कहाँ तक पढ़े हो ?"

सोभुआ, "पाँच वर्षहो गईल कि मिडिल पास कईलीं। कितनो चहलीं आगे पढ़ीं बाकी बाबू खरचा के पेचे आगे ना पढ़ा सकलन।

(पाँच वर्ष होते हैं मैंने मिडल पास किया। कितना भी चाहा कि आगे पढ़ूँ पर बाबू रूपये की कमी के कारण आगे नहीं पढ़ा सके।) उसको गांधी जी की आत्मकथा पढ़ने के लिए देकर पाठशाले का काम शुरु किया।

पसिया के टोला
१४-७-४३

संध्या समय समाचार मिला कि आज भी हाँका जारी रहा। पर कल और आज में कोई बड़ा सावज (शिकार) नहीं निकला। केवल दो चीतल मारे गए। कल उरैयाखोह के हाँके के बाद शिकार समाप्त होगा।

पसीया के टोला
१५-३-४३

मेरे बैठक के सामने वाले बट वृक्ष से जरा हट कर नीचे के उतार पर कोल का एक घर है। वहीं से एक कोल-युवती आकर मेरा चौका-वर्तन कर दिया करती है। उसके सम्बन्ध में कुछ लिखने की बात डायरी लिखते समय नित्य मैं सोचा करता हूं; पर एक न एक कारण के सामने आ जाने से इस इच्छा को आज तक टालता ही रहा हूँ। आज कुछ ऐसी घटनायें घटीं कि उनको यदि डायरी में नहीं लिखता हूँ तो अपनी सच्ची बात लिखने की प्रतिज्ञा का उलङ्घन करता हूं।

युवती कोलिन का नाम बुधिया है। वह अपने माता-पिता की एक मात्र सन्तान है। आयु उसकी १७-१८ वर्ष से कम न होगी। वैसे तो कोलों का जातीय रंग काला होता है और बुधिया के माँ-बाप इसके अपवाद भी नहीं हैं। पर बुधिया न मालूम कैसे काबुल

में गधा की तरह सती रम्भा आदि सुन्दरियों के समान अनुपम सौन्दर्य पा गयी है। उसके मझोले कद के छरहरे गोरे बदन पर अलौकिक सुघराई सदा झलका करती है। कमर में एक हाथ चौड़ी छींट की मैली घघरो धारण करके उन्मुक्त कुच, उन्मुक्त बदन, उन्मुक्त मन सरलता को मूर्ति बनी बुधिया तितली की तरह स्वच्छन्द घूमा करती है और कहीं भी सामाजिकता का रंग उसके व्यवहार या शरीर या वार्ता में नहीं दिखलाई पड़ता। प्रकृति ने अपनी सरलता के सबो गुणों को उसमें भर करके उसे इस निर्जन जंगल में असभ्य दलित नर नारियों के बीच स्वच्छन्द विचरण करने को शायद इसलिए छोड़ रक्खी है कि मानव जाति को आज की जड़वादी सभ्यता के समय भी प्रकृति की सहज सरलता और नग्न सुन्दरता की जानकारी हो जाय। बुधिया अपने शरीर की अर्ध नग्नता या तद्‌जनित संकोच को किसी भी रूप में अनुभूत नहीं करती और न वस्त्र पहने नर नारियों से वार्ता करते समय ही किसी तरह वह झेंपती या लज्जित होती है। ऐसी है इस वन प्रदेश की वन-देवी बुधिया। जब से मैं यहाँ आया हूँ मेरे पाकशाला की इन्चार्ज बुधिया ही है। वह आवश्यकतानुसार बाजार दिन को मुझसे रुपया ले साहबगंज बाजार से सामान खरीद लाती है। समय से बर्तन मलकर चावल दाल धोती तरकारी काटती, मसाला पीसती, आग जलाती और अदहन तैयार हो जाने पर मुझे बुलाकर पाक बनवाती है। पाक बनाने में जब कोई त्रुटि देखती है तो जैसे कोई गुरु अपने शिष्य को प्रेम पूर्ण प्रतारणा के साथ शिक्षा प्रदान करता है वैसे ही बुधिया मुझे भी पाक शास्त्र की त्रुटियों को बिना किसी संकोच या हिचक के समझाती है। इन सेवाओं के अलावे मेरे प्रति

कितनी बड़ी ममता वह अपने हृदय में रखती है इसका ज्ञान मुझे आज तक नहीं था। पर आज दश बजे पाठशाला के लड़कों को छुट्टी दे जब नहा धोकर मैं घर लौटा तो टोला भर में कोई नहीं था। सर्वत्र सन्नाटा छाये हुए था, बुधिया के मां बाप भी नहीं थे। कल हाँका में पकड़ कर जो वे ले जाये गये सो आज तक वापस नहीं आये। जब मैं बट वृक्ष की टहनियों से भींगी धोती बाँध कर बाल झारने लगा तो बुधिया ने पुकार कर कहा "बाबूजी आओ अदहन तैयार है।"

मैं शीशा कंघी रख कर चूल्हे के पास पहुँचा। और कहा, "कई बार कहा कि तुम ही भात बना दिया करो। मैं छूत नहीं मानता। पर तुम मानती नहीं। नाहक ही इस गर्मी में मुझे परीशान करती हो।"

बुधिया कोई उत्तर न देकर भात पसाने के लिए दशपनाह, चिमटा और तश्तरी मेरे आगे बढ़ा कर लकड़ी लाने चली गयी। जब तक वह लकड़ी लेकर वापस आयी तब तक भात तैयार हो गया था। उसे पसा कर जब मैं बटुआ को नीचे रखने लगा तो बुधिया ने मुस्कुरा कर मेरी गलती की याद दिलायी, "बटुआ हिला कर भात नीचे ऊपर करना भूल गये ?"

मैं भोली लड़की की इस आज्ञा का पालन करते हुए मन में कुछ खुनसाया-सा हो ही रहा था कि दूसरी आज्ञा मिली, "भात हिला कर एक क्षण के लिए बटुआ चूल्हे पर चढ़ा देना कि पानी सूख जाय।"

यह आदेश देकर वह दौड़ती हुई और गुनगुनाती हुई कड़ाही लाने चली गयी। चूल्हे पर कड़ाही चढा कर और उसमें तेल डाल कर

मैंने बुधिया से 'बघार' माँगा तो उसने आदेशात्मक स्वर में कहा, "ठहर जाओ। अभी तेल नहीं जला है।"

मैं चुप हो बुधिया के मुख को निहारने लगा और बुधिया कड़ाही में फटफटाते तेल को देख रही थी। मुझे कहते लज्जा मालूम होती है, पर वचन के अनुसार बाध्य हूं, कि उस समय मैं उसके सौन्दर्य-सागर में गोता लगाने से अपनी आँखों को रोक नहीं सका। इतने में उसका मधुर स्वर सुनाई पड़ा, "यह लो, छौंकर अब इसे कड़ाही में डालो। वह देखो तेल से धुँआ निकलने लगा। पहले डालते तो तेल से गाज निकलने लगता।"

इस व्याख्या को कई बार पूर्व भी मैं सुन चुका हूँ। पर तब भी मंत्र-मुग्ध की नाई फोरन को उसके हाथों से लेकर कड़ाही में डाल दिया हो, खुनसाया नहीं। बुधिया की दृष्टि उधर कड़ाही के तेल में थिरकते हुए जीरा, मिर्च, लवंग आदि पर नाचने लगी तो इधर मेरे नेत्र भी उसकी बड़ी बड़ी पपनियों के बीच नाचते हुए पुतलियों के संग खेलने के सुअवसर को न भूला सके। ठुड्डी पर हाथ रक्खे बुधिया जलते फोरन को देखती रही और मैं हाथ में तरकारी का कटोरा लिये बुधिया को निहारता रहा। अपने इसी स्वार्थ की सिद्धि हेतु तो शायद मैं आज तक उससे यह न सीख सका कि कब तेल जल कर बघार डालने योग्य तैयार होता है और कब बघार जल कर तरकारी डालने के लिए ठीक होता है। और शायद इसी अज्ञात स्वार्थ-सिद्धि के हेतु ही, अब मालूम होता है, खाना बनाने के भार से भी मैं अपने को आज तक मुक्त नहीं कर सका। तुरत ही नवजात पल्लवों के सदृश उस के पतले लाल अधर खुले और स्वर लहरी सुनाई पड़ी, "अब तरकारी डालो बाबूजी! बघार तैयार है। वह देखो, लवंग का बज

बजाना बन्द होकर साँवराई दौड़ गई। कहा था न फौरन काला होने के पूर्व्व ही भाजी पड़ जानी चाहिये ?"

कुछ और सुनने के अभिप्राय से कड़ाही में तरकारी डालने में जान कर देरी करने लगा कि इतने में कुछ रोष भरे स्वर में पुनः आदेश हुआ, "भांजी-डालो न ? बघार जला ही कर छोड़ोगे क्या ?" जैसे ही कड़ाही में तरकारो डाल कलछुली से चलाना शुरु किया कि अभागी–आगबुझ गयी। लाख सुलगाने पर भी नहीं सुलगी फूंकते फूंकते दम घुटने लगा और आखें लाल हो गयीं। थक कर मैं झुंझला उठा। कलछुल पटक कर "भाड़ में जाय तरकारी। आखें फोड़ कर थोड़े ही तरकारी खा सकूँगा" कहता हुआ मैं बाहर निकल कर बटवृक्ष की ओर जा इधर उधर हवा में घूमने लमा। टुक स्वस्थ्य हो जब रसोई के पास पुन: पहुंचा तो देखता क्या हूं कि आग जल रही है और बुधिया चूल्हे के पास बैठी तरकारी चला रही है। मैंने नजदीक जाकर हँसते हुए पूछा, "यह क्या किया बुधिया ? खाना छू दिया ? अब मैं कैसे खाऊँगा ?"

बुधिया को जैसे बिजली मार गई। वह डरी-सी सहमीसी-और पश्चात्ताप की सजीव मूर्त्ति-सी उठ कर खड़ी हो गई उसकी बड़ी बड़ी आखों में आंसू छलछला गये। कहने लगी," आपही ने तो कहा था कि मैं छूत नहीं मानता, नाहक परीशान करती हो ?"

मैं कोई उत्तर न देकर चुपचाप उसे ताकता रहा और वह मेरे उत्तर की प्रतीक्षा में मुझे निहारती रही। क्षण भर बाद बोली— "अभी कुछ बिगड़ा नहीं जरा देरी होगी। बटुआ हटा कर चूल्हा लीपे देती हूं तवा पर आप रोटी सेंक लीजिए। तरकारी तो हाथ

से छू नहीं गई कलछुली से ही चलाया है। वह अछूत थोड़े हुई है? इसीके साथ खालेना। इतना कहकर प्रश्नात्मक दृष्टि से जैसे उसने मुझे निहारा वैसे ही मैंने हँसकर उत्तर दिया, "नहीं बुधिया रहने दे, मैं यही भात खाऊंगा।"

जब मैं भोजन करने लगा तो बुधिया पास बैठकर पंखा झलने लगी। थोड़ी देर चुप रह कर उसने पूछा, "क्यों बाबू, आपको मेरा छूआ हुआ भात खाते देखकर आपके जाति वाले आप से घृणा नहीं करेगें?"

मैंने कहा, "मनुष्य मनुष्य एक है बुधिया! उसमें छुआछूत का विचार कैसा?"

"तब क्यों लोग एक दूसरे का छूआ भात नहीं खाते?"

"जो नहीं खाते वे गलती करते हैं?"

थोड़ी देर चुप रह कर उसने पूछा, "घर पर आपकी घर वाली हैं वह भी छूत नहीं मानती?"

मैंने कहा "हैं। वे पुराने विचार की हैं। छूत मानती हैं।"

उसने पूछा "कै बच्चे हैं बाबू?"

मैंने धीरे से उत्तर दिया, "तीन बच्चे औरतीन कन्यायें हैं।"

कुछ चिन्ता की मुद्रा में बुधिया ने पुनः प्रश्न किया, "क्यों बाबू वह जब सुनेगी कि आपने मेरा बनाया भात खाया तो आप से नाराज नहीं होगी?"

मैंने कहा, "नहीं जी। वह इसको जानती हैं।

"वह भी मेरा बनाया खालेगी?"

कहा, "वह छूआछूत का भेद रखती हैं।"

"और आपका छूआ खाती हैं कि नहीं?"

"खाती हैं।"

"-वाह-वाह वहा-वाह" :कह कर बुधिया खिल खिला कर हसने लगी। इतना हसी कि उसकी हसी से मुझे भी हसी आने लगी। हसती जाती थी और कहती जाती थी। "आपकी घरवाली खूब हैं। बाबू, भेंट होतो पूछती, 'बाबू का बनाया भात खाती हो। मेरा बनाया क्यों नहीं खायेगी ? जब बाबू मेरा बनाया खा लेते हैं और तुम बाबू का पकाया भोजन खाती होतो मेरा छूआ खाने में हरज क्या ?'

मैंने कहा, "चलो तुझे घर ले चलूँ ! वहीं पूछना ! मेरे घर चलोगी बुद्धि ?"

बुधिया जरा गम्भीर हो गयी। कुछ सोचकर बोली। "बाबू नहीं जाने देंगी माँ रोकेगी। आप उनको ही यहाँ बुला लो।"

मैं, "उनके यहाँ आने पर क्या तुम मेरी वैसी सेवा कर सकोगी ? जैसी आज करती हो ?"

उसने आश्चर्य के साथ कहा, "क्यों नहीं करूँगी बाबू ?"

मेरे मुख से सहसा निकला, "स्त्रीप्रेम में डाह जो होती है।" घबड़ा कर बुधिया ने कहा "क्या कहते हैं ? डाह का क्या अर्थ होता है बाबू ?"

मैंने बात टाल कर कहा "कुछ नहीं ?

उसने फिर पूछा, "नहीं बतलावेंगे ? अच्छा जाने दीजिये। मैं जानती हूँ। डाह लड़ने को कहते हैं। मैं उनसे लड़ूँगी नहीं बाबूजी, मैं आपसे कहाँ लड़ती हूँ ?"

मैंने कहा, "नहीं मुझसे तो नहीं लड़ती हो। तुम लड़ाकी लड़की नहीं हो।"

थोड़ी देर तक बुधिया चुप चाप कुछ सोचती रही। मैं भी चुप चाप खाता रहा। सहसा उसने पूछा, "एक बात पूछूँ बाबू?"

मैंने कहा, "पूछो।"

उसने पूछा, "घरवाली आपको वैसा ही प्रेम करती है जैसा मैं करती हूँ।"

मैंने मुस्कुरा कर कहा, "तुम से तो अधिक नहीं ही करती हैं।"

बुधिया ने आग्रह करके कहा, "तब आप यहीं रहो।"

मैंने आखें ऊपर करके कहा, "तुम मुझे रक्खोगी?"

उसने कहा, "क्यों नहीं रक्खूँगी बाबू! आप बड़े हो। बुद्धिमान हो। मुझे प्रेम करते हो।"

मैंने कहा, 'तुम्हारे मा-बाप जब तुमको मेरे घर नहीं जाने देंगे तो मुझको वे क्यों अपने घर रहने देंगे?"

"रहने क्यों नहीं देंगेजी"

कहती हुई बुधिया मुस्कराई। फिर एक अँगडाई ली। उस अँगडाई के सौन्दर्य में मैंने देखा कि उसकी आखें बोझिल सी और शरीर अलसाये से हो रहे हैं तथा कपोल रक्त रंजित हैं। जल्दी से पानी पीकर लोटा ले उठा और वटवृक्ष के नीचे जा मुँह धोने लगा। मुँह हाथ धोकर जब खड़ा हुआ तो देखा बुधिया अब भी उसी उद्विग्न मुद्रा में वहीं चुपचाप खड़ी खड़ी मुझे निहार रही है। उसके नेत्र वैसे ही बोझीले और कपोल रक्त रंजित से हो रहे हैं। बुधिया की पूर्व कथित पवित्र अबोधता और सरलता में इस उत्तेजना के आगमन

के कारणों का सामजस्य ठीक करते हुए मैं चारपाइ पर लेट गया। चारपाई पर लेट कर जब इस मनो वैज्ञानिक उधेड़बुन में घंटो व्यतीत कर दिया तो अन्त में मुझे ऐसा लगा मानों भीतर से कोई कह रहा है; "चित्त के अबोध और पवित्र रहने पर भी इन्द्रियाँ अपने स्वाभाविक कर्मों को करती ही रहती हैं। उनका ऐसा न करना हीतो अस्वाभाविक बात है। बुधिया के विकार रहित पवित्र मन में भी यदि अवस्था विशेष की प्रेरणा से अज्ञात उत्तेजना मिली तो इसमें उसके शरीर धर्म के कार्य्यों के प्रतिपादन के अतिरिक्त और कहा ही क्या जायगा। इसमें प्राकृतिक अस्वाभाविकता की कौन सी बात है। समाज के सम्पर्क में न रहने के कारण उसको शरीर की लज्जा आदि सामाजिक नियमों की मर्य्यादा का बोध अवश्य नहीं है पर उसके शरीर का स्वाभाविक धर्म (वासना) जो प्रकृति प्रदत्त हैं और जिसका ज्ञान कराना समाज का नहीं प्रकृति का काम है, यदि उसके १७ वें वर्ष की उमर में उसके ऊपर अपना प्रभाव डालता है तो स्वभाव विरुद्ध बात यह नहींहै। फिर उस आक्रमण के फलाफलों तथा नियमो पनियम के ज्ञान से बुधिया अब भी अनभिज्ञ ही है। और इसीसे उसको न समझ कर भूले हुए पथिक की तरह अपने इस शरीर धर्म के अज्ञात आक्रमण के उधेड़बुन में किं कर्त्तव्य विमूढ़ सी होकर कुछ नहीं जान पाती है। और न कुछ करही पाती है बल्कि मेरी ओर आकृष्ट होने की जो स्वभाव से प्रेरणा उसे मिल रही है उसमें पड़ करके वह गड़बड़ा रही है। सामाजिकता तो मानवकृत वस्तु है। उसका निर्वाह समाज के नियमों के साथ चलता है। पर चूँकि समाज और मानव आज घुलमिल कर इतना एक हो गया

है कि उसने सामाजिक नियमों को ही अधिक अंश में आज स्वाभाविक नियम मान लिया है। इसलिए मानव अपने स्वभाव के क्षेत्रों में आज समाज पशु अधिक और प्रकृति पशु कम रह गया है। परन्तु तब भी शरीर धर्म तो प्रकृति का बनाया हुआ धर्म है ही और उसका प्राणी विशेष में अवस्था और समय के अनुकूल जाग्रत होना स्वभाव सिद्ध धर्म है। उसमें समाज की सहायता की अपेक्षा नहीं है। उसके अस्तित्व और अनास्तित्व के कारणों में सामजिकता के ज्ञान-अज्ञान या सहयोग असहयोग की अपेक्षा या प्रतीक्षा नहीं है। वह तो स्वतः आता है और स्वतः लोप भी होता है। परन्तु हाँ समाज के प्रचलित नियमोंपनियम या संस्कार की मान्यतायें उस स्वाभाविक धर्म को व्यवहारिक रूप देने में अवश्य सहायक और बाधक सिद्ध होती हैं।"

इस तर्क के साथ बुधिया के शरीर धर्म के शिकार बनने तथा उसके सामाजिक या संस्कारिक ज्ञानों के अभाव के कारणों का विश्लेषण करने के बाद जब चित्त शान्त हुआ तो मैं चौकीपर से बंकिम बाबू की "कपाल कुंडला" उठा कर उसके चरित्र का इस पहलू से मनन करने लगा।

पसिया के टोला

ता० १६-६-४३

आज कवलेसर राम चर्खा रूई आदि शहर से लेकर आ गये। मैं दिन भर चर्खा, धनुकी, परेता, रूई आदि को ठीक करता रहा कि कल से चर्खा-क्लास चालू हो जाय। सन्ध्या समय हाँका में गये हुए पासी वापस आये। बुधिया के पिता माता भी लौट आये। पर उसके पिता को आहत बाघ ने घायल कर दिया है। पिता की दशा

से बुधिया बहुत दुःखी हुई और एक लड़के से मुझे बुलवा भेजी तुरत मैं वहाँ गया और उसके घाव को धो धाकर पट्टी बाँध दी। घाव बड़ा अवश्य है पर घातक नहीं है।

रमेसर राम ने सन्ध्या समय जब गाँव वालों की सभा बटवृक्ष के नीचे की तब उसमें अनेकानेक प्रस्ताव पास हुए।

पसिया के टोला

ता० १७-६-४६

आज बीती रातत क सोभुआ से भोजपुरी-काव्य पर बातें होती रहीं। उसको भोजपुरी-काव्य का (प्राचीन और अर्वाचीन दोनों) अच्छा ज्ञान ही नहीं है भोजपुरी कवितायें और गीत भी प्रचुर संख्या में स्मरण हैं"। उसने देहाती जी, रघुबीर शरण जी, भिखारी ठाकुर, मनोरंजन प्रसाद आदि अनेक वर्तमान कवियों की भोजपुरी में लिखी हुई सुन्दर सुन्दर रचनायें सुनाई। फिर तेगअली शेर के बदमाश-दर्पण के अनेक दोहे और छन्द पढ़े। अनेकानेक बिरहा सुनाये। फिर वीर काव्य लोरिक तथा कुँअर विजयमल से अनेक उदाहरण गाये। फिर विरह काव्य-नयकवा' और सारंग सदावृज के छन्द सुनाये। देहातीजी के पनिहारिन—"गगरी भरल खिंचाते नइखे" का अन्तिम चरण "चढ़त चाँद अइसे चाँद मुखो के झगरा त फरिआते नइखे" वाली लाइन सुनकर मैं भोजपुरी की प्रौढ़ता और सरसता पर मोहित हो गया। फिर भिखारी ठाकुर के गीत भी तो किसी भी हिन्दी कवि की कविता से टक्कर लेने को तैयार हैं। तेग अली का दोहा—"भहूँ चूमि लेइला, सुन्दर जो कहीं पाई ला। हम ऊ बीर हईं, ओठे पर तरुआरि खाई ला" कितना मार्मिक और चमत्कार पूर्ण है। फिर बिरहा—'ना बिरहा के खेती भैया ना बिरहा कठावँ। बिरहा उपजे ले हिरदवा में,

जब उमगे तब गाव। " कितनी सुन्दर और स्वाभाविक उक्ति है। भोजपुरी की वीर और राष्ट्रीय भावों की कवितायें तो अपना जोड़ ही नहीं रखतीं। जब वह उच्च स्वर में मस्तहोकर हरिहर सिंह का "अमर के कीरत बड़ाई बाबू कुँअर सिंह के गाइ गाइ चलु सुतल भारत के जगाई जा। बधवा का पंजवा में माई परलि बा बेहोश होके चलु बाघ मारि अपना माई के बचाई जा " गाने लगता था तब सचमुच वीर भाव से रोंगटे खड़े हो जाते थे। फिर मनोरंजन के फिरंगिया गाना का—"भारत के छतिया प भारत बलकवा के बहेला रकतवा के धाररे फिरंगिया " मेरे दिलों को जिन्दा कर देने वाले हैं। फिर रघुवीर शरण जी का "सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से मेरो प्राण बसे हिम खोह रे विदेसिया " जब गाने लगता था तब भारत माता का कितना सुन्दर चित्र सामने खड़ा हो जाता था। बीती रात तक आज वह और मंगरा दोनों मिल कर मुझको भोजपुरी की कविता, गीत, काव्य सुनाते रहे। जिनमें अनेकों को तो मैंने सुन रक्खा था और अनेक नये भी थे। कुछ को लिखने के लिए नोट भी करता गया।

आज दिन में जमीन्दार के यहां पासियों का डेपुटेशन कल के प्रस्ताव के अनुसार भेजा गया; पर उसका प्रतिफल कुछ आशा जनक नहीं रहा। जमीन्दार का सिपाही बुधिया के पिता चैनू की दशा देख ने के लिए आवेगा और तब सहायता देने के सम्बन्ध में कुछ निर्णय होगा। आज से चर्खा क्लास प्रारम्भ हुआ।

पसिया के टोला

१८-६-४३

आज जमीन्दार के यहाँ से एक तहसीलदार और एक सिपाही

वसूली पर जाते समय इधर से ही होते गये। वे रामेसर राम के साथ जाकर चैतू कोल के घाव को देखे। उस समय मैं पट्टी खोले हुए था और बुधिया पानी आदि दे रही थी। घाव देखकर तहसीलदार ने कहा, "ऐसे घाव तो नित्य ही लगा करते हैं। इसी के लिए मालिक खरचा देंगे'

जब वे जाने लगे तब उनका चपरासी बार बार बुधिया को देखता गया। उसका यह कार्य्य मुझे और सोभुआ को बहुत बुरा लगा।

पसिया के टोला

१६-६-४३

चर्खा क्लास और प्राइमरी स्कूल के काम इतना बढ़ गये हैं कि स्वंय पढ़ने लिखने के लिए बहुत ही कम समय मुझे मिल रहा है। फिर गांव की सफाई आदि में भी समय देना ही पड़ता है। दवा दारु में कुछ समय लग ही जाता है। वैसे तो होमिओं पैथीका प्रारम्भिक ज्ञान कुछ पहले से था पर इधर दवा बाँटने से अनुभव बढ़ रहा है। आज दिनभर दवा बाँटने में इतना बझा रहा कि चतुरी के घाव को पट्टी नहीं बदल सका। बुधिया इससे कुछ रुष्ट भी है।

पर मैंने उसको समझा दिया कि इससे घाव में कोई खराबी नहीं आयगी। सन्ध्या समय जमीन्दार स्वंय ही चतुरी को देखने आया। उसने जितना चतुरी को नहीं देखा उतना बुधिया को निहारा। यह बात मंगरा नें उनके चले जाने पर मुझसे कही। वे १०) बुधिया के पिता के दवा के लिये दे गये। यह कार्य्य सोभुआ को अच्छा नहीं लगा।

पसिया के टोला

२१-६-४३

रमेसर राम जमीन्दार के यहाँ से लौट कर मुझसे एकान्त में कहे, "जमीन की सनद मालिक ने दे दी है पर इसमें उनके इतना उदार होने के कारणों में उनका प्रजाप्रेम उतना नहीं है जितना कि बुधिया पर उनकी वासना भरी दृष्टि का पड़ना है। परसों जब उनके सिपाही ने बुधिया के सौन्दर्य्य को चर्चा चलायी थी तभी तो आज वे चतुरी को देखने के बहाने यहाँ आये और बुधिया को देख गये। अतः उचित यह होगा कि जमीन्दार से अब सहायता न मागी जाय। हमी लोग चैतू की सहायता करें।"

पसिया के टोला

३०-६-४३

आज जमीन्दार का सिपाही तथा तहसीलदार पुनः चैतू को देखने के बहाने आये और घण्टों चैतू के घर बैठे रहे। वे अपने साथ चावल, दाल, तरकारी, घी, तेल, आदि सामग्री और २०) नकद के साथ दो साड़ियाँ लाये थे। एक बुधिया के लिए और दूसरी उसकी मां के लिए। बुधिया की माँ ने साड़ी देखते ही अपनी स्त्री-बुद्धि से बात सब समझ ली। इसी से उसने सबी समान और रुपया वापस देकर रूखे स्वर से तहसीलदार से कहा, "हम लोग गरीब हैं। हम न तो मेंही अन्न खाते हैं। और न मेंही कपड़े या साड़ियाँ ही पहनते हैं। आप इन्हें वापस ले जाइये। रुपये की भी आवश्यकता नहीं है। कमाया था सो अभी पास ही है। फिर १०) रुपये अभी परसों ही तो मिले हैं।

पसिया के टोला

२-१०-४३

आज तीन दिन पर मंगरा जमीन्दार के यहाँ से शराब के नशा में चूर होकर लौटा। जब सोभुआ से उसकी भेंट हुई तो उसने उसे शराब पीने के लिए बहुत डांटा और उसके जमीन्दार के यहाँ तीन दिनों तक रुके रहने का कारण भी जानना चाहा।

पसिया के टोला

३-१०-४३

आज स्कूल जाते समय सोभुआ की भौहें तनी हुई सी थी। न मालूम वह क्या क्या सील पर कूटता पीसता और रंगपाउडर आदि विभिन्न तरह की चीजें बना रहा था। मैंने जब पूछा "आज स्कूल नहीं चलोगे सोभू!' तो उसने तीखे स्वर में सील पर बाटी चलाते हुए कहा, "ना आजुल्हु रउरा के नाटक दिखावे के नू बा।"

रात्रि में जब प्रजातंत्रात्मक क्रान्ति का नाटक समाप्त हो गया तब सोभुआ ने एक और फार्स दिखाआ जिसमें शराबी कामासक्त जमीन्दार भेषधारी मंगरा ने सती साध्वी स्त्री के भेष में सोभुआ के सामने अपना पार्ट बहुत ही सुन्दर रूप से सम्पादन किया और स्त्री के रूप में सोभुआ पहले तो लज्जा की मूर्ति बना बचता रहा और अन्त में प्रेमिका का स्वांग दिखा कर अलिङ्गन के लिए हाथ उठाया और जैसे ही कामासक्त जमीन्दार हाथ बढ़ा कर आलिङ्गन किया वैसे ही उसने आस्तीन से छूरा निकाल कर उसकी पीठ में भोंक दिया। जब मंगरा तड़प तड़प कर प्राण छोड़ चुका तब सोभुआ ने लाल वर्ण छुरा को आकाश में भाँज भाँज कर पूँजीवाद और साम्राज्य वाद के विरुद्ध व्याख्यान देना प्रारम्भ किया।

पसिया के टोला

४-१०-४३।

आज दिन भर मंगरा दिखाई नहीं पड़ा। सोभुआ भी स्कूल न जाकर नाश्त-सामग्री का प्रबन्ध करता रहा। सन्ध्या समय जब मंगरा दिखाई पड़ा तो मैंने कहा, "आज दिन भर कहाँ था रे मंगरा ?"

उसने हँस कर कहा, "जमीन्दार के गांव गया था। बुलाहट आयी थी।"

पसिया के टोला

५-१०-४३।

आज प्रात:काल जब टहल कर लौटा आ रहा था तो कवलेसर राम शिकार के लिए जंगल की ओर जाते मिले। उन्होंने सलाम कर के कहा, "पहाड़ के नीचे जो पौंसला वाला पीपल वृत्त है वहाँ किसी ने गत रात जमीन्दार साहेब को छुरी मार दी है। वे वही मरे पाये गये हैं। तुरत ही थाना पुलिस आने वाली है।"

इस सूचना से चिन्तित सा होकर जैसे ही बट वृत्त के नीचे आ बैठा वैसे ही रमेसर राम ने आकर कहा, "सोभुआ को बुखार हो आया है मालिक। वह पागल सा अंटसंट भी बोल रहा है।"

मुझको आश्चर्य हुआ। जाकर देखा तो सोभुआ ज्वर में डूबा हुआ था। उसकी आँखे लाल लाल और घबड़ाई-सी थीं। मस्तिष्क नितान्त भ्रान्त सा हो रहा था। रह रह कर वह अंट-संट की बातें बोल बैठता था। मुझको देखते ही उसे जैसे सान्त्वना सी मिली। जब मैंने उससे मनका हाल पूछा तो उसने हँसकर उत्तर दिया, "अच्छी है, खूब अच्छी है मालिक।" फिर थोड़ी देर तक चुप रहा।

में उसको थर्मामीटर लगाया तो ज्वर ताप १०५ डिगरी का था। सहसा वह उठ बैठा और तलवार भाँजने की मुद्रा में हाथ भाँजने लगा। मैंने धीरे से उसे लिटा दिया और वह आँखें बन्द कर के चुप हो गया। थोड़ी देर तक वह चुप लेटा रहा। फिर तुरत ही उठ बैठा और हाथ भाँज-भाँज कर गाने लगा :—

हम डूबेंगे मर जायँगे पर किश्ती पार लगादेंगे।
हम कैसे जवाँ हैं भारत के यह दुनिया को दिखलादेंगे॥
हम अपने कौमी झंडा को अब हिमगिरि पर फहरादेंगे।
हम अपने कौमी नारों से अब लन्दन को थहरादेंगे॥
हर गलियों में हर कोने में हम त्याग की आग लगादेंगे।
हम भारत माँ की सेवा में निज जीवन सुमन चढ़ादेंगे॥

गाना समाप्त होने पर मैंने उसे सोने के लिए कहा। पर जब वह नहीं माना तो ब्रोमाइड का एक हल्कासा डोज देकर मैं चला आया। उससे उसे निद्रा आ गयी। सन्ध्या समय खबर मिली कि तहसील से S. D. O. और S. P. घटनास्थल पर आये हैं और तहकीकात हो रही है। अभी तक हत्यारा का कोई पता नहीं चला है।

पसिया के टोला
६–१०–४३।

आज इस टोला में भी दारोगा और इन्सपेक्टर आये। सब से पूछताछ किया। फिर मंगरा को खोजा पर मंगरा आज प्रात:काल से ही जो जंगल में शिकार को गया सो अब तक वापस नहीं आया था। उसे न पाकर दारोगा की भौंहे टेढ़ी हुईं। उसको बुलाने के लिए आदेश देकर वे चले गये। सोमुआ के पास दारोगा के आने

जाने की बात नहीं पहुँची। उसका बुखार कल से कुछ कम जरूर है पर बक झक अभी वैसी ही है। बीती रात जब मंगरा का बाप देवना जंगल से लौट कर मुझसे मंगरा के न मिलने की बात कही तो मुझे मंगरा पर शंका हुए विना न रही। फिर भी देवना से कल फिर जंगल जाकर मंगरा को खोजने की ताकीद करके मैं सोने गया। चारपाई पर सोचने लगा कि कल दशहरा है। कल ही का दिन हम राजपूतों के लिए साल का सबसे बड़ा दिन है। पर मैं इस जंगल में पासियों के साथ कल इसे मनाऊँगा। घर पर पत्नी बच्चे आदि चार-चार ढार आँसू मेरी याद में बहाते रहेंगे। यही सोचते-सोचते नींद आगयी तो नाना तरह के स्वप्न देखने लगा।

पसिया के टोला

७—१०—४२।

आज पता चला कि मंगरा के कुरता, धोती, छाता आदि घर में नहीं है। देवना के बकस में जो २०) रुपये रक्खे थे वे भी नहीं हैं। सन्ध्या समय जब वह जमीन्दार के गाँव से लौटा था तो उसके पास नोटों का एक गट्ठर बुधिया ने देखा था। इस सूचना से यह निश्चय-सा हो गया कि मंगरा कहीं भाग गया और उसको हत्या की कुछ जानकारी अवश्य है। इससे चिन्ता बढ़ गयी। गाँव के भावी संकट की आशंका ने रात भर सोने नहीं दिया। क्या करूँ और क्या न करूँ? येही प्रश्न सामने थे। हत्या में क्या मंगरा का भी कोई हाथ है? वह सहसा भाग क्यों गया? गाँव के चौकीदार ने रमेसरराम से कहा है कि मंगरा ने घटना के दिन जमीन्दार के पास जाकर एकान्त में

बड़ी देर तक उनसे बातें की थी। फिर आते समय जमीन्दार का चपरासी उसे गाँव बाहर तक पहुँचाने आया था। चपरासी का बयान थाना के बन्द कोठरी में हुआ है उसने क्या कहा है यह उसे ज्ञात नहीं।

पसिया के टोला
८-१०-४३

आज अभी सो ही रहा था कि पचास सशस्त्र सिपाहियों के साथ दारोगा आ धमके। मैंने चारपाई से उन्हें देखकर यही सोचा कि मेरे ही लिए यह raid है। चलो आज दशहरे के दिन यही शकुन हुआ। चलो फरारी नाटक समाप्त हुआ। पर मेरे सामने ही से जब सब सिपाही निकल गये तो मेरी शंका निमू ल हुई। बात की बात में गाँव घेर लिया गया। गाँव वाले सब अभी सोही रहे थे। मेरी बुलाहट हुई। जब मैं इन्सपेक्टर के पास गया तो उसने मेरा नाम, 'गाँव पेशा, आने का कारण आदि विषयों पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी। मैं सब सचसच बता दिया। इस सम्बन्ध में झूठ बोलना उचित नहीं समझा। पर आने के कारणों के उत्तर में अपना लेखक तथा जन सेवक होना बताकर प्रकृति निरीक्षण और पुस्तक लेखन तथा ग्राम सुधार की बात कह सुनायी। इनके प्रत्यक्ष प्रमाण इन्सपेक्टर को मिल गये। इससे उनका ख्याल मेरे फरार होनेकी ओर नहीं जा सका। फिर शायद वे मुझसे इस हत्या की inquiry में सहायता भी लेना चाहते थे। इससे भी उनको अन्य वातों अधिक पर सवाल जबाब करने की हिम्मत नहीं हुई। वार्ता में उन्होंने मेरी बुद्धि को अपना बुद्धि

से जरा ऊँचा महसूस किया इससे भी कुछ नर्मी बर्ती। जब मुझसे तलाशी का गवाह बनने को उन्होंने कहा तो मैंने साफ जवाब दिया, "मैं दो ही शर्तों पर आपके साथ तलाशी में चल सकता हूँ। प्रथम यह कि जो कुछ मैं देखूँगा वही गवाही में भी नमक मिर्च लगाये बिना कहूँगा। उससे चाहे आपका केस बिगड़े या बने। दूसरी बात कि अपने रहते इस टोले में मारपीट, जो कानून विरुद्ध है आपको नहीं करने दूँगा। पर इन्कारी की सभी सुविधाओं में जो कानूनी हैं मैं आपकी सहायता करूँगा। हत्या को मैं स्वयं बुरा मानता हूँ। मैं गांधीवादी हूँ। आपको ये बातें यदि कबूल हों तो मुझे ले चलिये वर्ना रहने दीजिये। इन्सपेक्टर ने मेरा प्रभाव गाँव में देख लिया था। उन्होंने मेरी बातें स्वीकार कर लीं। खाना तलाशी में कहीं कुछ नहीं मिला। मंगरा भी नहीं मिला। सोभुआ पुलिसों को देख कर जरुर उत्तेजित होता पर वह उस समय सो रहा था। मैंने दारोगा को उसको अपना मरीज बता कर दिखा दिया और जगाने से मना किया। वे मान गये।

जब घेरा उठ गया और पुलिस चली गयी तब गाँव वाले इकट्ठे हुए और नाना तरह की बातें होने लगीं। मंगरा के पिता को जो पुलिस साथ ले गयी थी उस पर भी नाना तरह की टीका टिप्पणियाँ होती रहीं।

आज चार बजे नया टोला में जिसका नाम गाँधी ग्राम रक्खा गया, गृहनिर्माण की नीव दी गयी। पुष्प धूप दीप से गणेश पूजा करा कर पंडितजी ने रमेसर राम से नीव में पाँच ईंटे रखवा दीं।

फिर टोला के सभी पासी बझाये हुए नीलकण्ठों को ले ले कर पहाड़ के नीचे के गाँवों में जमीन्दारों और भले मानसों को दिखाकर इनाम लेने के लिये चले गये। अकेला मैं अपने एकान्त के वटवृक्ष के नीचे बैठ कर घरकी मधुर कल्पना करने लगा और विरही यक्षराज ने जैसे दक्षिण से अपनी प्रेयसी को मेंघों द्वारा सन्देश भेजा था वैसे ही मैं भी आकाश के धवल वादलों को देख देखकर प्रियजनो का चिन्तन कर करके हृदय भावों को उनतक पहुँचाना चाहा। उसी समय वन पुष्पों से अलंकृत होकर बुधिया मेरे सामने आयी और कोकिल कंठ में बोली, "सलाम बाबूजी ! आज दशहरा का इनाम चाहिये न।"

मुझे श्रीमतीजी स्मरण हो आयीं और आखें छल छला गयीं। फिर बुधिया के रूप लावण्य में बझकर वे न जाने क्या क्या बात मन को सोचने के लिए प्रेरित करने लगीं।

पसिया के टोला

९-१०-४६

विगत रात से ही मेरे सामने जटिल प्रश्न यह उठा है कि अब मैं क्या करूं? यहाँ के रचनात्मक कार्य्य में अपने को फँसा देया है और जेठ तक रहने के लिये वाचाबद्ध भी हो चुका हूँ। गांव वालों की अटूट श्रद्धा भी मेरे ऊपर हो ही गयी है। अब इधर पुलिस का सम्पर्क भी इस गाँव में जमीन्दार के हत्याकाण्ड को लेकर होना शुरू हो गया है। इससे अपने पकड़े जाने की आशंका पग पग पर बढ़ गयी है। यदि शीघ्र नहीं हटता तो फरारी जीवन ही समाप्त करना होगा। और तब कन्या के विवाह तथा पुत्र को रुग्णता के लिये कौन देख भाल करेगा फिर गांव वालों को इस विपत्ति में त्यागना भी तो उचित नहीं।

मेरी ही वजह से गाँव में सख्ती आज नहीं हो सकी। नहीं तो कितने लोग रमैया टोला के ऐसा यहाँ भी पकड़े गये होते। और उनसे कितनी रकम ऐंठी गयी होती अभी आगे न मालूम क्या क्या कठिनाइयाँ आवें। यदि मैं अपने को बचाने के विचार से यहाँ से हट जाता हूँ तो अपने सेवा धर्म से चूकता हूँ। नहीं जाता हूँ तो केस की पैरवी (अगर कोई इस गाँव से पकड़ा गया तो) करनी ही होगी। और तब शहर अदालत पुलिस सर्वत्र जाना पड़ेगा। इस दशा में अपना भण्डा फोड़ कैसे रुक सकेगा। मैं अन्य फरारों की तरह अपने को चोर ऐसा नहीं समझता। मैं अपने को छिपाने के लिये प्रयत्न भी आमना सामना हो जाने पर नहीं करता। मेरी आत्मा ने कोई ऐसा काम जो उसके सामने कानून विरुद्ध हो और साधारण नैतिकता की धारणा में पाप समझी जाय नहीं किया हूँ। मैं तो केवल अपनी निजी बातों के कारण ही अभी अपने को बाहर रखना चाहता हूँ। तो ऐसी दशा में अब मैं क्या करूँ? इन्हीं प्रश्नों को हल करने में कल रात भर का समय जागते हुए ही बीत गया था और आज भी दो पहर तक इस सम्बध में कुछ निश्चय नहीं ही कर सका। भोजन करके जब सोया तो बहुत थका होने के कारण प्रगाढ़ निद्रा आयी शाम को उठा तो देखा बुधिया मेरी चारपाई के बगल में मेरी धोती को बट वृक्ष की टहनियों से बाँधकर इसलिए लटका रही है कि धूप मेरी चारपाई पर न पड़े। मैं आखें खोले उसके इस सरल प्रेम को देखने लगा। मन प्रगाढ़ निद्रा के बाद शान्त और स्वस्थ था। विवेक ने धीरे से कहा, "इस सरला अबला के आहत पिता की सेवा को छोड़ कर तुम अपने जेल जाने के

भय से यहाँ से चले जाओगे ? तब बुधिया बेचारी, जिसने तुम्हारी सेवा निच्छल प्रेम से की है क्या कहेगी ? मैंने उसी क्षण निश्चय किया, "नहीं जाऊँगा। गांव की सेवा पूरा किये विना यहाँ से जाना मेरा कर्त्तव्य से भागना होगा। परिवारवालों पर जो बीतेगा उसे झेलने के लिए वे सबल हैं। न भी होंगे तो सबल बनेंगे।"
आज भी मंगरा का पिता थाना से वापस नहीं आया।

पसिया के टोला

१०·१०-४३

प्रातःकाल, गाँव का चौकीदार जो दूसरे टोला का निवासी है मुझसे टहलते समय मिला। उसने सलाम किया और विना पूछे ही स्वयं कहना प्रारम्भ किया, "मालिक, मंगरा के पिता को दारोगा-जी कल बहुत मारे और मंगरा को हाजिर कराने के लिए उसे हाजत दे दिये हैं। अभी आज तक छोड़े नहीं हैं। मैंने पूछा, "मारा क्यों ?" उसने कहा, "जो वह मंगरा पता नहीं बताता था। कहते थे कि तुम भी खून में शरीक हो तभी मंगरा को हाजिर नहीं करते।" मैंने चिन्ता की मुद्रा में कहा, "मंगरा पर शक करने का कोई प्रमाण मिला है ?"

चौकीदार ने एक कदम आगे बढ़कर धीरे से कहा, "मालिक किसीसे कहियेगा नहीं। साबूत मिला है। पर चुप चुप है। रह-जनी में जमींदार साहब मारे गये हैं। हमलोग जब लाश उठाकर ले जाने लगे तो शराब की दुर्गंधि आ रही थी। उनके खानसामा ने बयान दिया है कि हत्या के दिन जमीन्दार साहब ने मंगरा को बुला-कर उसे २०) इनाम दिया और १००) रुपये बुधिया को देने के लिए

देकर उससे समझाया कि किसी तरह फुसलाकर बुधिया को पौंसला के पीपल तक वह लिवा लावे। वहां जमीन्दार साहब मौजूद रहेंगे। स्वयं उससे बतला लेगें। जमीन्दार ने बुधिया को इस योजना को बताने से मंगरा को मना किया था। खानसामा जमीन्दार की आज्ञा से गाँव के बाहर तक मंगरा को इन बातों को समझाकर पहुँचा गया था।

मैंने कहा, "तब बुधिया से क्यों नहीं बयान लिया गया ?"

चौचीदार ने कहा, "लिया जायगा। आज या कल।"

मैंने पूछा, "जनता का क्या विश्वास है ? किस ने हत्या की है ?"

चौकीदार, "यह कुछ नहीं समझ में आता मालिक ! इतना सब कहते हैं कि जैसा किया वैसा पाया। इधर किसी की सुन्दर बहू बेटी इनके मारे नहीं बचने पाती थी। आखिर कोई न कोई वीर बहादुर मिल ही गया। अच्छा हुआ"।

मैंने पूछा, "क्या सचमुच जमीन्दार दुराचारी था ?"

उसने आश्चर्य्य से कहा, "अरे मालिक ! यह बात तो जवार का बच्चा बच्चा जानता है। दारोगाजी भी तो उनके साथियों में थे। इस जंगल में कौन अच्छी जगह ऐसी होगी जहाँ ये लोग दुराचार न किये हों। रात-रात भर नाच मोजरा की तो बात ही दूसरी थी। बहू-बेटियों का बचना भी कठिन हो गया था।" फिर जरा ठहर कर उसने कहा, "जाऊँ मालिक, बहुत सबेरे बुलाया है।"

मैंने कहा, "जमीन्दार के घर अब कौन है ? केस की पैरवी कौन करता है ?"

चौकीदार ने कहा, "उनका जवान बेटा। वह भी तो बाप ही के ऐसा शराबी और वेश्यागामी है।"

मैंने कहा, "अच्छा जाओ कोई खास खबर हो तो देते रहना। जवारी भाई हो। तुम्हारे दुख सुख के साथी इसी जवार वाले होंगे।"

उसने झुक कर सलाम किया और कहा, "आप हम लोगों का हित करते हैं। आप से न कहूँगा तो किससे कहूँगा मालिक!" वह चला गया।

घर पहूँचा तो बुधिया बरतन मल रही थी। उससे उसके पिता का हाल पूछ कर पूछा, "क्योंरी बुधिया! जमीन्दार की हत्या के दिन मंगरा ने तुमसे कुछ कहा था?"

बुधिया ने मुझे साश्चर्य्य निहार कर कहा "नहीं तो क्या बात है?"

मैंने कहा. "तुम उस रात कहीं गयी थी?"

बुधिया ने उसी सरलता से कहा, "नहीं तो। आपके यहाँ से जाकर बाबू को खिलाया और मा के साथ सो रही।"

मैं, "तुम जानती हो मंगरा कहाँ गया है?"

"नहीं।"

"मंगरा से जमीन्दार ने तुम्हारे पास कुछ खरचा भेजा था?"

"ना"

मैं चुप हो गया। विश्वास हो गया कि बुधिया बिलकुल इस मामिला से अनभिज्ञ है। "तब हत्या किसने की? क्या दूसरी स्त्री को मंगरा ले गया और उसी को लेकर जमीन्दार से झगड़ा हुआ। और मंगरे ने जमीन्दार का काम तमाम किया या कोई शत्रु ही ने जमीन्दार को अकेला पा मार बैठा?" यही सब सोचता हुआ मैं नहाने गया। लौट कर वापस आया तो वट वृक्ष तले दारोगा जी बैठे थे। उन्होंने

खानसामे का बयान मुझसे पढ़ सुनाया और बुधिया का इज़हार लेने की इच्छा प्रगट की। मैंने कहा, "बुलाये देता हूँ। पूछ लीजिये।"

बुधिया से नाना तरह से दारोगा ने जिरह की पर बुधिया ने वही सच्ची बातें कहीं जो उसने मुझसे कही थीं। फिर उसकी मा का इज़हार लिया। उसने भी वेही बातें दुहरायीं जो बुधिया ने कही थीं। फिर मेरे साथ जाकर चइतूकाल का भी इज़हार लिया। उसने भी वही बातें कहीं। तब दारोगाजी बड़े परेशान हुए। मुझसे पूछने लगे कि आप का क्या अन्दाजा है किसने हत्या की। मैंने कहा, मैं इन बातों से जानकारी नहीं रखता। जब बुधिया वहाँ गयी नहीं तब तो इस गाँव के किसी आदमी पर सुबहा करना ठीक नहीं मालूम होता। हत्यारा कहीं और होगा और हत्या का कारण कुछ और ही होगा। हो सकता है मंगरा वहाँ से रुपया लाकर यहाँ चुप बैठ गया हो। और दूसरे दिन इस भय से कि कहीं जमीन्दार रुपया के लिए धर पकड़ न करें वह रुपया के साथ सैर करने भाग गया हो। वह पर्यटन का प्रेमी अवश्य है।"

फिर मंगरा के पिता के सम्बन्ध में मैंने पूछा कि उसे क्यों हाजत में रक्खा है तो उन्होंने कहा, "छोड़ दूँगा।" दारोगाजी चले गये। मैं भी स्कूल के लड़कों को छुट्टी दे दी।

बुधिया के परसे हुए थाल पर जब खाने बैठा तो खाते समय बुधिया ने निर्लिप्त भाव से जमीन्दार, दारोगा, मंगरा, और अपनी गवाही आदि के सम्बन्ध में अनेकानेक प्रश्न करके पूछा, "आदमी को आदमी कैसे मार डालता है, बाबू! उसे मारते हुए दया नहीं आती?"

मैंने कहा, "गाँव में इतने पशुपक्षी नित्य मारे जाते हैं। उनपर

तुम्हें क्यों नहीं दया आती बुधी ? क्या उनको मरते समय तकलीफ नहीं होती, उनके बाल बच्चे नहीं हैं ?"

बुधिया ने कुछ चिन्ता की मुद्रा में सोचा। विवशता के स्वर में कहा, "मेरा चले तो मैं किसी को एक चिरई भी न मारने दूँ। पर क्या करूँ ? भीतर ही रोकर रह जाती हूँ। ये लोग क्या दूसरा पेशा नहीं कर सकते ?"

उसकी सरलता पर मन ही मन मुग्ध हो मैं भात पर दाल डाल कर धीरे धीरे चिन्तामग्न हो खाने लगा।

सन्ध्या समय गाँव के मुखियों के साथ जाकर गाँधी ग्राम जहाँ बनेगा उस जमीन पर नींव काटने के लिए नकशा के अनुसार रेखायें खिंचवायीं। और किधर घर बने किधर खलिहान आदि की जगहा रक्खी जाय, किधर जानवरों के बाँधने आदि के लिये स्थान छोड़ा जाय आदि आवश्यक बातों का सलाह करके वापस आया। कल से ५० आदमी यहाँ नित्य काम करेंगे।

पसिया के टोला—

११–१०–४३

आज चार परिवार के रहने के घरों की नीवें काटी गयीं और उनमें मिट्टी सानकर एक रद्दा दिवाल भी उठाई गयी। अब कल दूसरे और चार घरों की नीवों की दीवालें तैयार होंगी। इस रफ्तार से जो काम चलेगा तो दो तीन मास में दिवालें बनकर तैयार हो जायँगी ! फिर दो तीन मास में घर छा भी लिये जायँगे। धान कट जाने के बाद से जब घर में खाने के लिए सबों के यहाँ कुछ अन्न हो जायगा सारा गाँव इसी काम में लगेगा। आज सूत तौला तो

इतने दिनों की कताई का कुल सूत ꠸१। हुआ। सूत की कताई का रफ्तार बढ़ाना है। जिससे गाँव की नग्नता दूर होने में कुछ सहायता मिल सके। रात को पंचों में बैठकर इस बात को मैंने जोर देकर समझाया। सबों ने इस ओर परिश्रम करने का निश्चय किया।

पसिया के टोला।

१२-१०-४३

आज स्कूल के छात्रों का इम्तहान लिया। सफलता अच्छी है। पठन और लेखन कला के साथ साथ व्यवहारिक ज्ञानों की ओर अधिक ध्यान दे रहा हूँ। फिर मैं जातीय पेशा की शिक्षा में वैज्ञानिक बातें बता रहा हूँ। आज इनको यह समझाया कि जो चिड़िया जो बझा कर आती हैं उनको नीचे के गाँवों में न बेचकर यदि निकट के बाजारों में बेचा जाय तो दाम अधिक मिलेंगे। इसके लिए तीन शहरों में अढ़तियों को ठीक करने के लिए कल आदमी जायगा। अगर यह तै हो गया तो हर पीरवार की आमदनी चौगुनी बढ़ जायगी। जो चाहा या पण्डुक यहाँ लोग)॥ या ‍-) पैसे पर बेच देते हैं वहीं चाहा या पण्डुक शहर में ॥) से कम पर इस महंगी में नहीं बिकेगा। तीतर तो १) १।) से अधिक तक पर बकेगा। फिर निकट के हवाई अड्डा पर भी जो अंग्रेजी संरक्षक सेना हैं वहाँ रमेसरराम को दोढ़ेली चाहा लेकर जाने की राय ठहरी। जिससे देखा जाय की वे रुपेया देते हैं या ऐसे ही छीन छान लेते हैं। यदि रुपया देने लगें तो उनसे ज्यादा आमदनी की सम्भावना है। आज बुधिया को ज्वर आ गया है। इससे भोजन मुझे ही बनाना पड़ा और उसके पिता के घाव को भी अकेले ही धोना पड़ा। बुधिया

की भी सेवा का काफी प्रबन्ध उसकी माता से करवा आया । सोमुवा का बुखार आज उतरा है। और चेतना भी कुछ ठीक है।

पसिया का टोला

१३-१०-४२

आज जब बट वृक्ष के नीचे बैठा हुआ मैं रवि बाबू की गीताञ्जली पढ़रहा था तो बुधिया आई और आकर चारपाई के सामने खड़ी हो गई। मैंने जब आखें ऊपर उठाई तो उसको उदास देखा। मैंने पूछा, "क्यों बुधी ! उदास क्यों हो ?"

उसने भरे कण्ठ को साफ करके कहा, "सेवती मुझे गाली देती है।"

मैंने कहा, "क्यों ? अच्छा आने दो तो उसे डाटूँगा।" यह कहकर मैं पढ़ने लगा पर बुधिया सामने खड़ी ही रही। दो मिनट बाद पन्ना उलटते समय जो मैंने आखें ऊपर उठाई तो बुधिया को अब तक खड़ी देखकर कहा, "अच्छा ! बुधी सेवती को मैं डाटूँगा ? उसने क्यों गाली दी। लड़की तो वह अच्छी है पर शरारती जरुर है।"

बुधिया ने कहा, "वह कहती है कि झूला पहना करो। सयानी हो गई। अब लजाया करो। लज्जा किस को कहते हैं बाबूजी ! कोई सयानी हो जाय तो उसको लजाना क्यों चाहिये ? क्या सयानी होना बुरी बात है कि लजाया जाय ?"

मैंने कहा, "लज्जा शरमाने को कहते हैं बुधी। जिसके समाज में जो प्रचलित प्रथा है उसके खिलाफ करते लज्जा मालूम ही होती है।"

"तो मैंने समाज प्रथा के प्रतिकूल क्या किया जो लजाया करूँ ? सयानी होना समाज के प्रतिकूल बात है कि लजाया करूँ ?" बुधिया ने प्रश्नात्मक दृष्टि से मुझे निहारते हुए कहा।

मैंने कहा, "पर वस्त्र पहनने को कहना भी तो गाली देना नहीं है बुधी ?"

उसने कहा, "गाली क्यों नहीं है बाबूजी। जब हमारे जाति वाले झूला साड़ी नहीं पहनते तो मैं ही क्यों पहनू ?"

मैंने कहा, "चूँकि अब तुम अपने जातिवालों के साथ नहीं रहती। यहाँ उनलोगों के साथ रहती हो जो झूला साड़ी पहनते हैं।"

उसने कहा, "बाबू कहते हैं फिर तो उन्हीं के साथ जाकर रहना है। यहाँ झूला साड़ी पहनने लगोगी तो वह छोड़ते नहीं बनेगा। और जातिवाले जाति से निकाल देंगे।"

मैंने कहा, "यह तो वे ठीक कहते हैं। पर उनको भी तो इस नयी सभ्यता के सामने अपनी अर्ध नग्नता के पोशाक को छोड़ना चाहिये। साड़ी झूला में सुन्दरता बढ़ जो जाती है।"

बुधिया ने कहा, "क्यों बाबू ! सचमुच आपको साड़ी झूला में सेवती मुझ से अच्छी लगती है ?"

मैं क्या उत्तर दूँ ? कुछ सोच न सका। कहा, "यह तो अपने अपने पसन्द की बात है बुधी।"

"तो आपको मैं साड़ी झूला में सुन्दर लगूँगी ?"

"मैं कैसे कुछ कहूँ जब तुमको साड़ी झूला पहने देखा ही नहीं है।"

"तो सेवती मुझ से अच्छी लगती है ?"

"उसको भी जब तुम्हारे पोशाक में नहीं देखा तो कुछ कैसे कह सकता हूँ।"

बेचारी बुधिया को वाक-जाल में बझाकर मैंने उसे निरुत्तर तो कर दिया पर उसकी जिज्ञासा को नहीं संतुष्ट कर सका। कुछ सोचकर उसने पुनः पूछा, "बाबूजी, लोग कपड़ा क्यों पहनते हैं। गाय भैंस, चिड़िया चुरुंग तो कपड़ा नहीं पहनते? क्या वे सुन्दर नहीं लगते। मुझ को तो वे बहुत सुन्दर दीखते हैं।"

मैंने कहा, "मनुष्य ने जाड़ा और घाम से अपने शरीर को बचाने के लिए पहले वस्त्र का आविष्कार किया और अब उससे अपने को सजाना भी उसका स्वभाव हो गया।"

"तो मैं आपको इस घघरी में अच्छी नहीं लगती बाबूजी?"

मैंने हारकर कहा, "क्यों नहीं अच्छी लगती बुधी। बच्चे तो नग्न ही रहते हैं पर कितना प्यारा लगते हैं।"

बुधिया प्रसन्न-सी हो कुछ सोचने सी लगी। उसके चंचल नेत्रपास के वन-पुष्प पर मड़राती हुई तितली के साथ नाचने लगे पर मैं उस के इस निष्कलंक पवित्र अज्ञान-प्रतिमा को निहारने और सराहने लगा। थोड़ी देर बाद जब तितली उड़कर चली गयी तब उसने मुझको निहार कर पुनः पूछा, "बाबूजी, सेवती आवे तो आप उसको मारियेगा। उसने क्यों मुझको गाली दी। आप नहीं मारियेगा तो मैं बाबू से कहकर उसे पिटवाये विना नहीं छोड़ूंगी।

मैंने कहा, "जरूर पीटूंगा लेकिन उसको चोट पहुँचाने पर तुमको सुख होगा बुधी! तुम तो बड़ी दयावान हो। फिर सेवती को प्यार भी तो कम नहीं करती हो।"

बुधिया ने कहा, "ज़ोर से न मारियेगा। केवल डाँटकर डरा दीजियेगा। दूसरे को दुःख में देखकर आदमी दुःखी क्यों होता है बाबूजी ?"

मैंने कहा, "और शिकार या वैसे भी दूसरों की जान मारकर हम सुखी भी तो होते हैं बुधी !"

बुधिया घबड़ा-सी गयी मानो इस पहलू से उसने कभी विचारा ही नहीं था। आश्चर्य्य से कहा, "हां, यह भी तो ठीक ही कहते हैं। तो असल बात क्या है बाबूजी ?"

मैंने कहा, "स्वाभाविक बात तो शायद दूसरे के दुःख से दुखित होना ही है। पर हम आज दूसरे को दुखी देख सुखी होना अपना स्वभाव बना रक्खे हैं।"

"तब बाव और शिकरा घास पत्ती क्यों नहीं खाते कि दूसरों की जान मारकर अपनी उदर पूर्ति करते हैं ?" इस तर्क में भी मैं हार गया। पर बुधिया को न हार की परवाह थी न जीत की। उसको तो अपनी जिज्ञासा का समाधान करना था जो वाक्-जाल की आड़ में हो नहीं रहा था। वह चुप-चाप सोचने लगी और मैं उसके उस निष्पाप सौन्दर्य्य को निहार निहार अपने मन की कालिमा को धोने लगा।

पसिया के टोला।

२०-१०-४३।

आज खबर मिली कि मंगरा काशी के स्टेशन पर पकड़ लिया गया। वहाँ से वह जिला के जेल में लाया गया है। वहाँ से कल पुलिस उसे बयान आदि लेने के लिए यहाँ ले आवेगी। आज सोमुआ ने मुझसे स्वस्थ मस्तिष्क होकर बातें की। जब मैं उसको देखकर

चलने लगा तो उसने मुझे टोक करके कहा "मालिक, पापी के जान से मारे के चाहीं कि ना ?" (पापी की हत्या करना चाहिये या नहीं ?)

मैंने कहा, "क्यों ? जैसे पाप की अनेक श्रेणियाँ हैं वैसे ही दण्ड के भी अनेकानेक भेद हैं। बध करने की सजा तो केवल उसी को आज के विधान में दी जाती है जो दूसरे की जान-बूझ कर हत्या करता है।"

सोमुआ ने उत्तेजित होकर कहा, "हम धनिकहा के कानून के बात नइखीं नू पूछत ? आदमी के धरम के बात पूछतानी ?" (मैं धनिकवर्ग के बनाये हुए कानून की बात नहीं पूछता। मैं तो मानव विधान की बात जानना चाहता हूँ।)

मैंने कहा, "कानून की बनावट में धनी गरीब का विचार नहीं रक्खा जाता सोभू। सभ्य कानून मानव में धन के आधार पर भेद नहीं मानता।"

सोमुआ चिन्तित-सा तो चुप हो गया। फिर कुछ सोचने सालगा। और कुछ ठहर कर प्रश्न किया, "अच्छा, इ त बताईं, मालिक, आदमी और दूसरा पशु में कानून कुछ भेद समझे ला कि ना?" (अच्छा यह तो बताइये कानून मानव और अन्य जातीय पशुओं में भेद मानता है या नहीं ?)

मैंने कहा, "जरूर भेद मानता है सोभू तभी तो एक आदमी की हत्या के अपराध में एक या अनेक मनुष्य को फाँसी की सजा दी जाती है पर इसी पुरवा में हजारों पशु पक्षी मनुष्यों द्वारा नित्य हताहत होतें हैं पर किसी को कानून के सामने अपराधी नहीं माना जाता है।"

सोमुआ, "त इहसे कहीं कि ईश्वर के निष्पक्ष कानून ई कानून

ना हटे। ई स्वार्थी मनुष्यन के बनावल कानून हटे। यह में मानव के हिताहित के आधार पर ही नियमन के बनावल गइलबा। यह में शास्वत न्याय के आधार नइखे। यही से नू हम कहतानी कि धनिकहन के कानून के बात मत चलाईं। वाकी रउरा कहतानी कि धनी गरीब दूनों के एक कानून बा। भला ई कइसे हो सकता आ हम ई मानी त कइसे मानीं। धनी दूसरा जाति के आदमी ठहरल आ गरीब दूसरा जाति के आदमी हटे। दूनो के एक कानून भला कइसे होई। धनी के कानून आजु दूसर बा और गरीब के कानून आजु दूसरे बाटे। भले कागज पर लिखे वास्ते दूनो एके मानल जाय। त हम ई कानून ना नू मानबि मालिक! ई त शाश्वत न्याव के कानून ना नू कहाई।" (तो ऐसे कहिये कि ईश्वर का पक्षपातरहित कानून यह नहीं है। यह स्वार्थी मनुष्यों का बनाया हुआ कानून है। इसमें मानव के हितअहित का ही विचार रक्खा गया है। यह शाश्वत धर्म-न्याय के आधार पर नहीं बनाया गया है। इसीसे तो मैं कहता हूँ कि धनिकों के कानून की बात न चलाइये। लेकिन आप कहते हैं कि धनी गरीब दोनों के लिए एक ही कानून है। भला यह कैसे हो सकता है और मैं इसे मानूँ तो कैसे मानूँ? धनी दूसरी जाति का आदमी है और गरीब दूसरी जाति का पशु है। दोनो के लिए एक ही कानून कैसे हो सकता है? भले ही कागज पर लिखने के लिए दोनों एक कहा जाय। इसलिए मैं तो इस कानून को नहीं मनूँगा। यह शास्वत न्याय-धर्म का विधान नहीं है।)

सोभुआ खिलखिला कर हसने लगा। मैं उसकी बातों की गम्भीरता समझ कर भी उसकी उद्दण्डता और उग्रता पर आश्चर्य

करने लगा। हँसी बन्द होने पर वह खटिया पर उठ कर बैठ गया और मुझसे पूछनेलगा, "मालिक, रउरा लेखक हईं। किताब लिखीला बंकिम बाबू के किताब पढ़ले बानी ?" 'आप लेखक हैं। पुस्तक खिलते हैं। बंकिमबाबू की किताब पढ़ी हैं ?'

मैंने टुक रूखे स्वर में कहा, "हाँ जी, पढ़ा हूँ। इम्तहान लोगे क्या ?"

मेरी रूखाई की परवाह न करके उसने कहना प्रारम्भ रक्खा, "ऊ अपना पोथी में एगो सुनर बन के बाघन का सभा के हाल लिखले बाड़न। . ओह सभा में सुनर वन के बाघ सब मिल के आदमी के अत्याचार का खिलाफ कई गो प्रस्ताव पास कइले बाड़न स। आदमी जाति के पशु हमनी के राज में आ आ के हमनी के अनेकन उपाय से चोरी और धोखा से मारल करताड़न स आ हमनी का वंश के हानि हो रहल बा। ऊ हमनी का राज के वन काटि-काटि के अपना रहे के घर बनावताड़न स। यह से ई अत्याचार रोके वास्ते आपन संगठन करना हमनी के कर्त्तव्य बा। अब हमनी का भी उन्हनी के नाश करे पर तुल जाईं जा। एकर मतलब का हटे मालिक बता दीं न ?" मैं उसके इस विश्रृङ्खल कथन पर आश्चर्य करने लगा। पर वह कहता ही गया, "मालिक, जइसे ईश्वर का सन्तान में सगरे जे बघवा अस जब्बर बा से अपना हित के कानून मन माफिक बना लेता। ओसही बघवा जाति के धनिकहा बाड़न स से कमजोर आ छोटकी छेरिजाति के गरीबकन के खिलाफ मनमाना कानून अपना भलाई वास्ते रोजे बनावता आ रोजे बिगाड़ता। ओकरे के रउरा कहतानी कि गरीब अमीर दूनों वास्ते एके कानून हटे। ई हम भला कइसे मानी ?" (उन्होंने अपनी पुस्तक में सुन्दर वन के व्याघ्रों की

एक महती सभा का विवरण लिखा है। उस सभा में सुन्दर वन में व्याघ्रों ने मानव नाम धारी पशु के अत्याचारों के विरोध में कई प्रस्ताव पास किये हैं। चूँकि आदमी जाति के पशु हमारे राज्य में आ-आकरके धोखा और चोरी तथा अनेकानेक अन्य उपायों से हमको मारते हैं और हमारे वंश का नाश कर रहे हैं, हमारे राज्य का वन काट-काट कर अपने बसने का घर बना रहे हैं इस लिए इन अत्याचारों को रोकने के लिए हमलोगों को अपना संगठन करना परमकर्तव्य है। अतः हम लोग भी संगठित होकर मानव जाति को नाश करने के लिए अब कटिबद्ध हो जाँय। इसका अर्थ क्या है, बताइये तो ?") उसने फिर कहना शुरु किया, (मालिक ! जिस प्रकार ईश्वर के सन्तान में सर्वत्र व्याघ्र ऐसा जो सबल है वह अपने हित का कानून बना लेता है उसी तरह मनुष्यों में व्याघ्र जाति का सबल धनिक वर्ग बकरी जाति के निर्बल और न्यून गरीबों के प्रतिकूल तथा अपने हित के लिए नित्य ही कानून बनाता है और नित्य ही बिगाड़ता है। उसी को आप कहते हैं कि गरीब अमीर दोनों के लिए एक समान वह कानून है। यह भला मैं यह कैसे मानूँ।" वह ठट्ठामार कर हँसने लगा।

मैंने भी हंसते हुए कहा, "अच्छा तुम यही समझो।"

उसने उत्तर दिया, "हमरा समुझला से का होखे के बा मालिक ! निर्बल के बात के सुनेला। निर्बल जाति के पसुअन के फिरिआदि सुनर वन के बाघ लोग ना सुनल या सुनर वन के बाघ लोग के विरोध प्रस्ताव हमारा बनूकिधारी बाबूलोग ना सुनल। असहीं हमनी का जे छेरि जाति के निर्बल गरीब बानी जा ओकर कहना बाघ जाति के बाबू लोग ना नू सुनी। यही से नू कहतानी कि हमनिओं का अब सबल बनीजा या यह धनिकहन से बगावत करीं जा। तब त इन्हनी का

कानून जाल से छुटकारा होई। कानून के रस्सी बे तुरले इन्हनी का माया से छुटकारा नइखे नू होखे के मालिक ! हमनी का कनूनी ले कम बानी जा ?" (मेरे समझने से क्या होने को है मालिक ! निर्बल की बात कौन सुनता है ? निर्बल जाति के भक्ष्य पशुओं की फरियाद सुन्दरवन के बाघों ने नहीं सुनी और वैसे ही सुन्दरवन के अपेक्षा कृत निर्बल बाघों के विरोध प्रस्ताव को हमारे बन्दूकधारी बाबू लोगों ने भी नहीं सुना। उसी तरह हमलोग जो बकरी जाति के ऐसा निर्बल गरीब मनुष्य हैं उनकी फरियाद बाघ जाति के बाबू लोग नहीं सुनेंगे। इसी से तो कहता हूँ हमलोग भी अब सबल बनें और इन धनिकों से क्रान्ति करते जाँय। तभी तो हमलोग इनके कानून बन्धन से छूट सकेंगे। इनके कानून की रस्सी दृढ़ता पूर्वक बिना तोड़े इनसे छुटकारा नहीं न होने को है मालिक ! क्या हमलोग इनसे संख्या में कम है, कि डरते हैं ?, वह पुनः आवेश में आकर हवा में हाथें तलवार भाजने की तरह फेरने लगा। मैंने देखा कि अभी इसके ज्वर की उत्तेजना गई नहीं। अतः उसे एक दूसरी सोने की दवा देकर बैठक में आया।

पसिया के टोला

२१-१०-४३।

गाँधी ग्राम में मकान बनने का काम चालू है। मजदूर अभी ५० ही नित्य काम कर रहे हैं। आज से गाँधी ग्राम में ही विशाल पाकड़ वृक्ष के नीचे अपनी पाठशाला भी चालू किया। वहाँ स्वयं न रहने से काम सुन्दर नहीं बनता था। दिवालें टेढ़ी हो जाया करती थीं। आज सूत और साहुल के सहारे मजदूरों को दिवाल की लम्बान और उचाई की सीधान देखने की विधि बतायी और सभी टेढ़ी मेढ़ी

दीवालों को छटवाकर दुरुस्त कराया। इससे मकानों की सुन्दरता चौगुनी बढ़गयी। शिल्पकला की साधारण जानकारी प्राप्त करके मजदूर बड़े प्रसन्न हैं। दो पहर को सब का भोजन गाँधी ग्राम में हो गया। इससे समय की बचत हुई।

पसिया के टोला

२२-१०-४३

आज प्रात: काल टहल कर जब लौटा आ रहा था तो गाँव के चौकीदार से पुन: भेंट हुई। उसने सलाम किया और कहना शुरु किया "मालिक आपही के यहाँ जा रहे थे। मंगरा ने बयान दिया है कि जमीन्दार की हत्या सोभुआ ने की है। अभी तुरन्त दारोगाजी पकड़ने के लिए आवेंगे। रात ही आने की सब तैयारी थी पर पानी पड़ने लगा इससे रुक गये।" अब मुझे सोभुआ की बीमारी और उसके मस्तिष्क की उत्तेजना का कारण ज्ञात हो गया। विश्वास भी हुआ कि बात सही हो सकती है। सोचने लगा कि अब क्या किया जाय। इसी बीच चौकीदार ने पुन: कहना प्रारम्भ किया, "इसीसे मैं रात ही चला आया कि आपसे कह दूं कि आप सोभुआ को हटवा दें।"

मैंने दृढ़ बन कर कहा, "सोभुआ ने हत्या की होगी मुझे इसी पर विश्वास नहीं होता। लेकिन यदि हत्या की है तो क्यों? किस कारण से? कैसे? यह सब भी तो जानना चाहिये?" चौकीदार ने कहा, "मुझे यह सब बातें नहीं मालूम हैं हमने तो यह बात दो कान्सटेबुलों को आपस में बतराते सुनी। मुझसे किसीने कहा नहीं।"

मैंने धीरे से कहा, "यदि हत्या उसने की है तो उसे स्वीकार

करना चाहिये। वह भागेगा क्यों ?," यह बात हो ही रही थी कि बगल की मोड़ से दारोगाजी घोड़ा दौड़ाते हुए आ पहुँचे। मुझको देखकर वे घोड़े से उतर पड़े और चौकीदार को पहले चले आने के लिए डाँटने लगे। फिर मुझको प्रणाम करके मेरे साथ टोला की ओर पाँव-पाँव चलने लगे। मार्ग भर न उन्होंने इसके बारे में कुछ कहा और न मैंने ही इस सम्बन्ध की कोई चर्चा चलाई। बात न उठानी उचित समझ बट वृक्ष के नीचे पहुँच कर उन्होंने चौकीदार मे कहा, "सोभुआ को बुला लाओ। चौकीदार 'बहुत अच्छा कह कर' जाने लगा कि इतने में दारोगा कुछ सोचकर स्वयं उठ खड़े हुए और मुझसे 'अभी आता हूं' कह कर चौकीदार के पीछे हो लिये। इतने में दस बारह कान्सटेबुल भी पहुँच गये। वे भी दारोगा के पीछे हुए। मैंने विना बुलाये साथ जाना उचित नहीं समझा। थोड़ी देर बाद रमेसरराम रोते हुए आये और कहने लगे, "मालिक, सोभुआ को दारोगा पकड़ ले गये। दारोगा को देखकर सोभुआ पागल-सा हो उठा था—कुछ डरा भी था और कुछ क्रोध से बिगड़ा भी था।" वह जोर-जोर से रोने लगे। मैंने उन्हें सान्त्वना देकर थाना पर जाने को कहा और ताकीद की जमानत के लिए कोशीश करेंगे। सन्ध्या समय वे थाने से मंगरा के बाप के साथ वापस आये। जमानत की दरखास्त अस्वीकृत हुई। दोनों बड़े दुखित थे।

पसिया के टोला

२३-१०-४२

आज बिजली की तेजी से सर्वत्र खबर पहुँच गई कि सोभुआ ने ही जमीन्दार की हत्या की है। सोभुआ और मंगरा का बुधिआ

से गुप्त प्रेम था। जमीन्दार बुधिया पर आशिक हो मंगरा को रुपया देकर उसके मारफत बुधिया को बुलवाना चाहा। पर मंगरा ने यह बात सोभुआ से कही और सोभुआ और मंगरा दोनों मिलकर पौंसला पर आये हुए जमीन्दार की हत्या कर दी। मैं यह खबर सुनकर संसार में कामदेव द्वारा होनेवाले अनेकानेक रहस्यपूर्ण घटनाओं की बातें सोच-सोच कर चिन्ता करने लगा। "बुधिया क्या सचमुच सोभुआ और मंगरा से गुप्त प्रेम करती है? यदि यह सही है तो वह इतना भोली-भाली कैसे दीखती हैं? फिर काम का इतना ज्ञान रख कर सेवती के 'झूला पहनने वाले प्रश्न को वह कैसे मुझसे कह सकी। अपना भोलापन प्रकट करके मुझे भी अपने प्रम-पाश में बाँधने का यह प्रयास या संकेत था? पर उसकी सरलता देखकर काम के इस रहस्य का बोध होना मुझे उसके लिये असम्भव ही सा जान पड़ता है? परन्तु साथ ही यह भी असत्य नहीं है कि अपनी जावतेक कलाओं का ज्ञान नर-नारी, कृमि-कीट, पशु-पक्षि तक विना किसी शिक्षण कला की सहायता लिये ही गुप्तरूप से कामदेव भगवान को प्रदान कर देते हैं? कौन ऐसा है जो इनके इस ज्ञान से अपने को अनभिज्ञ रहने का दावा रक्खे? फिर बुधिया तो षोडष वर्ष प्राप्त कर चुकी है। उसका आजके इस मानव समाज में रह कर मदन का ज्ञान प्राप्त न करना ही आश्चर्य का विषय है? तो क्या वह जो मेरी सेवा इतना प्रेम से करती है उसमें उसकी किसी कलुषित वासना का हाथ है? इस प्रश्न के उठते ही शरीर में रोमांच हो आया। गला सूखने सा लगा उष्णरक्तों का प्रवाह धमधियों में होने लगा। इससे यह निश्चय हुआ कि वासना पर पूर्ण विजय प्राप्त करने की डींग हाँकना

कोरा दम्भ है। किसी भी आयु में यदि स्वास्थ्य ठीक है तो इसकी जागृति न होना ही शायद अस्वभाविक बात होगी। मैं कोमल भावों के रस सागर में इतना डूब गया कि इस समय अपने मन और शरीर की स्फूर्ति देखकर अपने पर आश्चर्य किए बिना नहीं रहा। मैं उठकर बटवृक्ष के नीचे टहलने लगा कि इतने में बुधिया वैसी ही उन्मुक्त कुच, उन्मुक्त मन और उन्मुक्त केश रति कीमूर्ति बनी सामने आकर खड़ी हो गयी। मैंने उसे निहारा और भीतर ऐसा मालूम हुआ कि कोमल भावनाओं के लहकते हुए अग्नि कुण्ड में मानो किसी ने घृताहुति दे दी हो। सारा अन्तस्तल बर उठा। मस्तिष्क चकराने लगा और आँखे अलसाइ सी हो उठीं। मैंने उधर से दृष्टि हटा कर अपने को स्वस्थ करने के लिए सर नीचा कर लिया। पर बुधिया को मानो मेरे भीतर खेलते हुए शैतान का कोई बोध ही न हुआ हो। उसने सरल भाव से पूछा, "सुना बाबू, जमीन्दार की हत्या सोमुआ और मंगरा ने की है।"

धीरे से "मैंने नहीं सुना" कहकर आँखे जो मैंने ऊपर उठाई तो बुधिया के नेत्र जल से परिप्लावित थे। तुरत ही मन में स्पष्ट निश्चय करके मुख से गुनगुनाया।

स्त्री चरित्रस्य पुरुषस्य भाग्यं। दैवो न जानाति कुतो मनुष्याः॥

इससे मन में बुधिया के प्रति घृणा तो अवश्य हुई। पर साथ ही सोमुआ और मंगरा के प्रति द्वेष भाव भी उत्पन्न हुए बिना नहीं रहे। ऐसा लगा मानों मेरे कानों में कोई कह रहा है सोमुआ मंगरा से कुछ था नहीं तो ये प्रेम जल कहाँ से टपकने लगे। नारी जाति की सरलता पर भूलना नादानी है। मनमें खीझा सा होकर कहा, "अब क्यों रोती है बुधिया?"

बुधिया ने आंसू पोछते हुए कहा, "सोभू दादा को ऐसा करना नहीं चाहिये था? जमींदार के बाल बच्चे हैं—घर द्वार है। कैसे चलेगा? बाबू को घायल देखकर जितना कष्ट मुझे उस दिन हुआ था उससे कितना अधिक दुःख उनके बाल बच्चों को हुआ होगा बाबू जी?"

जैसे भादो की अंधेरी रात्रि में भ्रान्त पथिक को बिजुली चमक जाने से मार्ग दीख जाता है वैसेही मुझे अपनी भूल दिखलाई पड़ गयी। विचार ने पलटा खाया। अपने ऊपर लज्जा आई। इतने में बुधिया के पतले लाल ओष्ट पुनः खुले और मन्द स्वर लहरी सुनाई पड़ी, "आसनाई का क्या मानी है बाबूजी? सेवती कहती है तुझसे दादा से आसनाई थी। इसी से उसने जमींदार को मार डाला है। जमीदार तुम पर आसिक था। आसिक (आशिक) का क्या मतलब है बाबूजी?" वह चुप होकर मानों कुछ सोचने सी लगी। उसकी मुखाकृति से ऐसा भान हुआ कि वह इस बात का अर्थ न समझ सकने के कारण अपनी अल्पज्ञता पर दुःखित भी हो रही है और अर्थ जानने के हेतु सचेष्ट भी है।

मेरे हृदय के हृदय मे किसी ने चिल्ला कर कहा, "इस सरलता और अबोधता पर भी तुझे विश्वास नहीं होता? अपने पाप के कारण इस निष्पाप को पापी मानते हो। छिः!"

मैंने संभल कर कहा, "इस का और कुछ अर्थ नहीं है बुधी, बस यह समझो कि जैसे सोभुआ सेवती को प्रेम करता है वैसे ही वह तुमको भी प्रेम करता है।"

बुधिया ने तुरत पूछा, "तो जमीदार बाबू को उसने मारा क्यों? जमीदार ने मुझको प्रेम किया तो क्या बुराई की? किसी

को प्यार करना बुरी बात है? बाबू हमको प्यार करते हैं। माई मुझको प्यार करती है। आप भी मुझको प्यार करते हैं। और मैं भी आप को उतना ही प्रेम करती हूँ जितना सोभू दादा को तो क्या हम सब एक दूसरे की हत्या करते हैं? जमीदार का इसमें क्या दोष था जो सोभू दादा ने उसे मार डाला?"

उसकी इस सरलता पर नेवछावर होकर मैंने कहा, "नहीं, बुधी! प्रेम करने से कहीं कोई किसी को मारता है। सब को सब से प्रेम करना ईश्वरीय धर्म है। सेवती से लोग झूठी बात कहे हैं। जमीन्दार की हत्या सोभू ने नहीं की और किया भी होगा तो किसी दूसरी वजह से।"

बुधिया के सामने जैसे बड़ी भारी समस्या हल हो गयी हो। उसने प्रसन्न होकर कहा, "सेवती बदमास है। मुझको नाहक डरा दी। सोभू दादा अपने मालिक को छूरी मारेंगे? ना ना वे पढ़े लिखे हैं! मालिक को प्रेम करते हैं। पागल थोड़े हैं कि आदमी को मार देंगे। वह भी अपने मालिक को?"

मैंने कहा, "तुम्ही समझो। सब झूठ कहते हैं।" वह हँसकर जाने लगी। मैंने कहा, "घड़ा से एक गिलास पानी देती जाओ। प्यास लगी है।" वह पानी लाकर जब मुझे थम्हा रही थी तो मैं उसके मुख के ऊपर खेलती हुई अबोध पवित्रता को—अज्ञान और भोलापन की सजीव मूर्ति को निहार निहार अपने को अपने कलुषित विचारों के लिए धिक्कार रहा था। मुझे यहाँ स्वीकार करना चाहिये कि मेरी काम वासना इतने दिनों से संजित और नियन्त्रित रहकर भी अभी ऐसी नहीं हुई है कि मैं उस पर काबू कर पाया होऊँ। और आशा भी नहीं है कि कभी इसमें सफलता मिल सकेगी। शायद काम पर

सदा के लिए ऐसा विजयी हो जाना कि उसका विचार भी समय विशेष पर न आवे या वह मन में जाग्रत न हो किसी के नसीब में भी नहीं है। उसको दबाकर नियन्त्रित और संजमित रखना भर भी यदि किसी से निभ जाय तो बड़ी बात है। तभी तो महात्माजी ने काम (passion) के सम्बन्ध में अपना अनुभव इन शब्दों में कहा है, "Conquest of passion is more difficult to attain. If it were otherwise, complete non-violence would be easy of achievement. With knowledge of and effort at non-violence, I have conquered passion only to the stage of supression. This involves great strain on both mind and body. Subjugation is the real need. It does not involve absence of feeting. He who identifies himself with every living creature must feel for every kind of woe and yet remain unaffected."

"वासना पर विजय प्राप्त कर लेना बहुत ही कठिन बात है। यदि वासना को जीतना सरल होता तो पूर्ण अहिंसा को प्राप्त कर लेना बहुत आसान था। अहिंसा का ज्ञान प्राप्त करके तथा अहिंसा के अभ्यास में सतत् प्रयत्नशील रहकर मैंने वासना को केवल उसे दबायं रखने की सीमा तक ही जीत पाया है। वासना को अपना दास बना लेना ही वास्तविक जीत है। इसमें वासना नुभूति का अभाव हो सो बात नहीं है। वह जो अपने को प्रत्येक जीवधारी के साथ तद्वत बना लेता है उसको हर तरह के रंज अनुभूत तो होने चाहिये पर उससे उसको अपने को अप्रभावित ही रखना चाहिये।"

जब इतने बड़े महात्मा के ऐसे अनुभव हैं तो मेरे मन में जो समय समय पर विकारों का आक्रमण हो जाया करता है वह कौन सा आश्चर्य्य की बात है। मुझे अपनी इस निर्बलता को शायद लिखना नहीं चाहिये था पर न लिखना भी तो अपने को सत्य लिखने की प्रतिज्ञा से मोड़ना है।

पसिया के टोला
२४-१०-४३

आज रमेसरराम थाना से लौट आये। जमानत नहीं हुई। मंगरा का पिता भी छूटकर आया। उसको मंगरा से भेंट हाजत में भी नहीं हुई। अब मुझको मुकदमा की पैरवी करनी पड़ी, देखें क्या होता है। एक ओर सोमुआ और मंगरा की चिन्ता और दूसरी ओर अपने पकड़ जाने की शंका। मन दिन भर कुछ खिन्न सा रहा। वकील वगैरह करने के लिए इनके पास पैसा नहीं। मेरी भी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं। घरवाले अपने ही भर खरचा भेजते भेजते थक गये हैं। जमीन्दार पानी की तरह रुपया बहाता है। फिर सोमुआ को बचाना राष्ट्रीय सेवा करना है। उसके ऐसा देश-प्रेमी, दिलेर, बहादुर युवक हो तो देश को स्वतन्त्र कर सकते हैं। उसे उच्च शिक्षा नहीं मिल पाई। नहीं तो किसी दिन वह देश का जवाहर लाल होता। बहुत सोचने के बाद भी कोई माग दिखाई नहीं पड़ा। थक कर भविष्य के ऊपर सब छोड़ कर नित्य के कार्य्य क्रम के पालन में लग गया।

पसिया के टोला।

२५-१०-४३ से २२-११-४३ तक का सारांश।

आज एक मास बाद डायरी लिखने बैठा हूँ। इधर न तो कोई ऐसी खास घटना ही घटी और न मुझे दैनिक कार्य्यों से

मिली कि डायरी लिखने बैठूँ। इस मास भर की डायरी चर्खा, पाठ-शाला गाँधी-ग्राम में मकान बनवाना, पुराने गाँव की सफाई और सोमुआ तथा मंगरा के मुकदमे की पैरवी की डायरी कही जायगी। घर पर खास बात यह हुई कि पहले दो बार रेड और खाने तलाशी हुई ही थी। इस बार चल सम्पत्ति की जप्ती के लिए लोग आये थे। चल सम्पत्ति जप्त कर के सब सामान ले गये। घरपर भाई साहब के लड़के और वे खुद बहुत घबड़ाये हुए हैं। मेरे सिद्धान्तों के प्रतिकूल (Pro Government) सरकार पक्ष की धारणा रख कर उन लोगों का घबडाना उचित ही है। फिर सम्मिलित परिवार में एक के विचार के लिए सारा परिवार क्यों दुःख या नुकसान सहे जो उसकी सैद्धान्तिक मान्यताओं को नहीं मानता। दूसरी बात इस अवधि में यह हुई कि इस टोले के सामुहिक आय में शहर और निकट के हवाई अड्डा पर चिड़िया और मारे हुए जानवरों को भेजने और बेचने से परिव्याप्त वृद्धि हुई है। टोला की नग्नता ५० प्रतिशत दूर हो गयी है। चर्खा भी खूब मजे में चलने लगा है। इस मास सूत ।।।5६ पसेरी कुल टोला से निकला। इसको भी खद्दर एडार भेजकर खद्दर मगाया गया। अब ऊन की भी कताई की शिक्षा देने के लिए कई चर्खे ठीक हो गये हैं और एक गड़ेरिया से ऊन कातना भी मैंने सीख लिया है। गाँधीग्राम में एक बड़ा सा ऐसा घर बनना आरम्भ हुआ है जिसमें पाँच-छः करघे मजे में चल सके। गाँववालों का विचार है कि करगह का काम भी शुरु किया जाय। उसकी शिक्षा के लिए दो आदमी को इलाहाबाद कुलभाष्कर आश्रम में भेज दिया गया है। जैसे हो वे कपड़ा और कम्बल तथा दरी आदि बीनने की शिक्षा पाकर लौटेंगे वैसे ही वह काम भी चालू होगा।

जमीन्दार की हत्या वाले केस में अभी तक कोई आशा जनक बात नहीं हुई है। मैं उसकी जमानत के लिए कई बार इस अवधि में शहर गया पर सब प्रयत्न व्यर्थ रहा। मेरा ऐसा अनुभव हुआ कि न्याय के लिए जो इतनी बड़ा खर्चीली पैरवी की प्रथा चल पड़ी है उससे सर्वसाधारण के साथ न्याय होना असम्भव है। न्यायालय का बातावरण जहाँ सत्य का बातावरण होना चाहिये वहाँ असत्य, झूठ, जालसाजी से भरा है। १०० में ६६ गवाहियाँ झूठी दी जाती हैं। केस के फैसला होते होते जीतने और हारनेवाले दोनों पक्ष आर्थिक रूप से दिवालिया हो जाते हैं। अत: रमेसरराम और मंगरा के पिता के पास इस खून के मुकदमे को लड़ने के लिए न तो रुपये हैं और न जमीन आदि ही कुछ ऐसी है कि बेच बाँच कर काम चले। इससे वे लोग सब भार मेरे मथ्थे देकर चुप लगा गये हैं। भाग्यवश मेरे एक परिचित कांग्रेसी मित्र वकील वकालतखाना में मिल गये। उनसे सब बातें समझा कर सहायता के लिए अनुरोध किया। उन्होंने केस में कोई जान नहीं बतायी, पर यह कहा कि यदि सोभुआ का बयान कुछ ऐसा हो जाय कि उसने आत्मरक्षा में हत्या की तो केस सबल हो जायगा। फिर बहस वगैरह कर दी जायगी। ऐसे और पैरवी करने को मुझे फुरसत नहीं। बस इन्ही वकील साहब से राय बात ले ली जाती है। सोभुवा का कलम बन्द बयान मजिस्टर के सामने दारोगा ने लिख लिया है। उसने हत्या स्वीकार कर ली है। पर हत्या का कारण कोई नहीं कहा है। इधर मंगरा को सरकारी गवाह बना लिया गया था। सुनते हैं कि जिस डिप्टी ने सोभुआ का बयान लिया है वह जमीन्दार का सम्बन्धी है। जिसके यहाँ केस है वह भी उन्ही के पक्ष में है। मेरे वकील का कहना है कि बचने

की कम आशा है। यदि इनके यहाँ से मुकदमा हटाकर दूसरे के न्यायालय में ले जाया जाय तो कुछ आशा हो सकती है पर वैसा करने के लिए प्रमाण कहाँ है ? फिर भी केस दूसरे न्यायालय में हटा देने का आवेदनपत्र देकर आज यहाँ आया हूँ। बुधिया की भी साक्षी होगी। सोभुआ की ओर से एक वही साक्षी है। दूसरी गवाही शायद मेरी हो। न्यायालय में अपना लिखित बयान देने के पूर्व सोभुआ से मिलने के लिए आवेदनपत्र भी आज ही दिलवा दिया है। इस महीने की संक्षिप्त डायरी यही है।

पसिया के टोला

२४-११-४३

आज प्रातः काल टहलते समय गाँव का चौकीदार मिला। उसने बताया जिस डिप्टी के यहाँ सोभुआ का मुकदमा है उसकी मैत्री जमीन्दार के सम्बन्धी डिपटी से है। मृत जमीन्दार के लड़के ने अभी अपने से उस सम्बन्धी डिप्टी के यहाँ सब बातें लिख कर सिफारिश के लिए आदमी भेजा है। वह व्यक्ति जमीन्दार का गोड़ाइत (पत्र-वाहक दुसाध जाति का आदमी) है। वह मेरा मित्र है। उससे मैं उस पत्र को लेकर आप को दिखाने के लिए लाया हूँ।"

मैंने पत्र पढ़ा तो उसमें पूर्वकथित बातों का लिखित प्रमाण था। सभी बातें साफ साफ शब्दों में स्वीकार करके इनकी सहायता के लिए धन्यबाद दिया गया था। मैंने चौकीदार से पूछा, "तुम कैसे जानते हो कि यह पत्र मृत जमीन्दार के पुत्र का लिखा हुआ है।"

चौकीदार ने दृढ़ता के साथ कहा, "गोड़ाइत के सामने ही उन्होंने स्वयं पत्र लिखा और उसे रातोरात उस गाँव में पहुँचा कर प्रत्युत्तर लाने का आदेश दिया।"

मैंने कुछ सोच कर पूछा, "क्या यह पत्र किसी तरह रक्खा नहीं जा सकता ? इससे तो केस में सहायता मिलेगी और सोभुआ को बचा लेने के लिए यह सहायक होगा।"

चौकीदार बड़ा चतुर था। मुकदमाबाज भी था। उसने फौरन कहा,' 'इसको रख लीजिये मालिक और इसी के मजमून का दूसरा पत्र लिखकर दीजिये; मैं भेज दूँ। नीचे लिख देंगे कि दूसरे से पत्र लिखा लाया हूँ।"

मैंने उसकी सूझ की तारीफ की। यद्यपि मेरे लिए यह कार्य अनैतिक था पर तब भी सोभुआ के प्राण की रक्षा के उद्देश्य से मैंने ऐसा करना उचित समझा। सोचा, "जीवन में जैसे बहुत से अनैतिक कार्य कर चुका हूँ वैसे यह भी एक रहेगा। औरों के लिए तो पश्चात्ताप है पर शायद इसके लिए खेद न करना पड़े।"

दूसरा पत्र लेकर चौकीदार चला गया और मैंने उस पत्र को लेकर शहर जाने की तैयारी की।

शहर.........

२५-११-४३।

कांग्रेसी वकील...ने पत्र देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। कहा "केस में जान आ गयी। इसमें हत्या के कारण सम्बन्धी अन्यान्य बातें भी स्वीकृत हो जाती हैं। अब सोभुआ से सच्ची घटना जानने की जरूरत है। तब कुछ राय निश्चित की जाय। कोर्ट ने उससे मिलने के लिए आज्ञा दे दी है। पहले आप उससे मिलकर सभी सच्ची बातें जान लें तब मैं मिलूँगा।"

शहर...।

२६-११-४३।

आज जब मैं सोभुआ के पास पहुँचा तो सोभुआ मुझको देखकर रोने लगा।

मैंने उसे सान्त्वना दी। जब वह टुक स्वस्थ हुआ तो उसको बीड़ी का बंडल देकर मैंने उसे पीने को कहा। उसने बीड़ी लेली। मैंने दियासलाई जलाकर उसे थम्हा दी। वह बीड़ी जलाकर पीने लगा। थोड़ी देर ठहर कर मैंने कहा, "मैं तुम्हारे केस की पैरवी कर रहा हूँ सोभू। वकील तुम से सभी बातें जानना चाहते हैं। जो कुछ तुम कहोगे किसी पर जाहिर नहीं होने दूँगा।"

सोभुआ ने मेरी ओर घूर कर देखा। उसकी इस चितवन में उच्च जातीय मनुष्यों के प्रति घृणामिश्रित अविश्वास प्रकट हो रहा था। मानो उसे ऐसा भान हो रहा था कि उच्च जाति वाले नीच जाति वालों को भलाई कभी सोच नहीं सकते। पर वह किसी तरह मुझे दुःख पहुँचाना नहीं चाहता था। शायद इसी से वह कुछ न कहकर चुप रहा। मैं उसकी ओर झुका और उसकी पीठ थपथपाकर कहा "मुझसे सबी बातें सच-सच कह सुनाओ सोभू चिन्ता करने की कोई बात नहीं हैं। ईश्वर ने चाहा तो तुम साफ बच जाओगे।"

सोभुआ ने निराशा के स्वर में कहना शुरू किया। पर न मालूम क्यों उसने भोजपुरी के स्थान पर खड़ी बोली का ही प्रयोग किया। शायद उत्तेजना की दशा में मातृभाषा में न बोलकर दूसरी भाषा का प्रयोग हमें अधिक प्रभावकारक जँचता है। तभी तो हम शिक्षित लोग भी उत्तेजना की अवस्था में अंग्रेजी में बोलने लगते हैं। उसने कहा, "अपनी बातें कहने और करने की चिन्ता अब मैं छोड़ चुका हूँ, मालिक।"

मैंने टुक ठहर कर सान्त्वना के स्वर में कहा, "नहीं सोभू! ऐसा क्यों कहते हो? चिन्ता तो तुम करते हो? सच्ची बातें कहो।"

सोभुआ के मुख पर निराशा की मुस्कान एक ओर से आयी और कपोलों पर अपनी परछाहीं छोड़ती हुई दूसरी ओर लोप हो गयी। ज्ञात हुआ, मानो वह अब भी अपनी विचार-धारा में अटल खड़ा है। वह अपने जीवन से निराश था। मैं ने आश्चर्य करके सोचा। "मैं तो इसको सहायता देने आया हूँ पर यह क्यों मरने-पर तुला है।"

उसने लम्बी साँस खींच कर उदासीन स्वर में कहा, "यह भी हो सकता है मालिक! पर भीतर की बात जान ही कौन सकता है?"

मैं ने कहा, "सोभू, दुखित न हो और सच्चे दिल से बताओ यदि तुम अपने जीवन के हेतु चिन्तित नहीं थे तो क्यों पुलिस के सामने जमीन्दार की हत्या करने की बात छिपानी चाही? निश्चिन्तता तो इसमें न थी कि साफ साफ सब स्वीकार कर लेते।"

सोभुआ दृढ़ स्वर में कहा, "मैं उनके हुकुम से या उनके धमकाने से उनके हित में कुछ कहना नहीं चाहता।"

मैंने उत्सुकतापूर्वक पूछा, "क्यों कहना नहीं चाहते सोभू?" "वे हम दलितों से घृणा करते हैं।" उसने उसी चिन्ता की मुद्रा में उत्तर दिया।

"यह कैसे सोभू?"

"मैं नहीं जानता बाबूजी! कि वे घृणा कैसे करते हैं पर इतना मेरी आत्मा अवश्य जानती है कि वे हमे कुत्ते से भी नीच और सूअर से भी अधिक अछूत समझते हैं"। "उसने कंधा हिलाकर कुछ सोचता हुआ सा कहा।

"लेकिन सोभू। क्या तुम यह भी नहीं जानते कि वे उच्च जाति वाले अपने सगे निर्धन कुटुम्बी को भी उसी घृणा की दृष्टि से निहारते हैं।"

नहीं बाबूजी, वे अपने जाति वाले सगे सम्बन्धियों से थोड़े घृणा करते हैं। यदि ऐसा करते होते तो सब के सब हमारे साथ क्यों एकही समान व्यवहार करते। उच्च जातीय निर्धन हम निर्धनों के साथ क्यों नहीं सहयोग करते! वह अनिश्चित-से स्वर में उत्तर देकर खिड़कीसे आकाश को निहारने लगा।

मैं चिन्तित सा होकर उसकी बातों के तथ्या पर विचार कर ही रहा था कि इतने में उसकी स्वरलहरी पुनः सुनाई पड़ी। "नहीं बाबू; वे अपनों से भला क्यों घृणा करने लगे। आप नहीं जानते।........" वह फिर चुप हो कुछ सोचने लगा।

मैंने कहा, "हो सकता है तुम ठीक सोचते हो। पर यह भी असत्य नहीं है कि उन्होंने तुम्हारी दलितावस्था ऐसी बना रक्खी है जिससे तुम वैसा सोचने पर बांध्य हो। फिर भी सोभू, निर्धनता ने उनके गरीब सगोत्र या सगे सम्बन्धी को भी उनकी नजरों से गिरा रक्खा है और वे उनसे भी वैसा ही बचना चाहते हैं जैसे तुमसे। फिर तुम्हारे पक्ष में जो आवाज उठाता है वह तो उनका जानी दुश्मन समझा जाता है सोभू और उसके प्रतिकूल झूठे प्रचार में पानी की तरह रुपया बहाना वे अपना कर्त्तव्य मानते हैं।

"कुछ भी हो। मैं तो यही जानता हूँ कि वे मुझे घृणा करते हैं।" सोभुआ ने कंधा हिलाकर कहा।

सोभू! सरकारी वकील ने तुम्हारा एकबाली बयान जो न्यायालय में पेश किया है।"

मैंने कहा, "सोभू ? सरकारी वकील ने तुम्हारा एकबाली का बयान जो अदालत में दाखिल किया है उसे मैंने देखा है। उसमें तुमने उसके पक्ष की बातें तो कही हैं, पर अपने पक्ष की बातों को क्यों छिपा रक्खा है ?"

सोभुआ ने आह के साथ अँगड़ाई ली। और कंधों को बेचैनी की मुद्रा में हिलाकर बीड़ी का लम्बा कश खींचा। उसकी नाकोंर के रन्ध्र से धुआँ धीरे-धीरे निकलने लगा। वह उद्विग्न सा हो उठा।

मैंने धीरे से पूछा, "ऐसा करने में तुमने अपनी भलाई क्या सोची थी ?"

उसने निराशा भरी आकृति से कहा, "कुछ नहीं।"

"किसी ने ऐसा करने की राय दी थी ?"

"नहीं किसी ने नहीं।"

"तब फिर तुमने इसमें क्या भलाई समझी ?"

"कुछ भी नहीं। मैं कुछ नहीं जानता। सभी बड़े एक हैं। गरीबों की कहीं पुछवाई नहीं। मेरे............?" वह आगे कहने से सहसा रुक गया।

मैंने आश्चर्य्य के साथ पूछा, "क्या तुमने हत्या स्वीकार नहीं की ?"

"कीया क्यों नहीं। लेकिन........।" फिर आगे कहते वह चुप हो गया।"

"तो तुम्हारी और बातें मजिस्ट्रेट ने लिखी ही नहीं ? यह बात ?"

उसने मुझे निहारा, फिर आकाश को देखा और सर नीचा कर के कहा, "जाने दीजिए। अब मुझे जीने की साध नहीं।"

मैंने ढाढ़स बँधाने के स्वर में कहा, "तुम्हारा निराश होना ठीक

ही है सोभू। जब हाकिम तक धनिकों की मदद में झूठ बयान लिखते हैं तब न्याय की आशा ही क्यों की जाय। फिर भी निराश तो होना नहीं है। विश्वास है कि जिस अवस्था में तुमने हत्या की है वह कानून से असमर्थित नहीं है। सच्ची घटनाओं को यदि ठीक ठीक मजिस्ट्रेट या जज लिख देता है तो मैं तुमको यहाँ से नहीं तो विलायत से तो जरूर छुड़ा लूँगा। तुमने सच्ची बातें नहीं कहीं ?"

क्रोध के मारे सोभुआ की आँखें लाल लाल हो गईं। उसने मुझे निहारा और घृणा तथा तिरस्कारमिश्रित भाव से कहा, "मैं झूठ नहीं बोलता बाबू जी ! मैं धनी नहीं हूँ।"

मैंने समझ लिया कि यह सब जाल हुआ है। टुक ठहर कर फिर समय से इस प्रसङ्ग को उठाने के अभिप्राय से मैंने दूसरा विषय उठाया। कहा, "सोभुआ ! क्या सचमुच तुमने बुधिया के प्रेम के कारण यह हत्या की ?"

सोभुआ ने आश्चर्य्य से मुझे निहार कर पूछा, "आपने क्या सुना है ?"

"मुझसे तो दूसरे पक्ष वाले कहते हैं कि बुधिया से तुम्हारा प्रेम था। इससे तुमने यह हत्या की है।"

सोभुआ ने कहा, "प्रेम तो मैं बुधिया से अवश्य करता हूँ। पर सेवती को भी तो मैं प्रेम करता हूँ। जैसी सेवती वैसी बुधिया। आप ही बताइए। बुधिया के जाति परिवार वाले यहाँ कोई नहीं हैं। आज हमारे गाँव में वह इसीलिए आकर न बसी है कि ये गरीब हैं, हम गरीबों की विपत्ति में मदद देंगे। तब जो मैं बुधिया की इज्जत बचाने लिए यह न करता तो बुधिया या उसके माँ बाप

यही न कहते कि हम दूसरे देश में दूसरी जाति के होके यहाँ आये ही क्यों ? अपने देश में होते तो यह हालत न हो पाती।"

मैं सोभुआ के इस उच्च विचार को जानकर मनमें उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सका। फिर भी थाह लेने के अभिप्राय से पूछा, "क्या सचमुच सोभू! बुधिआ को तुम सेवती की ही दृष्टि से देखते हो ? उसको अर्धनग्न देखकर तुम्हारे मन में क्या विकार नहीं उठता ?"

सोभुआ को जैसे काठ मार गया। वह थोड़ी देर चुप रहा। फिर कुछ सोच कर कहने लगा, "आपके मन में बुधिया को देखकर क्या भाव होता है ? आप भी मेरे ही ऐसा हाड़ चाम वाले आदमी हैं ?"

मैं पकड़े गये चोर की तरह सूरत बना कर प्रश्न टालता हुआ कहने लगा, "मैं तो वृद्ध आदमी ठहरा सोभू! मेरी बात जाने दो। अपनी बताओ ? तुम जवान हो। जवानी की बात कुछ दूसरी होती है।"

सोभुआ ने तुरत पकड़ा, "जब आप जवान थे तब की ही बताइये ?"

मैं, "तब मुझे बुधिया ऐसी अर्धनग्ना स्त्री को देखने का अवसर ही नहीं मिला सोभू!"

सोभुआ, "जो अवसर मिल जाता तो आप के मन में विकार नहीं उठता इसके लिए आप निश्चित हैं ?"

मैंने गिरे स्वर में हार मानते हुए कहा, "कैसे कहूँ सोभू! कि क्या होता फिर भी विकार पर विजय पाना बड़ी कठिन बात है।"

अपनी इस हार पर मैं अप्रसन्न हुआ। पर सोभुआ अपनी जीत

पर प्रसन्न नहीं हुआ। वह सरल स्वभाव से जिज्ञासु की तरह कहने लगा, "आदमी के मन में तो विकार उठा ही करता है मालिक! पर इसका यह मतलब थोड़े है कि विकारजनित सभी कल्पनाओं को आदमी कार्य में परिणत करने लगे। इसीलिए तो दुनिया में धर्मकर्म की सीमा रक्खी गयी है। आदमी उसे नहीं मानेगा तो पशु न कहा जायगा।"

मैंने कहा कहा, "लेकिन सोभू, यह पूरा स्मरण रक्खो कि इस बात को कभी किसी भी तरह अदालत के सामने तुमको नहीं कहनी होगी।"

सोभुआ ने चिन्तित होकर कहा, "कहूँ या न कहूँ? जब वे ऐसा प्रचार करने लगे हैं तब मेरी सफाई सुनने को कौन तैयार होगा? अतः बेकार झूठ क्यों बोलूँ मालिक? मैं अछूत हूँ। दलित हूँ। वे कहते हैं कि अछूत चरित्रहीन होता है। मैं इसका निराकरण कैसे करूँ? आप ही बताइये?"

मैं चुप हो गया। सोभुआ भी चुप था। दो एक मिन्टों के बाद मैंने कहा, "सोभू, तुमने जमीन्दार की हत्या कैसे की? तुम्हें दया नहीं आयी? चिड़िया तो खुद नहीं मारते? फिर आदमी को कैसे मार बैठे?"

"दया और जमीन्दार पर।"—

इतनी जल्दी और इतनी तेजी से उसके कण्ठ से ये शब्द निकले कि मैं घबड़ा उठा। सोभुआ कूदकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें चौड़ी हो गईं, और हाथ ऊपर की ओर उठ आये। वह क्रोध से काँप रहा था। टुक ठहरकर उच्च स्वर में बोला।

"जमीन्दार पर दया? कभी नहीं! मैं उससे घृणा करता हूँ

घृणा ? ईश्वर सहायक हो मैं उससे सदा घृणा ही करता रहूँ।"

मैंने शान्त करने के स्वर में कहा, "बैठ जाओ सोभू! शान्त होकर बातें करो। उत्तेजित होने से काम बिगड़ता है।"

सोभुआ ने कहा, "मैं उत्तेजित नहीं होता। सचमुच मैं उसे उसी दिन से घृणा करता हूँ जिस दिन उसने हमारी मां-बहनो को गाली दी। आज वह मर गया तब भी उसे मैं उसी तरह घृणा करता हूँ। ईश्वर जानता है मैं अब भी उससे कितना घृणा करता हूँ मालिक!"

मैंने सोभुआ को पकड़ कर कम्बल पर बैठाया और पीठ ठोककर शान्त करते हुए कहा, "सोभुआ! उत्तेजित न होओ। शान्ति से काम लो। सब बातें साधारण रूप में ही लेकर बात करना अच्छा होता है?"

सोभुआ शान्त तो हुआ पर तब भी उसकी आखें कमरे भर में चारो ओर घूर घूर किसी खोई हुई चीज को मानो देख-सा रही थीं। चारो ओर क्षण भर तक देखकर उसने अपना मस्तक नीचा किया और अपनी उंगलियों को पड़काने लगा। जब सब उंगलियाँ पड़क चुकीं तब उसने धीरे से कहना प्रारम्भ किया, "आप कहते हैं मरने पर मैं उससे घृणा करता हूँ! ओह! मुझे इसके लिए खेद नहीं है। मैं अब भी उससे वैसा ही घृणा करता हूँ। वह मर गया है तो इससे क्या? है तो उसका आत्मा नराधम, पिशाचों का पिशाच।"

सोभुआ अपना हाथ सर के बालों पर फेरता हुआ चिन्ता की मुद्रा में देर तक कुछ सोचता रहा। फिर धीरे से कहा, "उसकी बातें इतनी घृणास्पद थीं कि मुझको उससे घृणा करना ही पड़ा। मालिक! पहले तो मैंने जमीन्दार को छकाने के अभिप्राय से ही बुधिया का स्वांग बनाया था, पर नशा में चूर कामासक्त जमींदार की हरकतों से इतनी घृणा

उत्पन्न हुई कि मुझे मंगरा की छुरी छीनकर आत्मरक्षा में उसका काम तमाम ही करना पड़ा। उसने नाना तरह की घृणित बातें कहीं। मुझको रण्डी समझ कलुष वाक्यों का प्रयोग किया। फिर कृत्रिम उरोजों को स्पर्श करना चाहा..............." मारे रोष के सोभुआ काँपने लगा। उसके स्वर थरथराने लगे। वह अपने फड़कते होंठों को दांतों से दबाकर आकाश की ओर देखने लगा। तत्कालीन घटनाओं की स्मृति में मानो वह इतना विभोर हो गया कि सभी भूत बातों को पुन: संघटित होते अपनी कल्पना के जगत में देखने लगा। जमीन्दार की मानस मूर्ति को अपने ऊपर आक्रमण करते—उसकी कामासक्त नशीली आखों को अपने को घूरते हुए और उसके तृषित होठों को चुम्बनार्थ आगे बढ़ते हुए देखकर उसने घबड़ाहट के साथ अपना मस्तक हिलाया और धीरे से ऐसे स्वर में मानो अपने ही से वह बतरा रहा हो बोल उठा, "उसने मुझे औरत ऐसा प्यार किया, रति की भिक्षा माँगी, मुझे रंडी समझ कर बलात्कार करना चाहा। नराधम पशु! माना मैं बुधिया के स्वांग में था। तो बुधिया क्या रण्डी है? बुधिया तो मेरी धर्म बहन है। टोले की लड़की है। मैं नहीं उसे घृणा करूँगा तो कौन करेगा?" वह विक्षिप्त सा होकर चुप हो आकाश को ताकता रहा।

मैंने सान्त्वना के स्वर में कहा, "सोभू! शान्त होकर विचार तो करो। तुमने बुधिया का स्वांग रचा था। नाट्य करके जमीन्दार को छकाना और अपना मनोविनोद करना चाहा था। तुमको यह समझना न चाहिये था कि वह शराब के नशे में है। कामासक्त है। वह जो कुछ कह या कर रहा है वह सब अपनी समझ में उचित ही

कर रहा है। तुमको इसको परिहास तक ही न सीमित रखना चाहिये था।"

मेरे इस कथन को अनसुना करके वह अपने ही आप कहता गया, "मैंने उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा किसी भी आत्मसम्मानी व्यक्ति को उस परिस्थिति में करना उचित था। वह धनी है और उसके जाति वाले पृथ्वी के मालिक हैं। वे कहते हैं कि हम उनकी सेवा के लिए बनाये गये हैं। हमारी स्त्रियों पर नजर डालना उनका जन्मजात हक है। वे क्या क्या नहीं कहते और क्या क्या नहीं करते हैं? वह हमको वही करने देंगे जिसको वे करवाना चाहेंगे।

मैंने टुक रुक कर कहा, "किन्तु जमीन्दार का तुम्हारे साथ तो कोई ऐसा व्यवहार नहीं हुआ जिससे तुमको उससे इतनी घृणा करने का अवसर आवे कि उसकी हत्या की आवश्यकता आ जाय। उसने तो मंगरा के पास अपने सिपाहियों से बुधिया को जंगल की ओर किसी बहाने बहका लाने का ही सन्देश भेजा था"

सोभुआ ने रोष भरे नेत्रों से मुझे घूर कर देखा और जोर से गरज कर कहा "अब बाकी क्या रक्खा था? हमारी बहन को कोई इस तरह बुला भेजे और वह सभ्य है? आह! वे धनी हैं। धरती उनकी है। हमारी माँ बहन उनकी है। हाय रे न्याय! इस अन्याय पर भी हम अछूत बालकों को कुछ करने का अधिकार नहीं है। ······आह······मालिक!······? "वह दोनों हाथों से आखें ढाँप कर सिसक-सिसक कर रोने लगा।'

जरा देर बाद जब वह टुक स्वस्थ हुआ तो मैंने कहा। मैंने कहा, "लेकिन सोभू, टुक विचारो तो वह जमीन्दार तो नशा में चूर हो बेसुध

था। वह नहीं जानता था कि वह क्या कर रहा है।"

सोभुआ ने कंधा हिलाकर कहा, "आह! मालिक!! मैंने भी वही किया जो उस दशा में प्रत्येक मनस्वी मनुष्य करता है। मैं कुछ अधिक नहीं जानता। ये उच्च जाति वाले हम लोगों के लिए पहेली है। हम नहीं जानते वे कब क्या सोचते और कब क्या करते हैं? अब आप भले कह लें कि वह बेसुध था। पर उसके व्यवहार तो सभी सुधि-बुधि वाले आदमी के से थे। मेरे सामने तो वह अपने जातिवालों से जरा भी दूसरा उस नशे की दशा में भी नहीं दीख पड़ा।

मैंने कहा, "मैं इतना समझता हूँ सोभू! कि तुम्हारा कहना अक्षरशः सही है। पर फिर भी तुमको जमाना देख कर समझ से काम लेना चाहता था। नाटककार ही को सभी चीजें केवल मनोविनोद के रूप में ही तमाशा की तरह लेनी ठीक होती है।"

सोभुआ ने अपना सर हिलाया और अपने मुँह पर दोनों हाथों को फेर कर कहा, "हाँ···। आँ···। आँ? मालिक?" फिर क्षण भर सोचता हुआ चुप रह कर उसने गम्भीर होकर कहना प्रारम्भ किया, "यह कितना कौतूहल मचा है। मैं भी सोचता हूँ कि मुझे शान्ति से काम लेना चाहिये था। पर कारण सोचने पर अब भी मन में होता है कि दो एक बदमाशों पर और हाथ साफ करूँ? वे कहते हैं दलितों की सभी स्त्रियाँ किसी न किसी रूप में चरित्रहीन होती हैं। यदि हम भी वैसी ही बातें उनके सम्बन्ध में कहने लगें तो! वे कहते हैं इन गरीब नीचों की स्त्रियाँ सदा यही चाहती हैं कि कैसे धनिकों से उनका सम्पर्क हो। जब कभी मौका मिलता है तो वे व्यभिचार के लिए स्वतः तैयार रहती हैं। उनका विश्वास है कि हमारी, बहू बेटियाँ उनके

साथ वासना तृप्त करके अपना दुःख–दारिद्र्य हटाना अहोभाग्य मानती हैं।”

यदि ऐसी गन्दी बातें तुम्हारी माँ बहनों के सम्बन्ध में कोई सोचे और कहे तब तुम उसे विना मारे छोड़ सकते हो मालिक! लेकिन नहीं। गरीब जो हैं हम!! यह सब सुनकर भी चुप रहना कम से कम आप के सामने हमारा धर्म है। क्यों? यही बात न है?” वह चुप होकर सोचने लगा। मैं अपना सा मुँह लिए बैठा रहा। टुक शान्त होकर उसने फिर कहना शुरू किया, “खैर, अब इन प्रलापों की आवश्यकता ही कहाँ रही? इन्हें जाने दो मालिक! लेकिन आप विश्वास रक्खो जब मैं जमींदार के सामने बुधिया के भेष में खड़ा था तब इन्ही बातों की सी भावना मेरे मन में हो रही थीं। उनका कहना है कि हम गरीब नीच बातें ही करते हैं। पर हमको ऐसा बनानेवाला कौन है? वे अपना भी तो नहीं दीखते? वे हमको मार डालें तो कुछ नहीं पर हम उनके पापों के दण्ड में आत्मरक्षा के अभिप्राय से यदि हाथ उठा बैठे तो वे हमको फाँसी पर लटकवाने में सब मिलकर एक हो जायँगे। कोई न्याय करने वाला नहीं रहेगा। वकील तक हमको मिलना कठिन हो जायगा। वाह रे न्याय! उन्होंने समाज में एक मोटी लकीर खींच दी है जिसको कानून का नाम दिया है। और कहते हैं कि इस लकीर को पार कर के आगे हम नहीं बढ़ सकते। आगे बढ़ना हमारे लिए जुल्म है। पर उनके लिए वही काम पुण्य है। वे इस बात की परवाह नहीं करते कि उस रेखा के इस पार भी कोई जीवधारी बसता है। उसको भी रोटी की आवश्यकता है। वह रोटी खाये बिना मर जायगा। पर उन्हें जो हमारे मरने की

चिन्ता नहीं। और ऊपर से हमारी माँ बहनें उनके सामने उनके मनोविनोद की सामग्री है। और हम जब इसका विरोध करके उस रेखा का उल्लंघन करके आगे पाँव बढ़ाते हैं तो वे हमको कानून और धर्म की दोहाई देकर फाँसी पर चढ़ाते हैं। और वेजरा भी यह नहीं सोचते कि कैसी परिस्थिति में हमारे मन में उनके प्रतिकूल विरोध का होना नितान्त स्वाभाविक है। वे यह भूल गये हैं कि हम भी हाड़ चरम वाले उन्हीं के ऐसा द्वेष, अहंकार, आत्मसमान और इज्जत मर्यादा रखनेवाले आदमी हैं। ओह! मालिक······!! इन बातों को ही स्मरण करके उस समय मैं पागल हो उठा था। और ठीक ही किया था। इन कारणों के रहते दूसरी बात सोची ही कैसे जा सकती है।

मैंने सहानुभूति दर्शाते हुए कहा, "ठीक कहते हो सोभू! तो तुमने आत्म रक्षा के हेतु ही जिसका उत्तर दायित्व जमीन्दार पर ही था, वैसा किया। तुमने उन धनिकों को दिखा देना चाहा कि तुम उनसे डरते नहीं न उनकी परवाह ही करते हो।

सोभुआ ने अनिश्चित स्वर में कहा, "यह मैं कुछ नहीं जानता मालिक। लेकिन वास्तव में मुझे किस वस्तु के लिये उनसे डरना है।" मैं यह जानता हूँ कि मेरे उक्त विचार के कारण वे कभी न कभी मुझको अपने किसी फन्दे में फँसि बिना नहीं छोड़ेगे। मैं अछूत, दलित और गरीब हूँ। मैं अपने लिए उनसे कुछ करा नहीं सकता।

मैं जिधर से निकलता हूँ उधर से ही मेरे अछूत होने के कारण उँगलियाँ मुझ पर उठा करती हैं। इस दशा में मेरा निस्तार कहाँ है।

मैंने उपदेश देने की सी आवाज में कहा—"किन्तु सोभू द्वेष से तो शत्रुता बढ़ती है न?"

सोभुआ चौंक सा पड़ा। अविश्वास के मुस्कान के साथ मुझे निहार कर लाल सा हो ऐसा बोला मानो वह अपने से पूछ रहा हो, 'द्वेष कौन करता है, धनिक या गरीब ? आज ही से नहीं सनातन से इन लोगों ने हमसे घृणा और द्वेष किया है ? अब तो हम भी इनसे घृणा करने लगे। हम सदियों से सुनते थक गये कि हमको क्या करना चाहिये और क्या नहीं, क्या हम कर सकते हैं और क्या धर्म। वे कहते हैं धनिकों की सेवा करने के लिए हम अछूत बनाये गये हैं। इसी सेवा में उनका ईश्वर शायद मेरा नहीं—हम पर प्रसन्न होगा। हमने तो उनकी सेवा करते-करते अपने मनुष्य होने के सारे अधिकारों को उनके सुख के लिए दे डाला पर तब भी वे प्रसन्न नहीं हुए, न उनके ईश्वर को ही प्रसन्नता हुई। आह ! भगवान तुम्हारी यह कैसी लीला !" वह चिन्ता में लीन हो मौन हो गया। उसकी दोनों आँखों से आँसू बहने लगे। मैं चुपचाप उसकी अन्तर-व्यथा का अनुमान करता हुआ उसको निहारता रहा। क्षणभर चुप रहकर उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—"हमको यह नहीं ज्ञात रहता कि आज चूल्हा जल सकेगा। डर नहीं जहाँ हमें पेट भर अन्न मिलने लगा और हम स्वतन्त्रता या मनुष्यता की बाते विचारने लगे वहाँ हमको कुचल कर नष्ट कर देने के लिए उनके यहाँ योजनाएँ बनने लगती हैं। हम उनके सामने आदमी नहीं हैं। हम दिन-दिन और रात-रात भर इस लिए काम करने पर बाध्य किये जाते हैं कि उनके संसार का काम चालू रहे। और धनिक वर्ग उस पर मौज उड़ावे। वे अपने कुत्तों पर जितना धन व्यय करते हैं, अपनी मिथ्या शौकों को पूरा करने में जितना व्यय कर देते उसका हजारहवाँ हिस्सा भी तो हम दलितों के सुधार में नहीं व्यय करते और तुर्रा यह कि हमारे

ही ओट से हमारा सुधारक कहलाने के दम्भको भी वे निभाये जाते हैं।" वह चुप होकर आकाश की ओर ताकने लगा।

मैंने उसे बीड़ी देते हुए कहा—"कह डालो सोभू! जो मन में है उसे कह कर जी हलका कर लो। तुम्हारी बातों को मैं अक्षरशः सत्य मानता हूँ।"

उसने बीड़ी जलाई, लम्बे-लम्बे कश खींचे और धुआँ ऊपर आकाश में फेकते हुए उनके साथ मन बहलाने लगा। जब बीड़ी जल गयी तो उसको एक ओर फेक कर उसने कहना प्रारम्भ किया। स्वर गम्भीर, चिन्ता युक्त, और मननशील था। उसने आँखों में आँसू भर कर कहा, "मालिक, संसार में जो कुछ भी है वह सब उनका है। हमारा कुछ नहीं। पृथ्वी, कानून, न्याय, जुल्म, पुण्य, धर्म, सुख, आनन्द, भोग और ऐश्वर्य्य सब के मालिक वे हैं। हमको गरदन में हाथ देकर इन सुखद क्षेत्रों से बाहर निकाल दिया गया है। ईश्वर तक भी उन्हीं के बाँट में पड़ गया है। आह! मालिक, वे हमको अपने मन में भी तो इन सुख-क्षेत्रों की बातें सोचने की आज्ञा नहीं देते। उनके समाज के नियमोपनियम हमको एक क्षण के लिए भी तो ऐसी बातें अनुभूत नहीं करने देते। फलतः हमारी अपने मन माफिक विचारने की आदत ही आज भूल-सी गयी है। और उच्च मानव संस्कार से आज हम इसी लिए रहित भी हो गये हैं। आज हमारा पतन इस सीमा तक पहुँच चुका है कि हम अपने मन के मन में भी वेही बातें अनुभूत करने के आदी हो गये हैं जिनको वे हमसे अपने हित में अनुभूत कराना और विचारवाना चाहते हैं। आह! मालिक!! हमको वे मरने के पहले ही मार डालते हैं।" सोभुआ आँखों में आँसू भर कर मौन हो गया।

मैंने कहा, "लेकिन सोभू, तुमने तो इस केस में अपने मन की कर डाली ?"

उसने आह के साथ कहा, "कहाँ मनकी कर पाया मालिक ! हम कुछ करना ही क्यों चाहें ? हमारे लिए कुछ करने का सोचना ही कहाँ का कम अपराध है ? हमें करने का मौका भी तो नहीं मिलता। हम काले, अछूत, गरीब हैं। हम कुछ जानते नहीं—न जानने की बुद्धि रखते हैं कि वे हमें सिखावें पढ़ावें। कहा तो—कानून उनका, समाज उनका, पृथ्वी और न्याय उनके और उनके लिए हैं मालिक !"

मैंने धीरे से पूछा, "सोभू जीवन में तुम क्या होना चाहते थे ? तुम्हारी अभिलाषा क्या करने को थी ?"

सोभुआ चुपचाप देर तक सोचता रहा। फिर मुँह के भीतर ही ओष्ट बन्द किये विद्रूप हँसी हँसने लगा। फिर एक पर एक तीन बड़े लम्बे निःश्वासों को छोड़ते हुए कहा, "मैं ? मालिक, कभी मैं हवाई सेना का सेनापति बनना चाहता था। पर मुझे एक सिपाही तक की जगहा नहीं मिली। मौका नहीं प्राप्त हो सका। क्यों कि मेरे पास जाति और रुपये दोनों नहीं थे। इन्होंने इसकी शिक्षा के लिए एक बड़ा सा स्कूल बनाया तो सही है पर कानून की आड़ में इसके चारो ओर एक ऐसी रेखा खींच दी है कि उस लाइन के बाहरवाले गरीब वहाँ जा ही नहीं सकते। केवल वेही वहाँ पहुँच सकते हैं जो उस रेखा के भीतर के रहने वाले हैं। फिर मैं गरीब, अछूत, बालक वहाँ जाऊँ तो कैसे जाऊ ?"

मैंने पुनः उसकी आन्तरिक भावना जाग्रत करने के लिए कहा, "और भी कुछ करने की तुम्हारी कामना थी सोभू ?"

उसने निराशा के स्वर में कहा, "जाने दीजिये। दुःख होता है।

अब कहने से लाभ ही क्या है ? मैं अब शेष हो रहा हूँ। उन्होंने मुझे पकड़ लिया है। मुझे अब स्वेच्छापूर्व्वक मरना ही भर दीखता है।"

मैंने आग्रह के साथ कहा, "निराशा न करो सोभू, अपने मन की बात मुझ से बतादो ? तुम क्या क्या करना पसन्द करते ?"

सो०, "मैं तिजारत करना चाह सकता था पर तिजारत में एक अछूत पासी-पुत्र को सफलता मिलने की इस समाज में आशा ही क्या की जा सकती है ? हम लोगों के पास रुपया नहीं है। हमारे पास कान नहीं हैं—न रेल की कम्पनियाँ और न कोई कपड़े की मिल। ये धनी वर्ग हमको तिजारत में प्रवेश जो करने देना नहीं चाहते। वे हमको बस अपने गाँव के गन्दे मुहल्ले से निकलकर दूसरी किसी जगह स्वतन्त्र रूप से नहीं घूमने देना चाहते।"

मैंने पूछा, "और तुम भी तो उस मुहल्ला भर ही में आबद्ध रहना चाहते हो ?" सोभुआ ने मुझे निहारा। उसके होठ कड़े होकर आपस में सट गये। रक्त भरी लाल लाल आँखों में स्वाभिमान का गर्व जाग उठा। उसने व्यंग में अपनी विवशता दर्शाते हुए कहा, "मैं ? हाँ मैं चाहता था ? चाहने पर बाध्य किया गया था।"

मैंने उसे घूर कर निहारा। और उसके हृदय में छिपी हुई वेदना को देखा। और आह खींचकर मौन हो गया।

फिर टुक ठहर कर कहा, "सोभू, तुमने अभी कहा है कि तुमको धनिक वर्ग ने कुछ करने नहीं दिया। किन्तु मैं देखता हूँ कि तुमने कुछ किया है और किया है तो वह किया है जो दूसरा नहीं करता। अब संसार में तुमको कानून के पंजे से बचाना कितना कठिन हो गया सोभू ?"

सोभुआ उठकर दिवाल से उठँघ कर खड़ा हो गया। और सामने शून्य दृष्टि से देखता हुआ कुछ देर सोचता रहा। फिर आप ही कहने लगा, "मैं कानून नहीं जानता। हो सकता है मेरा ऐसा कहना पागलपन हो। यह भी हो सकता है धनिक वर्ग मुझे फाँसी दिलाने में सफल हों। पर मैं इसके लिए व्यग्र नहीं हूँ। थोड़ी देर के लिए उन शुभ घड़ियों में अपने को स्वतन्त्र अनुभूत कर सका। उसी में मैं जो कुछ करना चाहिये कर सका। यद्यपि कानून इसको गलत कहता है पर मैं इसको सही तब भी मानता था और अब भी मानता हूँ। हो सकता है उनके ईश्वर के सामने इस कार्य्य के लिए मुझे जबाब देना पड़े। पर यदि ऐसा होगा भी तो मुझे इसका खेद नहीं है। यह ठीक ही होगा। मैंने जमीन्दार को इसलिए मारा कि वह मेरी आत्मा को मार रहा था—मेरे आत्म सम्मान को नष्ट कर रहा था। मेरे प्राणान्त की भी सम्भावना थी। मैं उस समय पागल होकर भी निर्भीक भाव से कर्त्तव्य का पालन किया। और जो किया अच्छा समझकर। इसके लिए पश्चाताप कैसा? आह! मालिक, ऐसे ही हमारे जाति वाले भी समझने लगते!"

मैंने पुनः उसके भीतरी द्वन्द की अन्य बातें जानने के लिए दुहराया, "क्या तुम अपने जीवन में कभी प्रसन्न होना चाहते थे?"

उसने कंधा हिला कर कहा, "सम्भवतः मैं होना चाहता था।"

मैंने पूछा, "तुम्हारा क्या ख्याल है? तुम जीवम में कैसे प्रसन्न हो सकते?"

उसने दुहराया, "मुझे कुछ नहीं मालूम। इतना कह सकता हूँ कि कि मैं जीवन में कुछ करके ही प्रसन्न हो पाता। परन्तु हर कुछ जिसे मैंने करना चाहा वह नहीं हो सका। मैं तो अपने मन में यही सोचता

था कि धनिकों के लड़के जो स्कूल में करके प्रसन्न होते हैं वही करके मैं भी प्रसन्न हो सकूँगा। पर वह नहीं कर सका। उनमें से कुछ कालेजों में पढ़ने गये। कुछ हवाई और सामुद्रिक सेना में भर्ती हुए। पर मैं कहीं नहीं जा सका !"

मैं, "फिर भी तुम प्रसन्न होने की अभिलाषा को तो त्याग नहीं सके ?"

उसने कहा, "सब कोई ऐसा ही चाहता है। कोई भी अप्रसन्न होने की बात सोचना नहीं चाहता।"

मैंने कहा, "तो यही कहो कि तुम प्रसन्न की अभिलाषा को त्याग नहीं सके ?

उसने कहा, "त्यागता ही क्यों ? हर व्यक्ति जो प्रसन्न होना चाहता है।"

मैं, "क्या तुमने कभी ऐसा विचार किया कि जीवन में तुम प्रसन्न हो सकोगे ?"

वह, "मैं नहीं जानता। मेरा जीवन रात को सोना और सुबह जाग कर पेट के लिए अन्न तलाशने के अतिरिक्त और कुछ रहा ही नहीं। मैं क्या जानूँ कि प्रसन्न होना किसको कहते हैं ? हो सकता है मैं वैसा चाहता होऊँ।"

मैं, "किस विधि से तुम प्रसन्न हो सकते थे ?"

सो, "मैं नहीं जानता। आप वही बात बार बार कहकर मुझको चिढ़ा रहे हैं।"

वह खुनसाया-सा होकर चुप हो दीवाल पर मक्खी की ताक में बैठी हुई छिपकली को निहारने लगा।

थोड़ी देर मौन रहकर मैंने शान्ति भङ्ग करते हुए फिर कहा, "मैं तुम

को दिक नहीं करता सोभू ! मैं तुम्हारे हृदय के हृदय की बातें जानने का इच्छुक हूँ। कहो तो एक बात और पूछूँ ?
उसने मुझे निहारकर देखा और मेरी सच्चाई समझकर कहा, "पूछिये।"

मैंने पूछा, "प्रसन्नता की रूप-रेखा की धारणा तुम्हारे मन में कैसी थी ?"

सो०, "इस सम्बन्ध में मेरी कोई धारणा नहीं थी मालिक ! पर यह अवश्य ज्ञात था कि यदि मैं प्रसन्न होऊँगा तो वर्तमान बातें मेरे साथ नहीं होंगी।"

मैं, "फिर भी तुम्हारे मन में अपने अभिवांछित जीवन की कुछ धारणा तो अवश्य होगी ?"

सोमुआ ने टुक विचारकर कहा, "अपने ख्याल से तो मैं तभी शायद प्रसन्न हो सकता जब मेरे मन में सदा ऐसी ही इच्छायें उत्पन्न होतीं जिनको पूर्ण करने में मैं अपने को असमर्थ कभी नहीं पाता।"

मैं, "जब ऐसी बात है तब तुम क्यों सदा वे ही बातें करने की इच्छा किये जिनको तुम पूरा नहीं कर सकते थे ?"

सो० "इसे मैं रोक जो नहीं सकता था। शायद हर मनुष्य ऐसा ही करता है। हो सकता है कि यह तब ठीक होता जब मैं जो कुछ करना चाहता था उनमें से कुछों को भी तो करने में मैं सफल होता और तब शायद मैं इन से इतना घृणा भी न करता। तब प्रसन्नता तो शायद मैं अनुभूत करता पर विचार स्वतन्त्रता को स्वार्थ-लोभ की बेड़ी में बाँधे बिना भी स्यात नहीं रहता।"

मैं उसकी इतनी उच्च श्रेणी के विचारों को जिनके पीछे प्रौढ़ और ठोस अनुभव का सबल पुट था, सुनकर आश्चर्य करने लगा। सचमुच

उसने जिरह में मुझको हरा दिया था । प्रसङ्ग बदल कर मैंने कहा, "तुम शहर तो गये हो ?"

सो०, "गया हूँ।"

मैं, "वहाँ तुमने देखा है हरिजनों के रहने के लिए अलग पक्के मकान बने हैं। अभी अमुक धनिक ने वहाँ हरिजन मुहल्ला बनाने के लिए एक लाख रुपया दिया है। वहाँ उनकी पढ़ाई, स्वास्थ्य, खेल जीविकोपार्जन आदि के लिए सभी प्रबन्ध है। क्या इससे भी धनिक विशेष की ओर तुम्हारी श्रद्धा या प्रेम नहीं होता ?"

सो०, "आह ! यह तो जले पर लोन मलना है मालिक ! प्रथम तो इससे हमारा कोई वास्तविक लाभ नहीं होता । यदि हो भी तो उस दान का $\frac{1}{4}$ रुपया बाबुओं की उदर-पूर्ति में व्यय होता है। $\frac{1}{2}$ घर मकान बनाने में। रहा एक चौथाई तो इससे कै की कै दिन तक गुजर हो सकती है ? पर यह सब तो प्रबन्ध की बातें हैं। मेरा वैसा कहने का दूसरा ही कारण है। असल बात तो...तो..." सहसा वह रुक गया। कुछ सोचने में गम्भीर होगया। टुक ठहर कर कहा, "जाने दीजिये। ये सब बातें बेकार की बातें हैं।"

मैं, "नहीं सोभू। जो कुछ कहना चाहते थे कह डालो। मुझको दूसरा न समझो।"

सोभूआ ने शंका की दृष्टि से निहार कर पूछा, "बुरा न मानियेगा ?"

मैं, "कै बार कहा सोभू कि मुझको तुम अपने ही ऐसा गरीब, अपने ही ऐसा दलित, अपने ही ऐसा गरीबों का शुभचिन्तक समझो। तुम मुझ पर क्यों शंका करते हो ? चूंकि मेरा जन्म उच्च यशस्वी क्षत्रिय कुल में हुआ है इससे ? इसमें क्या मेरा हाथ था कि केवल इसी कारण

से तुम मुझ पर विश्वास नहीं कर सकते ?" मेरी आखें भर आयीं। मुझे सच-मुच दुःख हुआ।

सोभूआ ने मुझे निहारा। उसके अविश्वास को मेरी करुणा के जल ने धो दिया। वह भी मेरी बातों से दुखित हो उठा। उसने हाथ जोड़ कर विनीत स्वर में कहा, "माफ करो मालिक! अब विश्वास हो गया।"

वह आँखो से गिरते हुए आँसुओं को पोछने लगा। मैंने कहा, "दुखित न होओ सोभू! मैं बुरा नहीं मानता।"

सो०, "असल बात यह है, मालिक! कि किसी के दान पर पेट पोसने से तो हमारा उथ्थान नहीं न होगा। इससे तो हमारा नैतिक पतन ही होगा। कोई भी गरीब से गरीब समझदार आदमी अपनी जाति का ऐसा पतन नहीं बरदास्त कर सकता। इस में दोनों का अहित है।"

मैं, "यह तो तुम ठीक कहते हो सोभू! मैं इसे अक्षरशः मानता हूँ।"

सो०, " दूसरी बात यह है मालिक! कि धनिकों के इस दान में नेक नीयती का अभाव है और यही सब से खटकने वाली बात है। जैसे उन्हें सब की आवश्यकता है वैसेही यश की भी उनको भूख है। और यश प्राप्ति के लिए जिस त्याग और प्रेम तथा सहानुभूति या योग्यता या कला-ज्ञान और गुण की आवश्यकता होती है उनका उनमें शत प्रतिशत अभाव रहता है। प्रयत्न करके भी अपने इस शरीर से वे उन्हें प्राप्त नहीं कर सकते। इस लिए केवल यश और सम्मान प्राप्त के लिए या सभा सोसाइटी में त्यागी नेताओं के साथ बैठ कर अपने को भी सातो सवारों में गिनाने के हेतु ही

उनके ये दान हैं। अपनी आन्तरिक सद्भावनाओं की प्रेरणा से नहीं। तो अपने इन कपटाचरणों के कारण उच्च जातीय सम्मानित व्यक्ति भी जिनको जनता देवता समझती है मेरे सामने अत्याधिक घृणा के पात्र हैं। और जो ऐसा नहीं हैं उनके लिए अवश्य मैं सहानुभूति और श्रद्धा रखता हूँ। पर ऐसे हैं कितने ?"

मैं, "सोभू फिर तुम मुझे गाली दे रहे हो। मैं भी तो उच्च जाति के वंश में जन्म लिया हूँ। मैंने तो तुम्हें कै बार समझाया कि इसी देश में नहीं संसार के सब देशों में आज ही नहीं सदा से केवल सबल और निर्बल, धनी और गरीब, चालाक और मूर्ख, को ही इनीगिनी जातियाँ हैं। इनके परे अन्य जातियों का नाम लेना तो स्वार्थपूर्ण थोथी दलील है।"

सो०, "आप की उस बात को मैंने उसी दिन हृदयंगम कर लिया था मालिक! पर जन्म से उच्च जाति उच्च जाति कहते कहते ऐसी आदत पड़ गयी है कि मुँह से निकल पड़ता है। क्षमा चाहता हूँ मालिक!"

मैं, "तुम धर्म को मानते हो सोभू ?"

सो०, "मानता भी हूँ नहीं भी ?"

मैं, "इसका क्या अर्थ ?"

सो० "यही कि धर्म को जानूँ तब तो उसे मानूँ! मेरे लिए तो मेरा धर्म है अपने पेट में दहकती हुई आग को शान्त करने का साधन ढूँढ़ना।"

मैं, "तुम्हारे जातिवाले तो हर पक्ष में अनेक देवी देवताओं को पूजा किया करते हैं ?"

सो०, "एक माता के पाँच बेटे थे। सब से मजबूत बेटे ने

अपने छोटे भाइयों को काट कर उनके रक्त से माको स्नान कराया और हाँथ जोड़ कर आँख मूँद कहने लगा, 'मैंने तुम्हारी पूजा की है माँ। मुझे वर दो। सुख पहुँचाओ।' बताइए तो उस बेचारी माँ ने क्या कहा होगा और क्या किया होगा ?"

मैं सोभुवा कि इस उक्ति पर आश्चर्य्य करने लगा। वह कहता गया, "यह तो बलिदान धर्म का हाल है। मन्दिर मस्जिद में तो मानो ईश्वर का बटवारा हो गया है।"

मैं, "तो जब कभी तुम मन्दिरों या देवी देवताओं के यहाँ जाते हो तो तुम प्रसन्न नहीं होते, तुम्हारे मन को शान्ति नहीं मिलती ?"

सोभुआ ने हँसकर उत्तर दिया, "दूसरा पूछता तो कह देता प्रसन्न होता हूँ। खूब शान्ति मिलती है। पर आप से सच्ची बात कैसे छिपाऊँ ? वहाँ जाने से मेरी अशान्ति और बढ़ जाती है। वहाँ तो केवल गरीब मनुष्य ही शायद प्रसन्न होते हैं। जिनको दूसरे की ही सहायता की आशा है। अपने पौरुष पर विश्वास ही नहीं।"

मैं, "पर तुम भी तो गरीब निर्बल असहाय हो ?"

सोभुआ का भौहें फिर तन गयीं। उसकी आँखे पुनः बरने सी लगीं। उसका स्वाभिमान आहत हुआ। उसने गर्व के स्वर में उत्तर दिया, "मैं वैसा गरीब या निर्बल या असहाय नहीं हूँ मालिक ! जो दूसरे की सहायता पर ही अपना जीवन बिताना चाहते हैं।"

मैं, "परन्तु, सोभू ! तुमने अभी कहा है कि तुम वहाँ प्रसन्न हो सकोगे जहाँ लोग तुझे घृणा की दृष्टि से न देखें और तुम लोगों को घृणा न करो। सो इन देवस्थानों में तो तुम्हारी जाति से कोई घृणा नहीं करता ?" (बिहार में पासी (बहेलिया) जाति सार्वजनिक देवस्थान

में जा सकती है यद्यपि कि शास्त्रतः इनकी गणना कट्टरपंथी चांडालों में ही करते हैं।)

सो०, "यह आप कैसे कहते हैं कि देवस्थात में घृणा नहीं होती ? वहाँ की दशा जानकर भी आप अनजान क्यों बनते हैं ? फिर दूसरी प्रधान बात यह है कि मैं तो इसी दुनिया में जहाँ रहता हूँ प्रसन्न होना चाहता हूँ। इसके बाहर के संसार में नहीं। मुझे उस तरह की प्रसन्नता की चाह जो इस शरीर के छूटने के बाद मिलनेवाली हो नहीं है।"

मैं, "तुम अकसर वार्ता में ईश्वर का नाम लेते हो। क्या ईश्वर में तुम्हारा विश्वास है ?"

सोभुआ, "मैं नहीं जानता।"

मैं, "क्या तुम इस बात से नहीं डरते कि मरने के बाद तुम्हारे ऊपर क्या बीतेगा ?"

सोभुआ, "इस ठोस, आख देखे, सामने के संसार में ही डरने वाली बातों की क्या कमी है ! कि इसके परे भी डरने ही वाली बातों को सोचूँ ? हँसने वाली बातों को सोच कर थोड़ी देर के लिए भी यहाँ क्यों नहीं हँस लूँ मालिक ! जीवन के बाद की बातों को न मैंने सोचा ही है और न उनसे डरता ही हूँ।"

मैं, "क्या तुम्हें यह मालूम नहीं था कि जमीन्दार की जान मारने का दण्ड तुम्हारे लिए मौत के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा ?"

सोभुआ, "मालूम था। पर उसी के साथ यह भी मालूम था कि उसकी हत्या एक शुभ काम की रक्षा में जिसका उद्देश्य ऊँचा है हो रही है। इससे उसमें डरने की क्या बात हो सकती थी ?"

मैं, "यदि आज तुम धर्म में प्रसन्नता अनुभूत कर सको तो क्या तुम उसे मानने नहीं लगोगे ?"

सोभुआ, "नहीं ? मैं तो उस यथाकथित धर्म में जाते ही जाते मर जाऊँगा। यदि आज मैं वैसे धर्म में दीक्षित हो जाऊँ तो मेरे सामने मौत के अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

मैं, "पर ये धार्मिक सस्थायें तो अनन्त शान्ति दिलाने की वादा करती हैं ?"

सोभुआ, "ये बातें उनके लिए हैं जिनको अपना विवेक नहीं है या है भी तो उसे ठीक से व्यवहार में लाने का उनमें सामर्थ्य नहीं।"

"मैंने प्रसङ्ग बदला, तो तुमको ऐसा मालूम होता है कि तुम्हें जीवन में उठने के लिए मौका कभी नहीं मिला ?"

सोभुआ, "हाँ। परन्तु किसी से मैं अपने लिए दुखित होने का अनुरोध नहीं करता। मैं दलित हूँ। चाण्डाल अछूत हूँ। धनिक दल दलित चाण्डाल को जीवन-उत्थान का अवसर नहीं देना चाहता। इसलिए मैंने एक शुभ काम के करने का अवसर ग्रहण किया। पर यह उनके लिए दुःखद हुआ। वे इसे नहीं सह सकते। यद्यपि दोष उन्हीं का है फिर भी वे जो सबल है ! सबल अपना दोष स्वीकार नहीं करता। मैं अपने शुभ काम में सफल होकर भी उनके सामने इसलिए विफल समझ जाऊँगा कि मेरी फांसी हो जायगी। पर मैं उसकी परवाह नहीं करता। एक दिन जीवन का प्रवाह कहीं न कहीं अवश्य रुकेगा। तो गन्दे स्थानों में जाकर शेष होने से तो यह अच्छा न है कि जीवन की इस धारा के अन्त होने का स्थान और उद्देश्य सुन्दर और उच्च, स्वच्छ और पवित्र खोजा जाय ?"

मैंने पूछा, "सोभू ! यह तो बताओ तुम यह अनुभूत करते हो

कि नहीं कि किसी तरह, कहीं या कभी तुम्हारे जीवन के अभावों का शेष हो पावेगा ?"

सोभुआ, "मैं कुछ नहीं कह सकता। इसको सोचने या देखने का मुझको अवसर नहीं मिला। अभी प्रत्यक्ष तो यही दीख रहा है कि न्याय की उचित रक्षा करने के कारण ही मेरा जीवन इस लिए नष्ट किया जा रहा है कि उससे एक व्यक्ति की कामवासना तृप्त न हो सकी।"

मैं, "अच्छा सोभू मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी जाति में जो पढ़ लिख कर अच्छी परिस्थिति में पहुँच गये हैं उनको तुम प्यार करते हो ? वे तो तुम्हारे सजातीय हैं न ?"

सोभुआ ने अविश्वास की मुद्रा में कंधा हिलकर कहा, "मैं नहीं जनता मालिक ! आपने ही न कहा था कि सभी उच्च जातीय धनिक हम गरीबो को एक ही दृष्टि से देखते हैं। हमारे जाति वाले भी पढ़ लिख कर रुपया पैदा करके अपने को सभ्य और हमको असभ्य समझने लगते हैं।"

मैं, "लेकिन, सोभू, तुम्हारे जातिवाले जो आगे हैं तुम्हारी बहुत भलाई करते हैं। अनेक लोग तुम्हारे वर्ग के नेता हैं।"

सो०, "हाँ मैंने भी सुना है। वे ठीक कहते होंगे।"

मैं, "उनमें से किसी को तुम जानते नहीं ?"

सो०, "नहीं······" चिन्ता की मुद्रा में उत्तर दिया।

मैं, "सोभू, तुम्हारी ही प्रतिभा के तुम्हारी जाति में अनेक लड़के हैं ?"

सो०, "मेरे ख्याल से बहुत हैं। पर उनके पास कुछ करने का साधन जो नहीं है। पथभ्रष्ट हो इधर उधर वे घूम रहे हैं।"

मैं, "तुम अपने जाति के किसी नेता के पास जाकर अपने और अपनी जाति के तुम्हारे सरीखे दूसरे बच्चों के दिल के हाल क्यों नहीं कहे ?"

सोभुआ ने एक लम्बी आह खींच कर कहा, "अरे मालिक ! वे हमारी बातें सुनने कब लगें ? वे भी धनी हैं। आप ही न कहते हैं कि जैसे उच्च जातिवाले हमको घृणा करते हैं वैसे ही वे भी हमको त्याज्य मानते हैं। यद्यपि उच्च जातिवाले उनसे वैसे ही व्यवहार करते हैं जैसे वे मुझ से करते हैं फिर भी अपनी स्वार्थ-हानि के भय से उनका उनके साथ जी-हजूरी वाला ही बर्ताव होता है। वे कहते हैं कि हमारे ऐसे लड़के उनके पास जा जाकर उनको उच्च जातिवाले धनिकों के साथ ठीक बर्ताव निबाहने में बाधा उत्पन्न करते हैं।"

मैं, "क्या तुम ने अपने किसी नेता का व्याख्यान सुना है।"

सो०, "हाँ मालिक ! चुनाव के समय सुना है।"

मैं, "तुमने उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में क्या धारणा कायम की ?"

सो०, "वही जो सभी धनी नेताओं के बारे में जानता हूँ।"

मैं, "क्या जानते हो ?"

सो०, "अरे वे सब हमारे लिए एक होते हैं। वे केवल पदभर हमारी सहायता से प्राप्त कर लेना चाहते हैं। उसके बाद कौन किसको पूछता है। वे सबके सब रुपया चाहते हैं। जैसाकि सभी धनिक करते हैं। अरे मालिक, यह चुनाव जूआ है—जूआ। इसको वे मन बहलाने के लिए खेलते हैं और इससे जीविका के समान लाभ

मैं, "तो तुम भी क्यों नहीं इसे खेलते सोभू ? तुम तो पद पर

जाकर अपनी इस प्रतिभा और लगन से जाति की भलाई कर सकते हो ?"

सोमुआ, "मैं चुनाव और उसके तह पेंच की बातों को क्या जानूँ। मेरे पास पैसे कहाँ हैं ? पैसे के अभाव में कोई कुछ नहीं कर सकता। मैं सब साधनों से रहित एक चाण्डाल व्याधा का पुत्र हूँ। मैंने ऊची शिक्षा प्राप्त करना चाही कि रुपया कमाकर उसके बल से फिर कुछ करूँगा, पर रुपया कमाकर उसके मोह को त्याग पाता या नहीं और जाति-सेवा कर सकता कि नहीं ? यह भी तो एक सवाल ऐसा है जिसका निर्णय अभी नहीं हो सकता। फिर निर्णय होने का अवसर भी तो मुझे नहीं न मिल पाया। सभी कौलेज, सभी शिक्षालय रुपया वालों के लिए हैं। गरीबों के लिए थोड़े बनाये गये हैं ?"

मैं, "तो यों समझूँ कि तुमने उनको विना विश्वास के ही वोट दिया।"

सो०, "विश्वास की वहाँ गुंजाइश ही कहाँ है। हम गरीब और मूख भूख के अलावे और जानते ही क्या हैं। हम उनकी बातों तक को तो समझ नहीं पाते। विश्वास क्या करेंगे। और उनको भी मेरे विश्वास की जरुरत नहीं। वे रुपया देते हैं और वोट लेते हैं।"

मैं, "तुमने कभी वोट दिया है ?"

सो०, "दो बार।"

मैं, "कब और कहाँ ?"

सो०, "कांग्रेस के चुनाव में इलाहबाद।"

मैं, "अरे! तुम और कॉंग्रेस ? फिर इलाहाबाद! वहां कैसे पहुँचे ?"

सो०, "कई वर्ष हुए मैं और मंगरा माघ नहाने गये थे। वहाँ कांग्रेस की दो पार्टीयों में चुनाव की लड़ाई थी। टाउन की कांग्रेस किस पार्टी के हाथ रहे यही लड़ाई थी। इसी लिए खद्दर की धोती या नेकर और खद्दर के कुरता-टोपी देकर अपने अपने पक्ष के कार्य्य कर्त्ता और ।) पैसे देकर मेम्बर बनाये जा रहे थे। कोई धनिक पीठ पीछे बैठा हुआ यह चाल चल रहा था। मुझको भी कार्य्य कर्त्ताओं ने कांग्रेस में काम करने और मेम्बर बनने को कहा। हम दोनों ने रसीद भरते समय जब अपनी उमर १६ और १७ वर्ष की लिखी तो उन्हों ने उसे १८ वर्ष यह कह कर बनवाया कि अल्पवयस्क को मताधिकार नहीं होगा। हमे धोती कुरता और गाँधी टोपी मिली और हम कार्य्यकर्त्ता बन कर सिटी में घूमने लगे। हम से खूब गवाया गया और खूब मिठाई पूड़ी भी खिलाई गई। जहाँ सभा हो तो पहले हम ही उनके बनाये पार्टी गानों गाने को के लिए मञ्च पर खड़े किये जाते थे। हम दोनों के स्वर बहुत अच्छे थे। मेरे ही ऐसे कई और लड़के रख छोड़े गये थे। हम चार पाँच महीनों तक वहाँ रह गये। दोनों पार्टी के नेता गण आस पास के या शहर के वैसे धनिकों और राजाओं तथा तालुकदारों से रुपया काँग्रेस के नाम पर, या पार्टी के नाम पर माँग लाते थे जो पद के लोलुप थे और अपना नाम भी काँग्रेसियों में रुपये के बल से लिखवाना चाहते थे। उनसे रुपया लेकर जब वे कैम्पों में आते थे तो अपनी सफलता पर खूब हर्ष मनाते और उन धनिकों को उल्लू बनाने की कहानी कह कह कर खूब हसते थे। जब चुनाव हुआ और वह दल जिधर मैं काम करता था जीत गया तब हम घूरे पर फेंके हुए पुराने जूते की तरह हटादिये गये। वेही नेता जो हमारी चापलूसी

करके हमको रातों दिन गवाते रहते थे अब मुझसे बातें तक नहीं करते। घर आने के लिए खर्चा तक नहीं दिये।"

मैंने पूछा, "उस चुनाव में किस किस की पार्टी बनी थी ? कौन कौन नेता शामिल थे ?"

सोभुआ ने बीसों नाम गिनाये। जिनको सुनकर मैं आश्चर्य करके कुछ देर आश्चर्य कर के सोचा कि संसार में अच्छी से अच्छी संस्था भी आततायियों से खाली नहीं हो सकती। यदि संस्था को जन प्रिय होना है तो वह विना आततायियों की सहायता के जन प्रिय नहीं हो सकती। पर उसकी वही जन प्रियता बाद में उन्हीं आततायियों के कारण अनेकानेक व्यभिचारों का कारण बनती है और तब उस संस्था के पाँव पतन की ओर उठने लगते हैं। गाँधी जी के जीते जी कांग्रेस के सर्व श्रेष्ठ केन्द्र की यह दशा! भारी दिल लिए हुए मैं उठा। अंगड़ाई ली और सोभुआ से कहा, "अच्छा अब जाताहूँ सोभू ! तुम अपने बयान में सच्ची सच्ची बातें कहना और डरना नहीं। जैसी बातें मुझसे किये हो वैसीही बातें निर्भीक होकर कठघरे में भी गवाही देते समय बोलना।"

सोभुआ कुछ चिन्तित सा हुआ। फिर उसकी आखो में आंसू भर गये। अपनी इस निर्बलता पर उसे लज्जा भी मालूम हुई। पर वह अपने को रोक नहीं सका। उसने कंधा हिलाकर अपनी कमजोरी दूर करते हुए कहा, "मैं झूठ नहीं बोलूँगा मालिक! बाबू भाइ कैसे हैं ?" इस प्रश्न के आते ही उसकी आखों से दो दो बूँद आँसू फिर निकल आये। वे टपटप करके जेल के कठोर शिला खण्ड पर गिरे और चूर चूर हो गये। मैंने उसकी पीठ थपथपाई।

उसको साहस बंधाया और घर वालों का कुशल क्षेम कह कर विदा ली। चलते समय जेल में १०) रुपये जमाकर के सोभुआ से कह दिया कि जो कुछ जरूरत हो तो इन रुपयों से मंगा लिया करना। मैं जब जेल की फाटक से बाहर निकला तो सोभुआ दोनों आखों में आंसू भरे मुझे दूर तक जाते निहारता रहा। मैंने रुमाल हिलाकर उसे अन्तिम सान्त्वना दी।

पसिया के टोला

२७-११-१४ से २६-१२-४३ तक

इधर एक मास मैं इतना व्यग्र रहा कि डायरी लिखने की फुरसत नहीं मिली। इस मास की डायरी इस केस की पैरवी की डायरी रही। मुझको दो चार दिन ही यहाँ रहना पड़ा होगा। शेष समय शहर में बीताना पड़ा। जब से चौकीदार ने डिप्टी के मित्र के मित्र के नाम लिखा हुआ जमीन्दार के पुत्र का पत्र मुझको दिया तब से मैं दिन रात केसकी पैरवी करने में परीशान रहा। हाईकोर्ट में वकील ने सीधे जाकर उस पत्र को पेश करके अपना और मेरा (affidevite) अफेडेविट दाखिल किया। हाईकोर्ट ने फौरन वारंट भेजकर जमीन्दार पुत्र को पकड़वा मँगवाया और उसके लिखने का नमूना लेकर दाखिल किये हुए पत्र के साथ एक विशेष मनुष्य से दिल्ली भेजकर उनके एक ही मनुष्य के लिखे होने की जाँच विशेषज्ञों से करवायी। जब विशेषज्ञों के यहाँ से एक ही मनुष्य के लिखे हुए दोनों लेख होने की रिपोर्ट आ गयी तो उसने फौरन उन दोनों डिप्टीओं को भी गिरफ्तार करने की आज्ञा निकाली और एक विशेष जज को नियुक्त करके सोभुआ और उन दोनों डिप्टीओं के केस को देखने के लिए जिला में भेज दिया। ये सब काम पन्द्रह दिन की अवधि में हो गये। और सोभुआ के

केस की सुनवाई भी सोलहवें दिन शुरू हो गयी। बुधिया की और मेरी गवाही हुई। वकील साहब को भी गवाही में जाना पड़ा। सभी गवाहियाँ सत्य सत्य उतरीं। जमीन्दार पुत्र पर भी घूस देने और जाल करने तथा अदालत को धोखा देने के अपराध में केस चलने का हाईकोर्ट का हुक्म हुआ था। इससे उन लोगों की पैरवी में बहुत शिथिलता आ गयी। बुधिया ने क्या गवाही दी और मैंने क्या कहा इनसब के वर्णन से डायरी बहुत बड़ी हो जायगी।

पर तब भी बुधिया की गवाही में जो बातें प्रेम और उसके विकार हीन सत्य और सरल रूप से सम्बन्ध रखनेवाली थीं या जो बातें उसमें बुधिया के वासना तथा सोभुआ के प्रेम को प्रमाणित करने के लिए जिरह में सरकारी वकील द्वारा पूछी गयी थीं और उनके उत्तर में बुधिया या सोभुआ ने परस्पर के निष्पाप प्रेम को स्वीकार कर के भी उसके सरल और स्वाभाविक तथा पवित्र और वासना रहित होने की बात कह कर अपनी आबोधता तथा सरलता साबित की थी वे बातें ऐसी थीं कि जज साहब उनकी सच्चाई पर विश्वास किये बिना नहीं रह सके। फिर भी बुधिया की गवाही सुनने के लिये डायरी के पाठक बहुत उत्सुक होंगे। परन्तु उसका पुनरुद्धरण मैं इसलिए यहाँ नहीं करता कि उसकी मान्यताओं और पवित्रता तथा अज्ञान और विकार हीनता की झाँकी का वर्णन पूर्व में हो चुका है। उन्हीं बातों के भीतर उसका जिरह विद्वान वकील ने किया और वह उन सब बातों का उत्तर सरलता और निर्भीकता पूर्वक देती गई। परन्तु सोभुआ के वकील ने जो इस केस में सोभुआ की सफाई के पक्ष में बहस की उसको विना लिखे मैं इस केस के विवरण को समाप्त नहीं कर सकता। वकील साहब की प्रतिभा का मैं कायल हो गया।

उनकी ऐसी बहस मैंने तो किसी वकील को करते नहीं सुनी थी। अन्तिम पेशी के दिन जब सोभुश्रा के पक्ष की बहस होनेवाली थी तो वकील साहब रात भर जगकर मेरे साथ बहस के लिए नोट्स तैयार किये थे। सचमुच वकील का पेशा बहुत ही दायित्व पूर्ण पेशा है। यदि वह समझ सके तो उसके ही ऊपर उसके मोअक्किल का भाग्य निर्भर रहता है। उसकी लेशमात्र की लापरवाही उसके भाग्य को बिगाड़ देने के लिए काफी सबल होती है।

प्रतिपक्षी वकील की बहस जब समाप्त हो गयी तब जज ने सोभुश्रा के वकील को बहस करने के लिए आदेश दिया।

वकील ने खड़ा होकर कहना शुरू किया, "माननीय इजलास को ज्ञात है कि प्रतिवादी को कानूनन यह हक हासिल है कि वह अपने ऊपर लगाये गये अभियोग की सफाई में गवाहियाँ पेश कर सके। इसलिए इजलास से मेरी प्रार्थना है कि वादी को उस समय की मानसिक और उत्तेजना पूर्ण उन अवस्थाओं को प्रमाणित करने के लिए, जिनकी प्रेरणा से वह अपराध करने पर विवश हुआ, अवसर दिया जाय जिससे यह इजलास के सामने यह दिखा सके कि किस हद्दतक वह हत्या के अपराध के लिए दोषी है। फिर मुझे इस लड़के की जवानी के सम्बन्ध में भी प्रमाण पेश करने हैं। फिर इसके अतिरिक्त मुझे इस इजलास के सामने यह भी समझाना है कि इस लड़के ने जो अपराध स्वीकार किया है उसी से यह प्रमाणित होता है कि उसके इस कृत्य में उसके सदाचार सम्बन्धी पवित्र भावनाओं की तथा अत्याचार से अपनी रक्षा करने की कामना की कितनी प्रबल प्रेरणा है। उसकी इसी भावना ने हत्या करने पर उसे बाध्य भी किया है। इसी बीच सरकारी वकील ने खड़ा होकर कहा—"माननीय इजलास..."

"मुझे अपनी बातें समाप्त कर लेने दीजिये," प्रतिवादी के वकील ने जरा रुष्ट सा होकर कहा।

सरकारी वकील उत्तेजित आकृति में टेबुल के पास आकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा, "आप इस लड़के को दोषी और साथ ही पागल नहीं साबित कर सकते। यदि आपका दावा यह है कि सोभुआ पागल है तो इजलास इसका प्रमाण चाहेगी जिसे आप साबित नहीं कर सकते। सोभुआ ने अपराध स्वीकार कर लिया है। अब पागल बनकर अपराध करने के दंड के वह मुक्त नहीं हो सकता।

प्रतिवादी के वकील ने इजलास को सम्बोधनकर के कहा, "माननीय महाशय, मैं इस लड़के के पागल होने का दावा नहीं पेश करता। मैं तो गुजरी हुई गवाहियों के ही सहारे कोर्ट के सामने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करूँगा कि इस लड़के की सदाचार सम्बन्धी पवित्र भावना इतनी ऊँची थी कि उससे प्रेरित होकर उसने अपनी भावना को पवित्रता की रक्षा करनी उचित समझी। फिर इसके अतिरिक्त उसका अपने जीवन के लिए तथा बलात्कार से अपने को बचाने के अभिप्राय से कामासक्त सबल जमीन्दार पर छुरी चला देना भी कानून के प्रतिकूल बात नहीं है। इसको कोर्ट के सामने प्रमाणित करूँगा। हमारे मित्र वकील ने यह धारणा कायम कर ली है कि मैं इस लड़के को पागल करार देने का प्रयत्न करना चाहता हूँ। उनकी ऐसी धारणा गलत है। मैंने इस बिना पर कोई गवाही नहीं पेश की है और न पेश ही करूँगा। मैं तो केवल यही साबित करूँगा कि उसकी जवानी की अवस्था, उसके सदाचार की पवित्र भावना और तद् जनित उसकी मानसिक उत्तेजना तथा भावुकता और सर्वत्र से विवश कर दिये जाने पर अपने जीवन और इज्जत की रक्षा में आक्रमणकारी जमीन्दार पर छुरी चला

देना ऐसी बातें हैं जिनसे उसकी हत्या का अपराध कानून विरुद्ध अपराध नहीं कहा जायगा। उसने आत्मरक्षा के प्रयत्न में हत्या की है। यह केस में दिये हुए प्रमाणों और शाक्षियों से प्रमाणित है। इसलिए वह दोष रहित है। उसे दण्ड नहीं मिलना चाहिये।"

"हमारे मित्र वकील इजलास के सामने यह विश्वास उत्पन्न करना चाहते हैं कि मैं इस लड़के को पागल बना कर मृत्यु-दण्ड से बचाना चाहता हूँ। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मेरा दावा तो एकमात्र उसके कानूनन अपराधी न होने का ही है। जब उसका आत्म-रक्षा में हत्या करना साबित है जो कानून विहित है और जिसके पक्ष में अनेक नजीरें मैं पेश करूंगा तब वह मृत्यु-दण्ड का क्यों अधिकारी कहा जायगा? केवल प्रतिपक्षी वकील के यह कहने से ही कि उसने अपराध स्वीकार कर लिया है वह फाँसी क्यों पायगा? इस देश के कानून की यह आज्ञा है कि आत्म-रक्षा में की गयी हत्या कानून की अवहेलना नहीं है और न वह अपराध ही है। जब कानून की ऐसी मान्यता है तब हमलोग उस मान्यता को केवल इसीलिए इस लड़के के सम्बन्ध में क्यों भुला देंगे कि यह बालक गरीब है, अछूत और असहाय है और उसने अपने धनी मालिक जमीन्दार की हत्या की है? कानून के सामने धनी, गरीब, असहाय का प्रश्न नहीं है। सच पूछा जाय तो कानून गरीब निर्बल असहाय के लिए ही बनाया गया है। सबल धनी और समर्थ व्यक्ति तो अपनी रक्षा आप ही कर लेगा। कानून की आवश्यकता तो निर्बल असहाय और गरीब के लिए ही है।"

वकील साहब जरा रुक कर अपने मस्तक पर हाथ फेरे और नाक से चश्मा उतार कर टेबुल पर रखते हुए पुनः कहना शुरु किये,

"माननीय इजलास ने सुना है कि सरकारी वकील बार-बार यही कहते हैं कि अछूत बालक ने इतने बड़े जमीन्दार की हत्या कर दी। सारा धनिकवर्ग पागल होगया है। लोग इसका इन्साफ चाहते हैं। यदि कोर्ट उसको मृत्यु-दण्ड नहीं देगी तो धनिक जनता न्याय स्वयं हाथ में लेकर बगावत करेगी। चाहे इसका प्रतिफल जो भी हो।' लेकिन उन्होंने सोभुआ के अपराध करने के अभिप्राय और कारण के ऊपर कोई तर्क नहीं पेश किया है। वे वैसा कर भी नहीं सकते हैं क्योंकि वह उनके केस के प्रतिकूल है। वे जल्द-से-जल्द इस केस का फैसला इसलिए करा लेना चाहते थे कि देर होने से वास्तविक बातोंके जाहिर होजाने का भय था। परन्तु कोर्ट को वास्तविक बातें प्रकट हो ही गयीं हैं। किस तरह धनिकवर्ग मिलकर इस निरपराधी बालक को मौत के घाट उतारना केवल इसलिए चाहता है कि उसने एक कामासक्त शराबी जमीन्दार को अज्ञात यौवना कोल-युवती के साथ बलात्कार करने में बाधा दी है, किस तरह से एक इजलास के हाकिमों को इन लोगों ने धन के बल से खरीदकर अपना पक्ष पुष्ट करना चाहा है, और किस तरह से बालक के बयान को मजिस्ट्रेट ने गलत लिखा है ये सब बातें लिखित प्रमाणों की बातें हैं। अफेडेविट A से N तक इनको साबित करते हैं। कोर्ट यह भी जानती है कि हाईकोर्ट की आज्ञाके अनुसार ये दोनों अफसर घूस लेने और गलत बयान लिखने तथा एक हत्या के अभियोग में जाल करके एक निर्दोषी व्यक्ति को दोषी बनाने के अपराध में गिरफ्तार कर लिये गये हैं। उनपर जो मुकदमा चल रहा है उसमें यही वकील साहब सरकारी वकील हैं। ये बातें भी अफिडेविट H से Z तक में प्रमाणित है। परन्तु इनसब बातों के होते हुए भी वकील साहब आँख मूँदकर यही चाहते हैं कि सोभुआ को फाँसी

दे दी जाय क्योंकि उसने धनी जमीन्दार की हत्या की है। उनका इस केस में एकमात्र तर्क यही है कि यदि अदालत उसे नहीं मारती तो धनिकवर्ग का यह विशाल संगठन उसे बिना मारे नहीं छोड़ेगा।"

"हत्या के किस उद्देश्य ने सोमुआ को इस जुर्म को करने पर बाध्य किया? इस हत्या में हत्या का उद्देश्य वैसा कोई नहीं था जैसा कि हमारे कानून के सहारे हमारे विद्वान् प्रतिवादी वकील साबित करना चातते हैं। माननीय इजलास से मेरी प्रार्थना है कि हमको इस उद्देश्य को समझने के लिए अधिक गहराई में जाना होगा। यह बालक अल्पवयस्क है। केवल वर्षों के विचार से ही नहीं, बल्कि मानवी जीवन के ज्ञान और बुद्धि के विकाश के भी विचार से वह अल्पवयस्क ही है। वह किसी विषय का निर्णय करने के लिए परियाप्त वयस्क नहीं कहा जायगा। सुदूर दिहात के वन प्रदेश में रहकर और केवल मिडल तक की शिक्षा पाकर वह अन्य शहरी अथवा धनिक समवयस्क बालकों से बहुत पीछे है। क्योंकि वह जीवन की विशाल विभिन्नताओं और गहराई के सम्पर्क में अभी तक नहीं आ सका है। उसके जीवन के सामने केवल दो ही आदर्श हैं—प्रथम रामायण आदि धार्मिक पुस्तकों में पढ़े आदर्श सदाचार और नैतिकता तथा दूसरा अपनी विकट गरीबी से बचने के लिए निरन्तर लड़ते रहना और धनिकवर्ग के शोषण का शिकार बनने से बचना। इन आदर्शों का अध्ययन अपनी ही धारणा के अनुसार उसने बहुत ही प्रारम्भिक और कट्टर-पन्थी पहलू से किया है। इसलिए इस आत्मरक्षा के उद्देश्य से की गयी हत्या में, मैं इस माननीय इजलास से इस बालक को निरपराध घोषित करने के लिए प्रार्थना करता हूँ।"

वकील महाशय आगे कहने जा रहे थे कि कोर्ट ने कहा, "कोर्ट एक घण्टे के लिए स्थगित की जाती है।" जज उठ कर अपने कमरे में चले गये।

मैं और वकील साहब सोभुआ के पास जाकर वार्ता करने लगे। नाश्ता मँगाकर मैंने कहा, "कुछ नाश्ता करो न सोभू?"

उसने कहा, "अब जी कुछ नहीं चाहता मालिक!"

मैंने सान्त्वना के स्वर में कहा, "धैर्य्य धारण करके तुम परिस्थिति का सामना करो सोभू!"

सोभुआ ने कहा, "मुझे भूख नहीं है मालिक!"

मैंने वकील महाशय से सिगरेट लेकर सोभुआ को देते हुए कहा, "भूख नहीं है तो लो यह सिगरेट पीओ।"

उसने सर हिला कर भरी हुई आवाज में कहा, "नहीं।"

मैंने फिर पूछा, "खाली पानी पीओगे? प्यास लगी होगी?"

सोभुआ कुकुरू बैठ गया और अपने दोनों हाथों को घुटनों पर रक्ख कर अपना मस्तक उन्हीं पर टेक कर के मुंह उन्हीं के बीच छिपा लिया। वह थका तो पहले था। अब जब वह कोर्ट रूम के बाहर आया तब उसे अनुभूत होने लगा कि उसके शरीर और मन पर इन वकीलों की उसके जीने-मरने के सम्बन्ध की बहस मुबाहसा ने कितना बोझ डालरक्खा था और वह उससे कितना थक गया था। जीवन को सुरक्षित रखने और उससे अपनी ममता जोड़े रहने के इसके सारे कल्पित विचार और भावनायें अब उसके निकट से अति दूर हो गयीं थीं। उसकोट रूम में उसके साहस ने जबाब देदिया था, धैर्य्य छूट गया था, केवल भय और आतंक तथा कभी कभी क्रोध की ही अनुभू-

तियां उसके हृदय में शायद बच रही थीं। मैंने पूछा, "क्यों सोभू ?' थक गये हो क्या ?"

सोभुआ ने कहा, "नहीं तो ! पर और कितने दिनों तक यह तमाशा होता रहेगा ?"

मैंने साहस बधाते हुए कहा, " यह तो ठीक नहीं कह सकता। पर तुमको वीर बन कर इसको सहन करना ही पड़ेगा।"

सोभुआ ने भरी आवाज में कहा, "मैं चाहता हूँ कि यह तमाशा शीघ्र खतम हो जाय।"

मैंने कहा, "यह तमाशा नहीं है सोभू ! यह तुम्हारे जीने मरने का प्रश्न है। तुमको इससे लड़ना ही होगा भागना नहीं।"

सोभुआ ने और निराशा भरे स्वर में उत्तर दिया, '"मालिक ! मुझको अपने जीने मरने की चिन्ता नहीं है। मैं यही चाहता हूँ कि यह तमाशा शीघ्र खतम हो।"

वकील साहब ने कहा, "सोभू, चिन्ता न करे। तुम्हारे केस में पहले प्राण नहीं था पर अब तो वह सौ फी सदी मजबूत है। तुम ने सची सची बातें कह कर और भी जान डाल दी है। फिर बुधिया की गवाही तो केस पर जीत की मुहर लगा दी है। ऐसा केस नहीं जीतूँगा तो कौन सा केस जीता जायगा। मंगरा ने सरकारी गवाह होकर भी सभी बातें सची कही। अब केस जीतने में संशय नहीं। तुम घबड़ाओ नहीं सोभू ! मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ विना तुमको छुड़ाये अब मैं बैठूँगा नहीं।"

सोभुआ सिसक कर रोने लगा। शायद निराशा में करुणा नही आती। वहाँ desperate कठोर भावों का उदय होता है। पर आशाके आते ही संसार उतर पड़ता है। ममता जाग जाती है और

करुणा पथ्थर से पथ्थर हृदय को पिघला देती है। इतने में एक सिपाही ने सोभुआ के पास खड़े सिपाही से आकर कहा, "कोर्ट का समय हो गया। मुजरिम को ले चलो। हम लोग जब कोर्ट में गये तब जज के आने पर हमारे वकील ने फिर बहस आरम्भ की :—

"माननीय महोदय, विपत्ती विद्वान वकील ने जो सोभुआ और बुधिया की प्रेम कहानी को गढ़ा है उसमें कोई सत्य नहीं है। मंगरा का जिरह, बुधिया की गवाही और सोभुआ के बयान से यह आरोप गिर जाता है। यह किस्सा केवल इसलिए गढ़ा गया था कि सोभुआ के हत्या करने का motive उद्देश्य सिद्ध हो सके। पर वह साबित नही हो सका। विपत्ती ने एक भी ऐसा गवाह नहीं पेश किया जो इनके love affairs प्रेम की कहानी के पत्त में इजहार किया हो और जिरह में उखड़ न गया हो। कोर्ट उनके बयानों के ये वाक्य उदाहरण के लिए सुन सकता है। इसके बाद उन्हों ने इन गवाहों के बयानों के आवश्यक अंशा को पढ़कर सुनाया कोर्ट ने उनको नोट किया।

जब जज ने नोट करना बन्द कर दिया तब वकील साहब ने चश्मामेज पर रख कर गम्भीर मुद्रा में पुनः कहना प्रारम्भ किया, सम्मानीय इजलास! अपने जीवन भर में कभी भी इतना प्रबल विश्वास के साथ मैंने बहस नहीं की थी जैसा कि आज इस केस में कर रहा हूँ। मैं यह जानता हूँ कि आज जो कुछ मैं कह रहा हूँ उससे एक सुसभ्य नेशन का सम्बन्ध है जिससे सम्भव है उस नेशन के सौभाग्य को धक्का लगे। परन्तु ठोस सत्य को प्रगट करना ही सच्चे वकील का काम है। मेरी बहस किसी एक विशेष व्यक्ति से सम्बन्धित नहीं है। यह एक मात्र इस धनिक वर्ग से सम्बन्ध रखती है

जिसने आज अपना अलग नेशन ही इस संसार में बना लिया है। अतः मेरी बहस मानवी न्याय के आधार पर ही खड़ा होने का अधिक प्रयत्न करेगी। इसलिए शायद एक तरह से सार्वभौमिक सत्य के लिए यह सौभाग्य की बात है कि इस बालक ने अपने मालिक धनी जमीन्दार की हत्या सत्य की रक्षा में की है। क्यों कि इसके जीवन के विश्लेषण से हम यह जान सकेंगे कि इस बालक पर क्या-क्या बीता है। यदि हम लोग यह समझ सके कि इसके जीवन और भाग्य हम धनिक वर्ग वालों के जीवन और भाग्य से कितने जुदे हैं पर तब भी किस बुरे तरीके से उनके उन्नतशील द्रुतगामी विशाल जीवन के पीछे घसीटे जाने के लिए बाध्य किये जा रहे हैं और इनके विकाश के साथ वे किस तरह पीसाते चले जा रहे हैं तभी शायद हम अपने इस केस के सम्बन्ध की वास्तविक बातें और हत्या के वास्तविक कारणों को जान सकेंगे।

"हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हमारे समाज की धाँधली आज इतनी बढ़ गयी है—सबलों और धनिकों का शोषण इतना संगठित और कानून के रूप में हो रहा है कि हर गरीब स्त्री-पुरुष का जीवन हर घड़ी हर जगह खतरे में गुजर रहा है।"

"मैं इस कोर्ट के सामने बदतहजीब नहीं बनना चाहता, पर साथ ही मुझे इमानदार भी बनना ही है। क्यों कि एक मनुष्य का जीवन खतरे में है और मैं उसका वकील हूँ और यह आदमी भी साधारण हत्या का ही अपराधी नहीं है बल्कि एक बड़ी भारी सनसनीदार हत्या को करने वाला है। और इसीलिए धनिकों का इतना जबर्दस्त और संगठित विरोध भी है, और उसी वजह से कानून के खिलाफ हथकड़ियों में जगड़ कर इस प्रतिबादी को अपने सामने

लाये जाने में कोर्ट हजुर भी नहीं किया है। परन्तु कानून की दृष्टि में तो कोर्ट के सामने सब अभियोगी एक समान ही तब तक दोष रहित हैं जब तक उनपर अभियोग प्रमाणित नहीं होता।"

जज ने कहा, "आप को मेरा ध्यान इस बात की ओर पहले ही आकर्षित करना चाहता था। मुझे दुःख है कि मैंने पहले इसे नहीं ध्यान दिया।" फिर उन्होंने इजलास में खड़े पुलिस को सोभुआ की हथकड़ी बड़ी खोल देने की आज्ञा दी। वकील ने अपनी गलती स्वीकार करके अदालत को इस कृपा के लिए धन्यवाद दिया और आगे कहना प्रारम्भ किया, "यह अपराधी अन्य अपराधियों से भिन्न हैं। समाज की सम्मिलित शक्तियों ने आज इस मुकद्दमा का रूप ही बदल डाला है। आज इस अभियोग को जितना सोभू पर लगाने का दावा प्रति-पक्षी वकील करते हैं उससे अधिक बड़ा अभियोग लगाने का दावा मैं समाज की उन शक्तियों के विरुद्ध करता हूं जिन्होंने सोभू से जमीन्दार को हत्या करवायी है। इसलिए यह मुकद्दमा एक नमूना का मुकद्दमा है। मनुष्य के स्वार्थ और पक्षपात पूर्ण विश्वासों ने इस मुकद्दमें को छांट कर वैसाही अलग कर दिया है जैसा कि एक कीटाणु को मैं क्रासकोप की परीक्षा के लिए हम अलग छाँट लेते हैं। उच्च वर्गीय सभ्य तथा विचारशील कहे जानेवाले सुसंगठित पर अत्या-चारी समाज को उसके असभ्य, मूर्ख और दलित कहे जाने वाले सामाज के साथ तुलना करके ही हम कह सकेंगे कि रोग कि जड़ कहाँ है और दोषी कौन है।"

"सम्माननीय इजलास से मेरी विनीत प्रार्थना है कि दलित वर्ग के अभियुक्त सोभुआ के जीवन को सम्पूर्ण रूप से समझ लेना हमारे लिए ऐसी अनुपम बात होगी कि उसके सहारे हम अपने

सदियों से शिथिल की हुई भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप से देख सकेंगे। हम इसके सहारे अपने यथाकथित सामाजिक आतंक की अन्धकार मयी रजनी से निकल कर न्याय के प्रकाश में आ सकेंगे। और भूत में दी गयी फासियों के कितेक अन्याय पूर्ण अज्ञात बातों का पर्दा भी इसी के सहारे हमारे सामने खुल जायगा। और जब निष्पक्ष भाव से हम समाज के इस धांधली का नग्न दृष्य देखने में समर्थ हो जौंयगे तब माननीय कोट को ज्ञात होगा कि हम और हमारे पूर्व्वज न्याय के मामलों में किस तरह स्वप्न-पथिक की तरह विचार हीन हो कर सत्य को असत्य, न्याय को अन्याय, और असत्य को सत्य तथा अन्याय को न्याय मानते आये हैं।"

"परन्तु मैं इजलास के सामने जादू की कोई बात नहीं कह रहा हूँ। और न कोई अनुचित मांग ही पेश करता हूँ। मैं यह नहीं कहता हूँ कि केवल सोभुआ का जीवन समझ लेने से हम अपनी अन्य समस्याओं को हल कर लेगें या जब हम उसके जीवन की सब बातें जान जौंयगे तो हम स्वतः भी जान लेगें कि इस मामले में हमें क्या करना है। किसी के जीवन को समझ लेना इतना आसान नहीं है परन्तु इतना मैं कोर्ट के सामने अवश्य कहूँगा कि मेरी बहस के बाद भी यदि कोर्ट यह समझे कि फाँसी की सजा आवश्यक है तो वह वैसा करने को स्वतन्त्र है। मैं तो कोर्ट के सामने यह साफ साफ समझा देना चाहता हूँ कि हमारे सामने केवल दो ही रास्ते हैं फाँसी या रिहाई और उन दोनों का समाज पर क्या क्या परिणाम होगा। यह समझ कर भी यदि हम फाँसी देना उचित समझते हैं तो फाँसी की आज्ञा दें और यदि निपराध समझ कर रिहा करना न्याय मानते है तो वैसा फैसला करें। परन्तु जो कुछ भी

फैसला हम करें हम जान समझ करही करें क्यों! फैसले का असर हमारे लिए और उन लोगों के लिए जिन पर वह हो रहा है बहुत बड़ा होगा क्यों कि न्यानालय द्वारा अपराधी को दण्ड केवल समाज को शिक्षा देने के लिए ही दिया जाता है न कि बदला लेने के लिए। मृत्यु दण्ड या अन्य दण्डों का उद्देश्य सदा सुधार की हित कामना है न कि बदला की भावना।"

"मैं इजलास को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं न्यायालय की जिम्मेदारियों से अनभिज्ञ नहीं हूँ परन्तु जैसी परिस्थिति इन कुचक्रियों ने इस मुकदमे में उत्पन्न कर दी है उस दशा से मैं सिवाय इसके और दूसरा कर ही क्या सकता हूँ। रात-रात भर जग कर मैं यही विचारता रहा हूँ कि किस तरह से कोर्ट को मैं यह समझा सकूँगा कि इस अछूत बालक ने अपने मालिक जमीन्दार की क्यों हत्या की और फिर क्यों उसे दिलेरी के साथ स्वीकार भी कर ली। मैं किस प्रकार आज के कानून और शास्त्री प्रधान कोर्ट को जिसके दो सदस्य अभी इस मुकदमे में अपनी दुर्बलताओं के कारण इन धनिकों के संगठित संस्थाओं का शिकार बनकर गिरफ्तार हो चुके हैं यह बता सकूँगा कि सोभुआ ने अपने जीवन, इज्जत और पवित्रता की रक्षा में ही—अपने को जमीन्दार द्वारा होने वाले बलात्कार से बचाने के लिए ही उसकी हत्या की? मैं सदा यही सोचता रहा हूँ कि इन जूरियों को जो धनिकों के वर्ग के ही अधिक होते हैं और जिनके पास सिफारिश अत्यधिक रूप में पहुँचा करती है कैसे इस केस की सत्यता को और कानून के मतलब को जता सकूँगा। भाग्यवश यह कोर्ट ऐसा मिल गया है कि हमारी बातों को सुनने का उसमें धैर्य्य हैं। और इसी से मुझे इन्साफ की आशा है।"

"इस केस की जाँच में पुलिस ने धन के लोभ में पड़कर धनिकों की प्रेरणा से कैसी ज्यादतियाँ इन निरीह गरीबों पर की है यह कहने की बात नहीं है। उस थाने के सभी गाँवों में जमीन्दार का कोई ऐसा दुश्मन नहीं होगा जिसके घर की तलाशी न ली गयी हो और उससे पुलिस ने कुछ वसूल न किया हो, परन्तु इस नये अभियोग को साबित करने के लिए हमारे पास प्रमाण होकर भी धन नहीं है। आज का न्याय धन का न्याय है। विना धन के न्याय हो नहीं सकता है। फिर धनिक वर्ग द्वारा संचालि जितने पत्र पत्रि-कायें हैं सबों ने एक स्वर से सोभुआ को फैसला होने के पूर्व ही दोषी करार दे दिया है। तो धनिक वर्ग के इस बदला लेने वाले वातावरण में एक अछूत बालक को निर्दोष साबित करना कितना कठिन कार्य्य है। यह न्यायालय स्वयं समझ सकता है।"

"इनउत्तेजनाओं और बैर पूर्ण बदला के भावनाओं का आखिर क्या कारण है? क्या ये कारण सोभुआ के अपराध में ही निहित हैं? क्या कल तक दलित और गरीब अछूत आदर और सत्कार की दृष्टि से देखे जाते थे और आज वे इस अपराध के कारण घृणा किये जाते हैं? जमीन्दार के थाना भर के गरीब दुश्मनों के घरों की तलाशी क्या केवल इसी लिए ली गई और वे इसी लिए पुलिस को खेत, घर बेच कर रकम अदा किये कि सोभुआ ने व्यक्तिगत रूप से इस हत्या के अपराध को किया था? सम्मानीय इजलास जानता है कि ऐसी बात नहीं है। इन उत्तेजनाओं के सभी कारण सोभुआ के अपराध करने के पहले से समाज में मौजूद थे। गरीब, दलित, अछूत और असमर्थ-धनिकों द्वारा पहले भी वैसे ही घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे जैसा कि आज वे देखे जा रहे हैं। इस हत्या से

कहीं अधिक भयंकर अपराध इसी जिले में आज से पूर्व सैकड़ों की संख्या में इन धनिकों द्वारा किये गये हैं। परन्तु वे सबके सब धन के बल से प्रकाश में नहीं आ सके। धनिकों ने हत्यायें की और दूसरी हत्यायें करने के लिए वे साफ कानून के पंजे से धन की सहायता लेकर बच गये। ये सभी अपराध हुए और प्रकाश में नहीं आये और जो आये भी तो ऐसा सनसनीदार वातावरण नहीं उत्पन्न हुआ क्योंकि धन बल उनके पीछे काम कर रहा था।"

"न्यायालय के सामने जो यह भीड़ जमीन्दार के पक्ष का समर्थन करने को खड़ी हैं वह अपने मन से यहाँ नहीं आयी है। यह जमीन्दार के प्रचार और धन की प्रेरणा से यहाँ लायी गयी है। कुछ दिन पहले तक ये लोग इस केस से कुछ दिलचस्पी नहीं रखते थे।"

"अब मुझको इस सम्बन्ध में अधिक कहकर कोर्ट का अमूल्य समय नष्ट नहीं करना है। कोर्ट स्वयं इन बातों को जानती है और कोर्ट के सामने सहादत के सारे कागजात मौजूद हैं। वह इनको पढ़कर मेरी बातों की सत्यता जाँच सकती है। बहस का यह उद्देश्य नहीं है कि निरर्थक बकवाद करके कोर्ट का समय नष्ट करे। बहस में तो विचार करने के विभिन्न पहलूओं से कोर्ट को भिज्ञ कर देना हैं जिससे उसे उन पहलूओं से भी विचार करके निर्णय करने में सुभीता हो। मेरा विश्वास है कि मेरी बातों पर विचार कर के कोर्ट मेरे पक्ष के निर्णय पर ही पहुँचेगी और सोभुआ को मुक्त करने की आज्ञा प्रदान करेगी। सरकारी वकील ने जो अपनी बहस से कोर्ट की भावुकता (sentiments) को जगाने का आद्योपान्त प्रयत्न किया है उसका प्रत्युत्तर मुझे कोई देना नहीं है। कोर्ट (sentiment) भावुकता से नहीं बल्कि (reason) विवेक से (judment) निर्णय

देती है। और (sentiment) भावुकता का शरण कोई वकील किसी केस की बहस में तभी लेता है जब उसके पास अपने पक्ष के प्रमाणों का अभाव रहता है। वही बात मेरे विद्वान मित्र वकील की हुई है। और इसी लिए उनके उन भावुक आक्षेपों का उत्तर मैं नहीं देना चाहता।"

वकील साहब बैठ गये। सरकारी वकील इस बहस से अप्रतिभ हो उठे। उन्होंने पांचमिन्ट में इधर उधर की बातों को लेकर अपना प्रत्युत्तर समाप्त किया। कोर्ट ने परसों यानी २६-१२-४३ को निर्णय सुनाने की तारीख देकर दूसरा केस देखना शुरू किया।

कोर्ट से बाहर आकर मैं और वकील साहब सोभुआ से कोर्ट में बने हुए हाजत के कमरे में मिले। हथकड़ी बेड़ी से वह बालक जकड़ा हुआ था। प्रसन्न तो दीखता था पर रह रह कर उद्विग्न भी हो उठता था। हमें देखकर वह अपने उमड़े हुए आसूँओं को जब नहीं रोक सका तब मुस्कुरा कर अपनी उस निर्बलता को छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "मालिक, मैं अपने मरने के भय से नहीं विचलित होता। पर आप लोगों का स्नेह और बाबू माई का विछोह ही मुझे विचलित कर रहें हैं। मैं वकील साहब को बधाई देता हूँ कि उन्होंने मुझ गरीब और असहाय को विना फीस के इतनी मदत किया। इस के लिए मैं वकील साहब का दूसरे जन्म में भी ऋणी रहूँगा"। यह कह कर वह वकील साहब के पावों को छू लिया।

वकील ने उसकी पीठ थपथपा कर कहा, "मुझे फीस का ख्याल नहीं है सोभू! ईश्वर तुम्हें बचा दें यही इच्छा है। मुझे उमीद है कि तुम छूट जाओगे। आगे ईश्वर मालिक है। हमने अपनी शक्ति भर परिश्रम कर दिया।"

सोमुआ गद्‌गद् होकर उठा और मेरे चरणों पर गिर कर रोने लगा। मुझे भी रूलाई आ गयी। झुक कर उसे उठाया और हृदय से लगा लिया। वह बेचारा मुझे पकड़ कर रोता रहा। दो एक मिन्टों तक हम वैसेही रहे। फिर मैंने उसे हटाकर सान्त्वना दी। उसने कहा, "मालिक बाबू माई से भी मिला देगें।" वह फिर रोने लगा।

मैंने कहा, "अरे मैं तुमको ही छुड़ाकर वहाँ ले चलता हूँ। तुम क्यों, परीशान हो रहे हो?"

अब उसको अपनी निर्बलता का ध्यान आया। उसने आँसू पोछ डाले। प्रसन्न सा होकर कहा, "मालिक मुझे अब जरा भी दुःख या शोक नहीं है। मुझे गर्व है कि मैंने अत्याचारी को सजा दी। यदि मैं उसे नहीं मारता तो वह बुधिया की इज्जत नष्ट किये विना नहीं मानता। फिर आपने और वकील साहब ने दो और डिप्टियों को, जो न मालूम कितने निरपराधों को सजा दिये होंगे पकड़वा दिया। अब मेरी जान यदि इन तीन बड़े पापियों को सजा देकर चल ही जाती है तो मुझे दुःख नहीं है। मैंने भारत माता के बोझ को कुछ हल्का किया है। मैं प्रसन्न हूँ मालिक।"

मैंने पूछा, "कुछ खाओगे?

उसने प्रसन्नता पूर्वक कहा, "हाँ भूख तो लगी है।"

मैंने, पूड़ी मिठाई मगा कर उसे खिलाया। और जब वह खाने लगा तो वकील साहब चले गये। खापीकर वह प्रसन्न मन बैठ गया और गुनगुनाने लगा। फिर धीरे-धीरे गानेलगा—

समय अइसे बीतल चल जा रहल बा॥
घड़ी दिन महीनन से आगे निकलि के,
ई बरिसन में अपना के गिनवा रहल बा।

ओसहीं ई सरिसों के फूलन से होइ के,
आ गंगा आ जमुना के कूलन से बहिके,
जे एकरा के प्रतिपल जलवलनि मिटवलनि,
ओही नाश के मूल भूलन के गहिके—
ललकारत गइल रहे हमरा के ओह दिन,
उहे बात फेनि आजु दोहरा रहल बा ॥१॥

नया उलझूनन के नया जाल बीनत,
नया स्वर, नया ताल के राग गावत,
हम विस्मृति में अपना पड़ल डूबल डूबल,
ओह छोटकिन भूलन के इतिहास गूनत,
विदा करि देलीं एक के सान्ति से, तब
जेकरा बुलवलीं से अब जा रहल बा ॥२॥

बहुतन गुनाहन के तोबा रहलीं कइले,
बहुतन सुधारन के आशा रहीं बँधले,
यही जायेवाला के आवत समुझि के,
बहुतन विचारन के आसरय रहीं दिहले,
पडल रह गइल मन के ऊ जोजना सब,
ई आके स्वयं ही चलल जा रहल बा।

हमे वेदना के पिआला पिअवलसि,
हमे जातना के दुनिया दिखवलसि,
कृतघ्नी हईं ना—हम ई मानीला भाई !
रोआ के तू हमरा के अकसर हसवल
सुभासीस द जाती बेरिया मुसाफिर
ऊ होखे सुखद जे अब आ रहल बा॥

अर्थ—समय इस तरह से बीतता चला जा रहा है। यह क्षण घड़ी, दिन और महीनों से आगे निकलकर अपने को वर्षों में गिना रहा है यानी परिणत कर रहा है।

उसी प्रकार यह छोटा क्षण सरसों के फूलों की मस्ती में अठखेलियाँ करता हुआ और गंगा और यमुना के कूलों में फिरता हुआ चला जा रहा है। जिनने इस क्षण को प्रतिपल जलाने और मिटाने का प्रयत्न किये और यह उन्हीं नाश के मूल भूलों को पकड़कर एक दिन मुझको ललकारता हुआ मेरे सामने से चला गया था आज फिर उसी बात को यह क्षण मेरे सामने दुहरा रहा है।

समय इस तरह से बीतता चला जा रहा है। यह नयी-नयी उलझनों के नये-नये जालों को बीनता हुआ और नये स्वर और नये रागों को नये तालों पर गाता हुआ चला जा रहा है। मैंने अपनी विस्मृति में डूबा-डूबा जीवन की उन छोटी-छोटी भूलों के इतिहास को गुनता हुआ, जब अपने जीवन के एक क्षण को शान्ति के साथ विदा कर दिया, तब दूसरा क्षण भी जिसको मैंने आशा के साथ बुलाकर रखना चाहा थ अब चला जा रहा है।

इस तरह से समय बीतता जा रहा है।

मैंने अपने बहुत से गुनाहों का तोवा किया था। बहुत-से सुधारों की आशा भी बाँध रक्खी थी। इसी जानेवाले समय को आता हुआ समझकर मैंने बहुत-से विचारों को अपने मन में आश्रय भी दे रक्खा था; परन्तु मन की वे सारी योजनायें पड़ी ही रह गयीं और यह समय आया और स्वयं चला जा रहा है।

इस तरह से समय बीतता चला जा रहा है।

इसने हमको वेदना के प्यालों को पिलाया, हमको यातना की दुनियां को भी इसने दिखाया। हे भाई, मैं कृतघ्नी नहीं हूँ। मैं

यह भी मानता हूँ कि तुमने हमको अकसर हँसाया भी है।

अब हे मुसाफिर, आने के समय मुझे शुभाशीस दो कि जो अब आ रहा है वह सुखद हो, मंगल और कल्याणकर हो।

समय इस तरह बीतता चला जा रहा है।

गीत गाते गाते सोभुआ इतना तन्मय हो गया था कि मेरा वहाँ रहना भी शायद भूल गया था। उसके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे थे और शरीर सब पुलकित था। हाजत के फाटक के बाहर ५० वकील और असंख्य जनता की भीड़ गीत को सुनने के लिए इकट्ठी हो गयी थी। सभों के नेत्र उस गीत के दर्द भरी आवाज से तथा करुण भावनाओं से भींग गये थे। सब शान्त होकर प्रस्तर मूर्ति की तरह सोभुआ को निहार रहे थे। जिस कोर्ट के सामने सोभुआ का केस था उसके निकट ही हाजतखाना भी था। आवाज वहाँ तक सुन पड़ती थी। चपरासी ने आकर मुझसे पूछा, "यह कौन गा रहा है। जज साहब ने गीत को सुना और मुझे हुकुम दिया कि देखो कौन गा रहा है।"

मैंने कहा, "यह वही सोभुआ नामी मुजरिम है जिसकी बहस अभी उनके इजलास में समाप्त हुई है।" चपरासी चला गया।

मैंने सोभुआ से विदा मांगी और उसने प्रसन्न मन होकर मेरा पाँव छूआ। मैं बाहर निकल आया और सोभुआ को भी सिपाही जेल ले चले। रास्ते में भी इसी गाने को मस्त होकर वह गाने लगा। शहर की सड़क से आगे आगे गीत गाता हुआ मस्त सोभुआ जा रहा था और उसके पीछे मन्त्र मुग्ध की तरह हजारों की भीड़ चुपचाप किसी विशेष आकर्षण से खिंचती हुई चली जा रही थी। जेल के फाटक पर जब वह भीतर घुसने लगा तो उपस्थित जनता ने उसकी जय मनायी।

पसिया के टोटा।

२७-१२-४३

कल्ह जजने सोभुआ को निर्दोषी घोषित करके छोड़ दिया। मैं उसे लेकर आज पसिया के टोला आया। मंगरा भी छूट गया। वह भी साथ था। टोला भर में बड़ा आनन्द मनाया गया। बुधिया सोभुआ को वापस देख बहुत प्रसन्न हुई। सोभुआ और मंगरा के माँ बाप की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। सन्ध्या समय गाँव भर की सभा हुई। प्रार्थना आदि के बाद मैंने सभा के सामने प्रस्ताव रक्खा कि सोभुआ का विवाह बुधिया से कर दिया जाय। जब पञ्चों ने जाति का प्रश्न उठाया तो मैंने उन्हें समझाया कि जाति ईश्वर की बनाई चीज नहीं है। तुम सब गरीब जाति के आदमी हो। यदि इन दोनों में से कोई एक धनिक जाति का होता तो मैं स्वयं ही इस सम्बन्ध का विरोध करता। सोभुआ के पिता रमेसर राम और चचा कवलेसर राम ने भी मेरी बातों का समर्थन किया। बुधिया के माँ बाप पहले कुछ आना कानी किये पर अन्त में वे भी राजी हो गये। जब सब पञ्च राजी हो गये तो मैंने बुधिआ और सोभुआ को पास बुला कर बुधिआ का हाथ सोभुआ के हाथ में पकड़ा कर उन्हें आशीर्वाद दिया और पञ्चों से आशीर्वाद दिलवाया। इसके बाद मैंने पञ्चों और वर कन्या के माँ-बाप से कहा, "मैंने विवाह करा दिया अब उसमें कोई बात बाकी नहीं रही। फिर भी यदि तुम लोग चाहो तो जाति प्रथा के अनुसार ब्राह्मण के माध्यम से विवाह सम्पन्न करा सकते हो। सबों ने एक स्वर से कहा, "आप से ब्राह्मण बढ़ कर नहीं हैं। विवाह हो गया। कल भोज होगा। आप को भी हमारे साथ खाना होगा।" मैंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। पर शर्त यह रक्खी कि गाँव वाले आज से शराब पीना छोड़ दें। इसे भी सबों ने स्वीकार किया।

सभा विसर्जित होने पर गाँव की सब स्त्रियों ने एक जगह खड़ी

होकर वर बधू का ग्रन्थि–बन्धन किया और मंगलगान गाया गया। फिर युगल जोड़ी को लेकर आधीरात तक वे हर देवस्थान का दर्शन करती रहीं और उसके बाद अन्य विधि व्यवहार करायीं। सारी रात इसी विवाहोत्सव और विधि व्यवहार के सम्पादन में उनका व्यतीत हो गया।

पसिया के टोला

२८-१५-४३

आज भोज हुआ। दाल भात और बडी फुलौरी तथा कद्दू और लौकी की तरकारी भोज्य सामग्री थी। जब पासिओं की पंगति बैठी तो मेरा भी बुलाव हुआ। मेरे लिए एक चौकी पर अलग आसन था। मैंने चौकी हटवा कर पंगति के साथ आसन रखवाया। भोजन के पूव मैंने बुधिया के परिवार को भी उस भोज में बुलवाया पर उन्होंने कन्या के घर के भोजन करने से अस्वीकार किया। भोजनोपरान्त बुधिया सोभुआ के घर पहुँचा दी गयी।

पसिया के टोला

२६-१२-४३

आज गाँधीग्राम का काम जो मेरी अनुपस्थीति के कारण कुछ ढीला पड़ गया था बड़े जोरों से शुरू हुआ। दीवाल तीन फुट तक उठ गयी है। कुछ लोग जंगल से लकड़ी काटने गये तो जमीन्दार के सिपाही ने उन्हें रोका। पर मृत जमीन्दार की लिखित आज्ञा जब तहसीलदार को दिखायी गयी तो वह मान गया और लकड़ी काटने का हुकुम दिया।

आज जब बुधिया चौका वर्तन करने के लिए आयी तो उसमें मैंने अवर्णनीय परिवर्तन देखा। लाख चाहता हूँ कि उसके प्रफुल्ल चेहरे को, उस तृप्त प्रसन्नता को, जिस की उपमा हम भूखे बच्चे के स्वादिष्ट भोजन खाने के उपरान्त की आकृति से कुछ कुछ दे सकता हूँ, मैं वर्णन करूं पर नहीं कर पाता। वह शर्माती नहीं

थी पर पूर्व्व की स्वच्छन्दता में कुछ कमी अवश्य दीख पड़ती थी। उसके काम करने की फूर्ती में कोई कमी नहीं थी फिर भी उसके हांथ पाँवों में वह पूर्व्व वाली लाघवता और चञ्चलता में बार भर की कमी मुझ सूक्ष्मदर्शी लेखक को अवश्य ज्ञात होती थी। उसके शरीर पर अब पीत सारी थी। वक्षस्थल लाल कंचुकी से ढ़के थे। वह अपने को इनमें पाकर एक ओर तो अवस्था सुलभ सजने की आकांक्षा की तृप्ति होने की प्रसन्नता अनुभत करती थी पर दूसरी ओर अपने को इस नूतन लेवास में मेरे सामने देख कर लजाती भी थी। रह रह कर अञ्चल वक्षस्थल से हट कर पृथ्वी पर गिरजाता और वह झुझला कर उसे कन्धे पर फेक देती। उस समय उसकी नाक के बगल में झूझलाहट की रेख खिच तो जाती पर चेहरा पर आन्तरिक आह्लाद के समान सन्तुष्ट मन की प्रसंन्नता, भूख की तृप्ति की तरहका आनन्द उस झुझलाहटवाली रेखा के बीच ऐसा झलकता कि लेखककी लौह लेखनी भी उस सौन्दर्य्य को वर्णन करते समय ठिठक कर रह जाती। भोजन बनाकर जब वह मेरे सामने आकर खड़ी हो भोजन करने की प्रार्थना करने लगी तो उसकी आँखे मेरी आखों से पूर्व्ववत मिलती नहीं थीं उनमें वह स्वच्छन्दता नही थी—वह निर्भीकता, वह भोलापन, वह अनभिज्ञता अब नहीं थी जो पूर्व्व में मैं देखा करता था। मुसके मुख को अंङ्गप्रत्यङ्ग को, मैंने ध्यान से देखा और जानना चाहा कि इन बारह घटों की रात ने उसमें क्या क्या परीवर्तन कर दिया है। वृद्ध आँखों ने क्षण भर ही में सब देख लिया। सभी अंग गरम पानी से धोये हुए शरीर की तरह प्रफुल्ल, दीप्त, लाल थे। रक्त का संचार नस नस में प्रवाहित था। फिर भी सर्वत्र आनन्द, परितृप्ति, प्रफुल्लता और आसूदगी दीख रही थी। उसका मन मानो मेरे सामने चोर सा होकर खड़ा था। वह मेरे सम्मुख से हटना चाहता था। पर उसका वैसा

होना भय के कारण वश नहीं बल्कि लज्जा और संकोच वश ही था। फिर भी उस जरी सी झिनी और फीकी लज्जा को भी वह किसी तरह मेरे समक्ष प्रकट नहीं होने देना चाहता था और चाहता था कि मैं उस लज्जा को न देख पाऊँ। मैंने एक आध मिनट ही बुधिया की ओर नजर करके निहारा होगा पर उतने ही में वह पूर्व कल्पित भावनाओं के प्रत्याक्रमणों से पानी पानी हो गयी। उसकी नासिका और माथा पर कणों के रूप में पसीना निकल आये। मैं उठकर खाने गया। बुधिया उसी पूर्व प्रेम के साथ पंखा झलने लगी। मैंने अपने मन को टटोल कर देखना चाहा कि उसमें क्या भाव हैं। वह बुधिया के इन परिवर्त्तनों को क्यों और किस अभिप्राय से देख रहा था? बहुत ढूढ़ने पर भी अपने मन के इस चोर को तो मैं नहीं पकड़ पाया पर इतना जरुर अनुभूत किया कि अब मैं भी बुधिया के सामने पूर्व प्रेम तथा स्वच्छन्द और उनमुक्त व्यवहारों के साथ नहीं खड़ा हो सकता। क्यों? यह तो नहीं कह सकता। पर तब भी मैं अपने हृदय के हृदय में एक आशा कहिये या आशा का $\frac{1}{100}$ हिस्सावाला भाव ऐसी चीज लिये हुए स्वतन्त्र बुधिया के के लिए गोप्य आकर्षण अनुभूत करता था वह शायद अब नहीं अनुभूत करता। मानो बुधिया अब दूसरे की है और उसकी ओर का आकर्षण का मार्ग मेरे लिए अब बन्द है। मैं उधर नजर उठाकर उसके रूप को देखने का भी अधिकारी नहीं हूँ। ऐसा कुछ भाव मन के भीतर माल न पाकर भी पकड़े हुए दुःखित चोर की तरह काँपता हुआ अनुभूत हो रहा था। मैंने यह भी अनुभूत किया कि बुधिया के इस निश्छल प्रेम पर जो पहले मुझ या दूसरों पर बिखेरा करती थी किसी ने डाँका डाल दिया है। डाँका नहीं तो बटवारा तो अवश्य

कर लिया है। और उस बटवारे में मेरा हक या दूसरों का हिस्सा कम और उस डकैत का हिस्सा सबसे ज्यादा है। भोजनोपरान्त जब बुधिया मुझे हाथ धोने का पानी दे रही थी तब मैंने उसकी ओर निहारते हुए पूछा, "सोभू को पाकर प्रसन्न हो न बुधिया ?" प्रश्न के इस स्वर में हृदय की हूक का व्यंग था या मन के शुभ भावों की बुधिया के सुख से सहानुभूति नहीं कह सकता। वही बुधिया जिसने मुझ से एक दिन आशनाई और प्रेम का मतलब पूछा था और जमीन्दार के प्रेम पर सोभुआ के नाराज होने से आँसू बहाया था आज मेरे इस साधारण से प्रश्न पर पानी पानी होकर छुई मुई की तरह लजा गयी। क्यों ? समाज की इस में प्रेरणा थी या स्वभाव की ? नहीं कह सकता। ऐसे ही विकट प्रश्नों पर तो यह लोहे की लेखनी रुक जाती है और जड़ बुद्धि का दर्प चूर चूर हो जाता है।

पसिया के टोला

३०–१२–४३

आज का सारा दिन गाँधी गाँव में बीता। टोला के सभी वयोवृद्ध आज काम में लगे हुए है। अब करगह वाला घर जल्द तैयार करना है। क्योंकि कल रात पानी पड़ जाने से दरख्त के नीचे चलने वाले करघो को क्षति हुई। बारह बजे सब घर भी नहीं गये। सब का भोजन बन कर यहीं आया। मेरा भोजन भी बुधिया बनाकर लायी। सोभुआ को भी अपने ही भोजन में से मैं आज खिलाया। मैं और सोभुआ एक साथ बैठ कर खा रहा था और बुधिया सामने बैठी लजानी सी पंखा झल रही थी। सोभुआ की पहले वाली स्वच्छन्दता या स्वतन्त्रता या चपलता में अब गम्भीरता दीखने लगी है।

पसिया के टोला

३१–१२–४३

आज वर्ष का अन्तिम दिन है। यह ४३ की डायरी भी आज ही समाप्त होती है। इनको लिखते समय प्रथम दिन जो मैंने प्रणक्रिया था उसको ठीक से निभाया है कि नहीं इसको मैं दृढ़ता पूर्वक तब तक तो नहीं कह सकता जबतक उन सबो पृष्ठों का सिंहावलोकन न कर जाऊँ पर तब भी इतना जरूर कह सकता हूँ कि इमानदारी बरतने की मैंने आद्योपान्त भरपूर चेष्टा की है। फिर भी बहुत सी ऐसी बातें जो शिष्टता, साधारण व्यवहार के प्रतिकूल थीं और जिसके लिखने से बहुतों के व्यक्तिगत रूपमें दुखित होने की सम्भावना थी मैंने छोड़ दी है। फिर भी इसी तरह की वैसी बातों को रखने को मैंने साहस किया है जिनके लिखने से जन साधारण की कोई शिक्षा या अनुभव या सौन्दर्य्य पाने या मन बहलाव की सम्भावना थी और उनके न लिखने से अपने प्रतिज्ञा के पालन का निर्वाह नहीं होता था। बल्कि साहित्यक दृष्टि से भी उनका छोड़ना अनुचित ही था। प्रयत्न कैसा हुआ यह जब आद्योन्त पढूंगा तबकह सकता हूँ। फिर भी यहाँ यह मुझे स्वीकार ही करना पड़ता है कि कहीं कहीं हमको कल्पना और रंग भरनेवाले स्भाव से काम भी लेना ही पड़ा है जिनके लिए मैंने पहले ही रियायत रख ली थीं। आज काम पर न जाकर वट के नीचे ही पठन पाठन में वर्ष का अन्तिम दिवस बिताया। कल नूतन वर्ष नये उल्लासों के साथ आवेगा।देखें वह भी मेरे लिए कटु हो सिद्ध होता है या कुछ सरसता लाता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति

———❀———
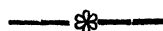
शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
३	२२	साहित्यक	साहित्यिक
५	१४	कलह	कल ही
	१५	फिस लेसलेट	फिश सेट
६	८	नहीं सकते	रहें
	१५	परवाने	पाखाने
६	५	कोई इसका	इसका कोई
१०	१६	सफैया	सफैया
११	६	खाने पीने	खाने बनाने
	११	सिंहजी	सिंह का जी
	१८	व्यंग्य परामर्श	व्यंग में परामर्श
१२	११	अपने अपने व्यक्ति	अपने अपने सेल में व्यक्तिगत
१३	२३	जेलर उसे	जेलर ने उसे
	२४	ले गया और	ले जाकर
	,,	उसे	——
१४	१	जेल में	सेल में
	४	झण्डा उड़ाने	झण्डा न उड़ाने
	१२	जेल	सेल
	१६	तीन	चार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१५	६	रहे थे	रही थी
१७	२१	रात के	रात को
२०	८	सेले ने	लेने से
	१७	पश्चताप पूर्ण	पश्चाताप पूर्ण
२२	२	बालकों को	बालक को
	४	बिला	बिना
२३	८	हुआ	हुये
	२१	विषयों को	विषयों की
२४	३	शतील	शीतल
२५	१२	उनकी	उनको
२७	२२	सोसलिस्ट	सोशलिस्ट
२८	२	ही	हो
	८	परक्रमी के योद्ग	प्रतिक्रिया गामी
	१६	रु करसु	शुरु कर
२६	६	सभा	सभी
	१२	नेता भी	नेताओं ने भी
३०	१६	रावेना दे	रोवे ना दे
३१	३	साद	साथ ही
	१२	सरा	दूसरा
३२	५	भा	भी
	७	जाज	जाय
	१२	भाजन	भोजन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
	२३	ताराख	तारीख
३४	१४	नहीं रहा	नहीं कर रहा
३६	१४	को	के
३६	२०	घूटने	छूटने
	२१	मोका	मार्का
४१	१५	भी	में
	२२	S. P.	D. S,P.
	२३	कारनाम	कारनामें
४२	१८	उमड़ा	उभड़ा
४३	८	फालिन	फॉल-इन
४४	१२	कह रहा था	कह रहे थे
	२२	जाता	जायगा
४५	५	आप	आरा के
	८	अंग्रेज	अग्रज
	१८	को	की
	२०	कार्य्य क्रम सब	सब कार्य क्रम
४६	८	वे उसी से	उसी से
	१५	न कोई दूसरे	न एक दूसरे
	१६	कोई दूसरा	दूसरा
	२१	क्रियशील	कार्य्य कर्त्ता
	२३	बोल उठा	कहा
४७	६	के	ए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
४८	१५	बात में	मित्रों में
	२४	रक्षा न कर	कठोरता सहन न कर
४९	२	उटे	उठते
	१४	दबा	दबो
५०	९	बात	वाद
	१३	अंग्रेज	अग्रज
	१९	करु ँगा	करूँगा
५१	४	है	ही
	७	बचारा	बेचारा
	९	निणाय	निर्णय
५२	२३	दल की संख्या	दल की संख्या यहाँ
५३	२	जब तक	अब तक
	८	पदाधिकारियाँ	पदाधिकारियों
५४	११	हुई । सन	हुई सोसन
५६	७	आये	आये ये
	,,	सोचकर	सोचते हैं
	८	नहीं बढ़ सके	तो बढ़ नहीं सकते
	९	बनाये	बनाओ
	१०	करु ँ	करें
	१६	में उत्पन्न	के उत्पन्न
	१८	आवश्यकता	आवश्यकता है
	२६	शक्ति	शक्ति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
५७	२	को घुस कर	के घुस कर
५६	१३	बिगड़ते	
६०	३	मैं हँस दिया	मैंने हँस दिया
	१८	जानी	जान
	१६	तारीफ	रउरा तारीफ
६२	३	कहल	कइल
	१८	वावू	बाबू
६३	२०	अवसर	अवसर को
	१६	आकारण	अकारण
६६	१३	की	और
	१७	सोसलिष्ठ	सोशलिष्ट
	१७	कम्यूनिस्ट	कम्यूनिस्ट
६७	४	वावू ने मुस्काया	बाबू मुस्काये
	२४	है	हूँ
६८	३	उलधंन	उल्लंधन
	१२	करते वल्कि	बल्कि
	१७	पेन्सिल	पेम्सिल से
६६	१	प्रूपों	प्रूपों
७०	२४	सभपाति	मंत्री
७१	१५	साथ	साथी
	१६	करते भी सफल	करने में उन्हे सफल
	१६	ही	बना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
	१०	भोगने	भागने
	२१	टोस	न ठोसता
७२	१५	कहाँ	कहीं
	२३	भी	की
७४	१६	व्यवहारिकता	व्यावहारिकता
	२४	अपनी को भोला ढोग	अपने ढोंग के भोले में
	७	आदर्शपान	आदर्श पालन
७४	२	को अहिंसा को ढोग की ढोंग	की अहिंसा का ढोँग
	३	का स्पष्ट	की स्पष्ट
	८	१८–३–४३	१२–३–४३
	१६	शरत	शरद्
७५	१२	कानून नाजायज	कानूनन जायज
	१७	वार्ता वरण	वातावरण
७६	६	लाइब्रेरियां	लाइब्रेरीमें
	१६	राखा	राख
	२४	अन्दोलन	आन्दोलन
७७	१५	२६ अप्रैल	——
	१६	१ मई पटना ४३	पटना १ मई ४३
	२२	बेवकूफ	बेवकूफ है
७८	१	जनता	जानता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
	२	की	को
	८	कोँ में	कोट में
	११	उन्हे	———
७६	१३	हो होतो	हों तो
	५	वे गये	वे वहां गये।
	५	मुझ से बोले	उन्होंने मुझसे कहा
	११	अन्दोलन	आन्दोलन
८०	१७	व्याख्या	व्याख्यान
८३	२२	ईख ओट	ईख की ओट
	२३	फ़लाँग	फर्लाङ्ग
८४	२२	घरोहरट	वर्राहट
८८	२२	देखर	देखकर
८६	७	सर्वस्यति	सर्वस्याति
	१०	रोथी	रोया
	११	निरोगता	आरोग्यता
६०	६	अर्तता	आतंता
	२२	जनता	जानता
	२२	ऐजा	ऐसा
६१	२४	यह	———
६२	११	व्थवहारिक	व्यावहारिक
	२२	श्रेयस्यकर	श्रेयस्कर
६४	४	भाव न्यायसंगत	शायद न्याय संगत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
९५	२३	जनन के	जनों के
९६	१	हुई	हटे
	२३	आरखा वासन	आश्वासन
१००	१२	मछली	तरकारी
१००	१३	कलिया	कलेवा
	१७	८–९–४३	३–९–४३
	१८	आठ दिन	तीन दिन
	२०	मित्र	मित्रभी
१०१	१४	तेरे	तले
	२१	देख	देखा
१०२	७	१०	४
१०३	१	मरे	मेरी
	४	११	५
	४	१२–९–४३	———
	७	अक्षर	अक्षर अक्षर
	१४	जानता	जँचता
१०४	९	कोतयय	कतिपय
	१५	६ अक्टूबर ४३	६–९–४३
१०५	१	पारने	पाथने
	१२	गाधाग्राम	गांधीग्राम
	१५	खड़ी	खड़ा
	१५	राय का	रायको
	१६	अभा	अभी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
	१६	६ अक्टूबर ४२	६–६–४२
१०६	५	१० अक्टूबर ४२	६–६–४२
	१४	सा	स
	१८	सेजो	जैसे
	१८	तरल	ताल
१०७	६	इनके	इन
	६	साथ	के साथ
	१०	ई	———
१०८	४	टोनी	कैनी
१०९	२	मनो	मानों
	७	उमका	उनको
	८	वाली	बोली
	११	याना	यानी
११०	२२	खर्च हो	खर्चहीन
	२३	खचो	खर्च
१११	१	बेकारी	बेकारी का
	७	का	को
	६	को	की
	१३	सहानुभूत	सहानुभूति
	२६	करके	करके भी
	१५	में भी	में
	१७	भी लगा	लगा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
११२	७	यही साथ	साथ
	८	बड़ी बोझ लेकर	लेकर
	११	की शरण ली	का शरण लिया
	१७	इस	इन
११३	१२	व्यवहारिकता का रूप धारण कर के	व्यावहारिक रूप से
११४	१६	कोह ?	की हाँ
	२०	खेत से	खेत
११५	२	उन्हों ने	——
	४	सब	——
	२४	गयी	गया
११७	३	निरक्षता	निरक्षरता
	७	पढ़ने का	पढ़ने की
११८	६	११-१०-४३	११-६-४३
११६	६	काली छोटी	काला छोटा
	१२	करती है	करता है
१२०	६	इन का	इन को
	६	देनी	देना
	११	का ही	को ही
	१६	हरन	हरिन
१२१	२४	की	को
	,,	मिन्ट	मिनट

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१२२	२	गया	गये
	२१	झाड़ों	झाड़ी
१२३	२२	रुपया से	रुपयों से
	,,	किसी की	किसी का
	२३	भरी	भरा
१२४	१	कपटते	कुपटते
	१	चीर हारी	चरि हारी
१२५	१३	भागना	भागने
	२४	खरहा	खरहे
१२६	१३	पढ़ता	बढ़ता
	१६	में	से
१२७	२२	को	की
	२४	उसका	उसे
१२८	४	फिर पर	पर फिर
	१६	रहा	रहे
१२६	८	खोल	खाल
१३३	१३	सोभुवा	सोभुआ
	१५	,,	,,
	२३	कचे गोंद	कची गोन्द
१३४	३	सोभुवा	सोभुआ
	१३	,,	,,
	४	कूदता	कूदती

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१३५	७	सोभुवा	सोभुआ
१३६	६	ठंडा	ठण्ढी
	१३	न	त
	२३	चले	चलु
१३७	१	लेवि बाबू	लेवि
१३८	१३	रीक्त	रक्त
१४०	७	मंगरे	मंगरा
	१८	उठा	उड़ा
१४४	१४	अपित	अर्पित
	१७	यथा कथित	तथा कथित
	१८	प्रीतभा	प्रतिमा
	२३	सोभुवा	सोभुआ
१४६	६	१४–७–४३	१४–६–४३
	१२	१५–३–४३	१५–६–४३
१४७	१७	की	का
	२२	प्रतारणसा	प्रतारण
१४८	४	छाये हुये	छाया हुआ
१४६	७	छौकर	छौंक
	१४	नायतोहुये	नाचती हुई
१५१	२३	कहा, "वह	कहा तो "वह
१५२	२	वहा वाह	वाह वाह
	३ } ४ }	हसी	हँसी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
	५	हो तो	होती तो
	१२	देंगी	देंगे
१५५	१३	तक	तर्क
	१६	वकिय	बंकिम
१५६	५	अनंको नेक	अनेकानेक
	६	अवा चीन	अर्वाचीन
	१८	अहों	अरू
१५७	६	मेरे	मरे
१५८	७	ओर	और
	२३	की	को
१५६	३	राम	रामने
	४	कहै	कहा
	१६	वात सब	सभी बातें
१६०	१३	आजुल्हू	आजु
	२०	जमींदार	जमीन्दारने
	२०	अलिङ्गन	आलिङ्गन
	२१	छूरा	छुरा
१६१	१८	अंटसंटभी	अंटसंट
१६२	१	मैं	मैंने
१६३	८, १०	कल	परसों
१६४	२३	वतों अधिक पर	बातों पर अधिक

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
	२४	अपना	अपनी
१६५	७	इन्कारी	इन्कायरी
	८	सुभीधावों	सुविधाओं
१६६	१६	देया	दिया
१६७	१२	हूं	हैं
१६८	६	थानासे	थानेसे
	१६	मुन्दा	मुद्रा
	१८	दारोगाजी	दारोगाजीने
	१८	मोर	मारा
	१३	देदियेहैं	देदियाहै
	१३	छोडे	छोड़ा
	१३	हैं	है
	१४	मंगरा	मगरा का
१६६	३	वुधिया को	बुधियासे
१७०	२	त्त्णाय	त्त्ण
	२२	कोई	किसी
१७१	६	यइतूकाल	चइतूकोल
१७२	११	जगहा	जगह
१७३	८	ज्ञानो	ज्ञान
	१५	वकेगा	बिकेगा
१७६	१३	कितना प्यारा	कितने प्यारे
१८१	१६	यह	———
	२०	हमारा	हमार
१८२	३	कनूनी	उन्हमी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
	८	ऐसा	ऐसे
१८५	१५	प्रमपाश	प्रेमपाश
	१६	को	———
	२३	धमधियों	धमकियों
१८६	१३	Teeting	Feeling
१६२	४	वड़ा	बड़ी
१६६	१५	सोभुआ	सोभुआने
१६७	६	के तथ्य	की तथ्यता
	१३	हो	होओ
१६८	१४	छुछ	कुछ
२०१	७	कहाकहा	कहा
	१३	देख सा	देखसी
२०२	१८	वैसा	वैसी
१०४	१२	हीको	को
	१७	मचा	मय
२०७	७	चरम	चाम
२०८	७	धर्म	नहीं
	११	हो	ही
२१६	१०	उथ्थान	उत्थान
२१७	३	अयाधिक	अत्याधिक
२२०	१४	उथ्थान	उत्थान
	१६	समझ	समझा
२२१	११	हिलकर	हिला कर
२२२	३	क्यों नहीं कहे	क्या कभी कहा है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२२४	१३	गाने को के लिये	को गाने के लिए
२२५	६	आश्चर्य करके	——
२२६	३	यथा कथित	तथाकथित
	८	२७-११-१४	२७-११-४३
२२९	८	के	से
	२०	विना	बित्ता
२३२	३	धतिकवग	धनिकवर्ग
२३५	१	सिपाह	सिपाही
	१६	अंश	अंशों
२३७	१	कोर्ट	कोर्ट ने
	५	इसे	इस ओर
	७	बड़ी	बेड़ी
	२३	अपियुक्त	अभियुक्त
२३८	२	यथा कथित	तथाकथित
२३९	२४	इन्साप	इन्साफ
२४४	४	मिन्टो	मिनटों
२४८	२२	हम	में
	२४	में	——
२४९	१८	मुसके	उसके
२५०	३	यथा कथित	तथाकथित
	२६	के के लिये	के लिए
	१८	अर	ओर
२५२	१६	स्माव	स्वभाव
	२४	हो	ही